सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

तदियो अणुभागबंधाहियारो

[तृतीय अनुभागबन्धाधिकार]

पुस्तक ४

भारतीय ज्ञानपीठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

तदियो अणुभागबंधाहियारो

[तृतीय अनुभागबन्धाधिकार]

हिन्दी अनुवाद सहित

पुस्तक ४

सम्पादन-अनुवाद

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वितीय संस्करण : १९९९ □ मूल्य : १४०.०० रुपये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : आर.के. ऑफसेट, दिल्ली-११० ०३२

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Moortidevi Jain Granthamala : Prākrita Grantha No. 6

MAHĀBANDHO

[Third Part : Anubhāga-bandhādhikāra]

of

Bhagvān Bhutabali

Vol. IV

Edited and Translated by
Pt. Phoolchandra Siddhantashastri

BHARATIYA JNANPITH

Second Edition : 1999 □ Price : Rs. 140.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 • Vikrama Sam. 2000 • 18th Feb. 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc., are being published in the respective languages with their translations in modern languages.
Also
being published are
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies, art and architecture by competent scholars, and also popular Jain literature.

•

General Editors (First Edition)

Dr. Hiralal Jain & Dr. A.N. Upadhye

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at R.K. Offset, Naveen Shahdara, Delhi 110 032

All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राथमिक

(प्रथम संस्करण, १९५६ से)

धवलादि सिद्धान्त ग्रन्थों का उद्धार वर्तमान युग की सबसे महान् जैन साहित्यिक प्रवृत्ति कही जा सकती है। दिगम्बर जैन परम्परानुसार तो ये ही ग्रन्थ-निधियाँ हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध भगवान् महावीर की द्वादशांग वाणी से जुड़ता है। धवल और महाधवल दोनों ही षट्खण्डागम के 'खण्ड' हैं। कितने हर्ष की बात है कि उधर षट्खण्डागम के पाँचवें खण्ड वर्गणा व उसकी चूलिका का प्रकाशन पूरा होने आ रहा है, और इधर उसका छठा भाग महाबन्ध भी पूर्ण प्रकाशन के उन्मुख हो रहा है। इस महान् शृंखला की कड़ियाँ भी अब ऐसी आकर जुड़ी हैं कि वर्तमान में दोनों का ही मुद्रण कार्य बनारस में चल रहा है। एक ओर यह कार्य पूरा होने आ रहा है, दूसरी ओर श्रावकोत्तम साहू शान्ति प्रसादजी के दान व प्रेरणा से बिहार सरकार ने भगवान् महावीर के जन्मस्थान वैशाली में जैन विद्यापीठ की स्थापना का निश्चय कर उस ओर समुचित योजना व कार्य का आरम्भ भी कर दिया है। इस जैन विद्यापीठ में भगवान् महावीर के उपदेशों का, उनकी संसार को अहिंसा रूपी अनुपम देन का तथा उनकी परम्परा में समुत्पन्न प्रचुर साहित्य का उच्च अध्ययन व अनुसन्धान होगा। उधर भारत की राष्ट्रीय एवं राजकीय रीति-नीति में अहिंसा ने अपना घर कर लिया है और उसकी आनुषंगिक मैत्री, प्रमोद, कारुण्य व माध्यस्थ भावनाओं ने देश के एक महान् सपूत के हृदय को आलोडित कर 'पंचशील' को जन्म दिया है, जिसकी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी प्रतिष्ठा हो गयी है। परिणामतः युद्ध से त्रस्त तथा सांहारिक अस्त्र-शस्त्रों से भयाकुल मानव-जाति को एक दिव्य दृष्टि, एक नयी चेतना, एक अपूर्व आशा प्राप्त हुई है। क्या हम इसे महावीर-देशना की, जैन तत्त्वज्ञान की धर्म-विजय नहीं कह सकते? क्या कोई अदृष्ट हाथ संसार को हमारी एक विशिष्ट दिशा में नहीं झुका रहा है?

इस स्वर्ण-सन्धि का जैन समाज पूरा लाभ उठा रहा है, यह तो हम नहीं कह सकते; तथापि थोड़े-बहुत प्रभावशाली धर्म-बन्धुओं में जो जागृति उत्पन्न हो गयी है, उसी के आधार पर हमें अपना भविष्य कुछ अच्छा दिखाई देने लगा है। भारतीय ज्ञानपीठ इसी जागृति का एक परिणाम है। इसके द्वारा जो धार्मिक ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है, वह एक गौरव की वस्तु है।

प्रस्तुत भाग के 'सम्पादकीय' में प्रतियों के पाठ-भेद सम्बन्धी जो बातें बतलायी गयी हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं। प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन में समय-समय पर लिखी गयीं नाना प्रतियों के मिलान द्वारा सम्पादक उस पाठ पर पहुँचने का प्रयत्न करता है जो मौलिक प्रति में सम्भवतः रहा होगा। किन्तु हमारे सम्मुख यह शोचनीय परिस्थिति उत्पन्न हुई है कि परम्परागत ताडपत्रीय प्रति एकमात्र होते हुए भी उसकी तात्कालिक प्रतिलिपियों द्वारा नाना पाठ-भेद उत्पन्न हो रहे हैं। अत्यन्त खेद की बात है कि हमारे धर्म के इन आकार ग्रन्थों के सम्पादन में भी हम आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करने में असमर्थ हैं। पूना में महाभारत व बड़ौदा में रामायण के सम्पादन सम्बन्धी आयोजन को देखिए, और हमारे इन श्रेष्ठतम सिद्धान्त-ग्रन्थों के उद्धार, सम्पादन, अनुवाद व प्रकाशन की स्थिति को देखिए! आज की सीधी, सरल और सर्वथा प्रमाणभूत सम्पादन-प्रणाली तो यह है कि सम्पादक के सन्मुख या तो प्राचीन प्रतियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने मौलिक रूप में उपस्थित हों या उनके छायाचित्र आजकल प्रतियों के छायाचित्र या सूक्ष्मचित्रावली (माइक्रो फिल्म) बड़ी आसानी और किफायत से लिये जा सकते हैं। सूक्ष्म चित्रावली को पढ़ने के लिए प्रतिबिम्बक यन्त्र (प्रोजेक्टर मशीन) भी आज बड़ी सस्ती मिलने लगी है—केवल चार-पाँच सौ रुपये में। लिपि का अज्ञान कोई बड़ी समस्या नहीं है। सम्पादक स्वयं थोड़े से प्रयत्न व अभ्यास से अल्पकाल में अपेक्षित लिपि को सीख सकता है और अपने सम्पादन को सोलहों आने प्रामाणिक बना सकता है; यदि उसे यथोचित सुविधाएँ दे दी जायँ।

पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री ने प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन व अनुवाद में जो विद्वत्तापूर्ण प्रयास किया है, तथा ज्ञानपीठ के कार्यकर्ताओं ने जो सुन्दर प्रकाशन का उद्योग किया है, उसके लिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। हमें भरोसा है कि उनके प्रयत्न से इस ग्रन्थ का शेष भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेगा।

हीरालाल जैन
आ.ने. उपाध्ये
ग्रन्थमाला सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

(प्रथम संस्करण, १९५६ से)

अनुभागबन्ध षट्खण्डागम के छठे खण्ड का तीसरा भाग है। इन का सम्पादन व अनुवाद लिखकर प्रकाशनयोग्य बनाने में दो वर्ष का समय लगा है। कारण कि हमारे सामने ग्रन्थ की एक ही प्रति रही है और जो है वह भी पर्याप्त मात्रा में त्रुटित है। जब दूसरे भाग का अनुवाद कर रहे थे, तभी इस प्रति की यह स्थिति हमारे ध्यान में आयी थी। अधिकारी विद्वानों से हमने इसकी चर्चा भी की थी। उनका कहना था कि जिस स्थिति में प्रति उपलब्ध है, उसे सम्पादित कर प्रकाशन-योग्य बना देना उचित है। यद्यपि यह सम्भव था कि गुणस्थानों व मार्गणास्थानों की बन्ध योग्य प्रकृतियों की तालिका को सामने रखकर आवश्यक संशोधन कर दिया जाय। स्थितिबन्ध प्रथम पुस्तक में कहीं-कहीं ऐसा किया भी गया है। पर ऐसा करना एक तो सब प्रकरणों में सम्भव नहीं है। कुछ ही ऐसे प्रकरण हैं जिनमें संशोधन किया जा सकता है। अधिकतर प्रकरणों के लिए तो हमें मूल प्रति के ऊपर ही आश्रित रहना पड़ता है। दूसरे भय होता था कि इससे कहीं नयी अशुद्धियों को जन्म देने के दोष का भागी हमें न बनना पड़े और इसलिए स्थितिबन्ध की द्वितीय पुस्तक को हमने मूल प्रति के अनुसार ही सम्पन्न कर प्रकाशन के योग्य बनाया था।

इस परिस्थिति से उत्पन्न कमियों और त्रुटियों का हमें भान था। स्वभावतः समालोचकों का ध्यान भी उस ओर गया। अतएव हम पाठशोधन के लिए यथोचित सामग्री प्राप्त करने की ओर विशेष प्रयत्नशील हुए। भारतीय ज्ञानपीठ के सुयोग्य मन्त्री जितने विचारक हैं, उतने ही दूरदर्शी भी हैं। उन्होंने सब स्थिति को समझकर मूडबिद्री प्रति से मिलान करने की हमें अनुज्ञा दे दी और कहा कि इस कार्य के सम्पन्न करने में जो व्यय होगा, उसे भारतीय ज्ञानपीठ खुशी से वहन करेगा। आप स्वयं लिखा-पढ़ी करके वहाँ से प्रति मिलान की व्यवस्था कर लीजिए। तदनुसार हमने मूडबिद्री, श्री पण्डित नागराजजी शास्त्री को पत्र लिखा। किन्तु उनका उत्तर आया कि यहाँ की कनडी प्रति दिल्ली जीर्णोद्धार के लिए गयी है। यहाँ आने पर हमें और प्रबन्ध समिति को इस कार्य की व्यवस्था करने में प्रसन्नता ही होगी। व्यक्तिशः इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए हम हर तरह से तैयार हैं।

किन्तु इसी बीच यह भी विदित हुआ कि महाबन्ध की ताम्रपत्र प्रति सम्पादित होकर शा० जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था की ओर से छपी है। फलस्वरूप शा० जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था के सुयोग्य मन्त्री श्री सेठ बालचन्द देवचन्द जी शहा को लिखा गया। उस समय वे उत्तर भारत के तीर्थक्षेत्रों की यात्रा के लिए आये हुए थे, इसलिए उनसे व्यक्तिशः भी सम्पर्क स्थापित किया गया और आवश्यकता का ज्ञान कराते हुए प्रत्यक्ष में इस विषय की बातचीत की गयी। परिणामस्वरूप उन्होंने घर पहुँचने पर ताम्रपत्र मुद्रित प्रति भिजवाने का आश्वासन दिया। यद्यपि उन्हें कई कारणों से प्रति भेजने में विलम्ब हुआ है, परन्तु अन्त में योग्य निछावर देकर यह प्रति भारतीय ज्ञानपीठ को उपलब्ध हो गयी है, जिससे अनुभागबन्ध के प्रस्तुत संस्करण में उसका उपयोग हो सका है। इसलिए यहाँ इस प्रसंग से इन दोनों प्रतियों के पाठ आदि के विषय में सांगोपांग चर्चा कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। हमें प्रस्तुत संस्करण के दस फार्म छपने पर यह प्रति मिल सकी थी, इसलिए इन फार्मों में न तो हम इस प्रति के पाठ ही ले सके और न इस प्रति के आधार से प्रस्तुत प्रति में सुधार आदि कर सके। अतएव सर्वप्रथम यहाँ तक के दोनों प्रतियों के पाठभेद देकर इस चर्चा को आगे बढ़ाना उपयुक्त प्रतीत होता है। यहाँ और टिप्पणियों में जो प्रति हमारे पास प्रेस कापी के रूप में है, उसका संकेताक्षर आ० है। टिप्पणी में कहीं-कहीं 'मूलप्रतौ' पद द्वारा भी इसी प्रति का उल्लेख किया गया है और ताम्रपत्र मुद्रित प्रति का संकेताक्षर ता० है। इस दोनों प्रतियों के दस फार्म तक के पाठभेदों की तालिका इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ० और ता० प्रति के पाठभेद

पृ०	पं०	आ०	ता०
५	११	धुवबंधो अद्धुवबंधो आयु०	धुव० आयु०
५	११	४?	४ (?)
५	१३	धुवबंधो णत्थि	धुवभंगो णत्थि
६	२	सामित्तस्स कच्चे	सामित्तस्स कम्म
६	३	विवागदेसो पसत्थापसत्थपरूवणा	विभा [पा] गदेसो पसत्थ (त्था) पसत्थपरूवणा
६	५	योगपंचयं। एवं णेदव्वं याव अणाहारए त्ति	योगपंचयं णेदव्वं। एवं याव अणाहारएत्ति णेदव्वं।
७	१	जीवविवाग०	जीवविपाका०[1]
८	१२	सव्वसंकिलिट्ठस्स०	सव्वसंकिले (लि) स्स०
६	६	आयु० उक्क० अणुभा० कस्स ३!	आयु० उक्क० अणु० वट्ठ० आयु० (?) उक्क० अणु० क०?
६	११	उवरिमगेवज्जा	उपरिमके (गे) वज्जा
६	१२	अण्ण०	अणु० (ण्ण०)
६	१५, १६	उक्क० वट्ट०	उक्क० [अणुभाग०] वट्ठ०
१०	१	उक्क० वट्ट०	उक्क० [अणु०] वट्ठ०
१०	४	वणप्फदिपत्ते०	वणफदिपत्ते०
१०	६	गो० उक्क० अणु० कस्स० अण्ण० बादर०	गोद० बादर०
१०	८	उद्दिसदि	उदिसदि
११	४	सागार-जा०	जा (सा) गारजागा०
११	४	उक्कस्सअणुभा० वट्ट०	उक्कस्स अणुभा० उक्क० वट्ट०
१२	६	उवसमस्स	उवसमयस्स
१२	१४	णवुंसगे	णपुंसके०[2]
१३	६	संकिलि० वट्ट०	संकिलि० उक्क० वट्ट०
१४	६	परिवदमाण०	परिपदमाण०
१६	१	अण्ण० देवस्स०	अण्ण० अण्णद० (?) देवस्स
१६	६	घादि० ४ उक्क० अणुभा० कस्स? अण्ण०	घादि० ४ अणु० क० ? अणु० (अण्ण०)
१६	१२	उवसमसंप०	उवसमसुहुमसंप०
१७	८	अणुभा० कस्स०	अणु० (क० ?)
१७	१२	उक्कस्सं समत्तं।	ऊक्कस्स (स्सं) समत्तं।
१८	४	अण्ण० जहण्णियाए अपजत्तणिव्वत्तीए	अणु० (ण्णद०) जहण्णियाए अपज्ज० णिव्वत्तीए णिव्वत्तेए (?)
१८	७	तस० २-पंचमण०	तस० पंचमण०

१. ता० प्रति में यहाँ सर्वत्र विवाग पद के स्थान में विपाक पद है। २. ता० प्रति में प्रायः सर्वत्र णवुंसग पद के स्थान में णपुंसक पद उपलब्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८	११	जहण्णए पज्जत्त-	जहण्णियापज्जत्त
१९	१	जह० अणु०	ज० ज० (?) अणु०
१९	११	जह० अणुभा० वट्ट।	जह० वट्ट०।
१९	१२	उवरिमगेवज्जा	उवरिमके (गे) वेज्जा[1]
२१	६	सरीरपज्जत्ती गाहदि	सरीरपज्जत्तीहि गाहदि
२१	७	अण्ण० अत्थि य	अत्थि य
२१	८	वेद०-णामा० ओघं।	वेद० णामगदि (?) ओघं।
२१	१०	सेसमणुदिसभंगो।	सेसं म (अ) णुदिसभंगो।
२१	१३	से काले	सेकाल (ले)
२१	१२	अण्ण० चदुगदि०	अणु० (अण्णद०) चदुगदि०
२१	१३	अण्ण० अत्थि य	अत्थि य
२२	६	वेद० णामा० जह० अणु० तिगदि०	वेद० णामा० तिगदि०
२२	८	अवगदवे०	अवगदे०
२२	१२	कस्स० ? अण्ण० मणुस०	क० ? मणुस०
२३	२	परियत्तमा० मज्झिम० पज्जत्तणिवत्तीए णिव्वत्तमाण० जह० अणु० वट्ट०। आउ०-गोद०	परिय...पज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमा० मज्झिमपरि० जह० वट्ट० गोद०
२३	५	मणपज्ज० वे०-गोद० जह० अणु० कस्स?	मणपज्जवे गोद० ज० अणु० [क० ?]
२३	१३	छेदो० अभिमुह०	छेदो [वट्ठावणा] भिमुह
२४	१	परिवद०	परिपद०[2]
२४	६	अण्ण० णेरइ०	अणु० (अण्णद०) णेरइ०
२४	१४	घादि० ४ जह० अणु० कस्स० ? ओघं	घादि० ४ ओघं।
२५	२	ओधिभंगो।	ओधिभंगो ओधिभंगो (?)।
२५	३	अण्ण०	अणु० (अण्ण०)
२५	७	अणु० कस्स० ?	अणु [क० ?]
२५	८	अणु० ? सत्तमाए	अणु० क०! अण्ण४ सत्तमाए
२७	३	कम्माणं णिरयोघभंगो।	कम्माणं उक्क० णिरयोघभंगो।
२८	४	वणप्फदि-णियोदाणं च ओघं।	वणफ (ति) णियोदाणं च ओघं पदा।
२८	६	एग० उक्क०	ए० [उक्क०]
२८	७	णियोद० एदे सव्वे पज्जत्ता बादरपुढवि०	णियोद०। एदे सव्वे पज्जत्ता बादरपुढवि०
२९	६	अणु० जह० अंतो०।	अणु० उ० ज० अंतो
२९	८	घादि० ४ उक्क० ओघं।	घादि० ४ ओघं।
३०	५	जहणणुक्क०	जहण्ण (ण्णु) क्क०
३२	३	छावट्ठि०।	छावट्ठि० [सागरोव] माणि।
३२	५	एवं संजद-सामाइ०-छेदोव०। परिहार०	एवं संजदा। सामाइ० छेदोव० परिहार०
३२	६	पुव्वकोडी दे०। अथवा	पुव्वकोडीदे०। परिहार० अथवा
३२	६	उक्क० जह० एग०,	उ० ए०

१. ता० प्रति में यह पाठ आगे भी प्रायः इसी रूप में उपलब्ध होता है। २. ता० प्रति में परिवद० के स्थान में कहीं-कहीं परिपद० पाठ भी उपलब्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२	७	संजदासंजदाणं। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो।	संजदासंजदा।
३४	४	पुरिसभंगो। आहारा० ओघभंगो। णवरि	पुरिसभंगो। णवरि
३४	७	जह० अणु० जह० उक्क० एग०	ज० ए०
३५	२	अज० जह० एग०	अज० ज० ज० ए०
३५	२	एवं आउ० याव अणाहारग त्ति। एवं ओघभंगो	एवं आउ० (?) याव अणाहारगत्ति। "वेद० णाम० ज०ज०ए०उ० चत्तारिस०। एवं याव अणाहारगत्तिणेदव्वं" [चिह्नान्तर्गतः पाठः पुनरुक्तः प्रतीयते] एवं ओघभंगो
३५	४	अणादियो	अणादीयो
३६	३	गोद० जह० अणु० जहण्णुक्क० एग०। अज० जह० अंतो	गोद० ज० ए० अज्ज० अंतो०
३६	५	चत्तारि समयं। अज० जह० एग० उक्क० भवट्ठिदी	चत्ताक्सि०। अज्ज० ज० ए० उक्क० चत्तारिस०। अज्ज० ज० ए० उ० भवट्ठिदी
३६	८	जह० एग०	ज० ज० ए०
३६	८	एवं अव्भवसि० असण्णीसु पंचिं	एवं अब्भवसि०। असण्णीसु पंचिं
३७	५	थावराणं च सुहुमपज्जत्तगाणं च।	थावराणं च।
३७	१०	गोदस्स जह० अणु० जह० एग०,	गोदस्स वज्ज० ज० ए०
३८	५	अजहण्ण० ओघभंगो।	अजहण्णट्ठिदी ओघभंगो
३९	१,५,७	जह० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अज०	ज० ए० अज्ज०
३९	६	गोद० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० अज०	गोद० ज० ए० अज्ज०
४०	२	गोद० जह० जह० एग०	गोद० ज० एग०
४०	५,८,१०	जह० जह० एग०, उक्क० बे सम०। अज०	ज० ए० अज्ज०
४०	६	चत्तारिसम०। अज०	चत्तारिस [अज्ज०]
४१	१	जह० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० जह० एग०,	ज०ए० अज्ज० [जह०] ए०
४१	३,५	जह० जह० एग०, उक्क० बेसम० अज०	ज०ए०अज्ज०
४१	६	मणपज्जवभंगो। एवं	मणपज्जवभंगो। घादि० ज० एग० अज्ज० ज० अंतो० उक्क० बेअद्धा०। एवं
४२	१	अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं	अज्ज० ज०ए०उ० बेस०। अज्ज० ज० ए० उ० तेत्तीसं
४२	५	तेउपम्मासु	तेउ० पम्मादिसु
४४	४	गोदा० जह० णत्थि	गोदा० उक्क० णत्थि०
४५	६	अद्धपोग्गल०। आउ०	अद्धपोग्गल०। सत्तण्णं क० अणु० ज० एग० ऊ० वेसम०। आउ०
४८	३	पुढवि०	...पुढवि०
४८	६	बे वाससह०	बे माससह०
४९	३	चत्तारि वासाणि	चत्तारि वाससहस्साणि
४९	८	आउ० [जह० एग०] उक्क०	आउ० उ० ज० ए० उ०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०	१	अणु० जह० एग०	अणु० ज० ज० एग०
५०	१	आउ० [उक्क०] जह०	आउ० उ० ज०
५१	६	अंतरं। वेउव्वि० अट्ठण्णं	अंत०। अट्ठण्णं
५३	१	अणु० जहण्णु० एग०	अणु० ज० ए०
५४	१	अथवा उक्क० णत्थि	अवत्थवा (?) वाउ० (?) णत्थि
५४	५	गोदा० [उक्क० अणु०] जह० एग०	गोद० ज० ए०
५४	७	आउ० [उक्क० अणुभा०] जह०	आउ० ज०
५५	४	आउ० (उक्क० अणु०) जह०	आउ० ज०
५७	६	एवमुक्कस्समंतरं समत्तं।	×
६१	४	सव्वट्ठा त्ति गोद०	सव्वट्ठात्ति। गोद०
६२	२	आउ० जह० णाणा—	आउ० ज० ज० णाणा—
६४	१	अज० जह० जह० एग०,	अज्ज० ज० ए०
६७	४	घादि४—गोद० जह० अज० णत्थि अंतरं। वेद०	घादि४ गोद ज० अज्ज० णत्थि अंत०। वेद० णाम० ज० अज्ज० णत्थि० अंत०। वेद०
६८	३	उक्क० छावट्ठिसाग०	उ० बा० (छा) वट्ठिसाग०
७०	८	णवगेवज्जभंगो।	णवके (गे) वेज्जभंगो।
७१	३	खइए घादि०४ जह०	घादि०४ ज०
७१	४	अज० [जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। णवरि गो० उ० बेसम०।] आउ०	अज्ज० ओघं०। आउ०
७२	४	अज० जह० एग०	अज्ज० ए०
७५	१३	उक्कस्सं। एवं णामा-गोदाणं	उक्कस्सं० णामागोदाणं
७६	३	णि० अणु०	णि बं (?) अणु०
७६	८	छट्ठाणपदिदं बंधदि।	छट्ठाणपदिदं बंधदि। एवं णामं।
७७	१३	पुढवीए तिरिक्खोघं अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सव्वएइंदि०	पुढवीए। तिरिक्खोघं अणुदिस याव सवट्ठ त्ति सव्वएइंदि०
७८	४	उवरिमगेवज्जा त्ति सव्व—	उवरिमगेज्जा (वज्जा) त्ति। सव्व—
७८	७	अणु० बं तिण्णं घादीणं	अणु० बं। घादीणं
७८		माय-सामाइ०-छेदो०। अवगद०	माय०। सामाइ० छेदो० अवगद०
७९	९	अबंधगा। एवं पगदि बंधदि	अबंधगा। ये पगदी बंधदि
७९	१७	सिया अबंधगा य बंधगे य,	सिया बंधगे य।
७९	११	अबंधगा य बंधगा य।	अबंधगा य बंधगा यं (य)।
७९	११	बंधगा य, सिया बंधगा य अबंधगे य,	बंधगा य। अबंधगा य अबंधगे य।
७९	१२	तिरिक्खोघं पुढ०-आउ६-तेउ६-वाउ० बादरपत्ते०	तिरिक्खोघं। पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादर पुढ० आउ० तेउ० वाउ० बादरपत्ते०
८०	६	अणुक्क० तिण्णि भंगा।	अणुक्क० अट्ठभंगा।
८०	९	गोदस्स जह० अज० उक्कस्सभंगो	गोदस्प वज्ज०। अज्ज० उक्कस्सभंगो।
८०	१२	अणाहारग त्ति। णवरि कम्मइ० अणाहार० आउ० णत्थि।	अणहारग त्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठभेद के लगभग ये १२५ उदाहरण हैं। इनमें से ता० प्रति के लगभग २२ पाठ ग्राह्य हैं, जिनका हमने शुद्धि पत्र में उपयोग कर लिया है। शेष आ० प्रति के पाठ ही ग्राह्य प्रतीत होते हैं। फिर भी तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से ये पाठ बड़े उपयोगी हैं। इससे हमें इस बात का पता लगता है कि विषय के अजानकार व्यक्तियों के द्वारा प्रतिलिपि कराने पर कितना अधिक उलट-फेर हो जाता है और केवल एक प्रति को आदर्श मानकर चलने में कितना अनर्थ होता है। जिस प्रति के आधार से बनारस में सम्पादन-कार्य हो रहा है उसे स्वर्गीय श्री लोकनाथजी शास्त्री ने प्रतिलिपि करके भेजा था और वह ता० प्रति से अपेक्षाकृत शुद्ध प्रतीत होता है। ता० प्रति जिस रूप में मुद्रित होकर ताम्रपत्रों पर अंकित की गयी है, वह उसकी प्राथमिक अवस्था ही प्रतीत होती है और उसमें पर्याप्त संशोधन अपेक्षित है; जैसा कि पूर्वोक्त तालिका से स्पष्ट है।

पिछले वर्ष श्रीमान् सेठ बालचन्द्रजी देवचन्द्रजी शहा यात्रा करते हुए बनारस आये थे। उस समय हमारे सहाध्यायी श्री पं० हीरालालजी सि० शा. भी यहीं पर थे। ताम्रपत्र प्रतियों की चरचा उठने पर सेठ सा० ने उनका संशोधन होकर शुद्धिपत्र बनवाना स्वीकार कर लिया था। तदनुसार उन्होंने हमारी सलाह से यह कार्य पं० हीरालालजी को सौंपा था। पण्डितजी के जयधवला के पाठभेद लेते समय इस कार्य में हमने पूरी सहायता की है। यह कार्य ताम्रपत्र मुद्रित प्रति और जयधवला कार्यालय की प्रति (प्रेसकापी) के आधार से सम्पन्न हुआ है। इस आधार से हम यह कह सकते हैं कि जयधवला की जो ताम्रपत्र प्रति हुई है, उसमें जितनी अशुद्धियाँ हैं, उससे कहीं अधिक महाबन्ध की ताम्रपत्र मुद्रित प्रति में वे पायी जाती हैं। वस्तुतः मूलप्रति के आधार से प्रतिलिपि होने के अभी तक जितने प्रयत्न हुए हैं, वे सब अपर्याप्त हैं। होना यह चाहिए कि इस विषय के एक दो अनुभवी विद्वान् जिन्हें विषय का अनुगम हो, वे मूडबिद्री में बैठें और कनडी की प्राचीन लिपि के जानकार विद्वान् से वाचन कराकर मिलान करते हुए प्रतिलिपि प्रति में संशोधन करें, तभी मूल कनडी प्रति का ठीक रूप दृष्टिगोचर हो सकता है।

सम्पादन की विशेषता

इस समय हमारे सामने दो प्रतियाँ हैं—एक प्रेसकापी और दूसरी ताम्रपत्र मुद्रित प्रति। प्रस्तुत भाग में इन दोनों प्रतियों का हमने समान रूप से उपयोग किया है। आजकल सम्पादन में किसी एक प्रति को आदर्श मानकर अन्य प्रतियों के पाठ टिप्पणी में देने की भी पद्धति प्रचलित है और कुछ विद्वान् इसे सम्पादन की विशेषता मानते हैं। किन्तु इस सम्पादन में हम ऐसा नहीं कर सके हैं। हम ही क्या, धवला के सम्पादन में भी इस नियम का पालन नहीं किया जाता है। धवला के सम्पादन के समय अमरावती प्रति, आरा प्रति, कारंजा प्रति और ताम्रपत्र प्रति सामने रहती हैं। इनमें से विषय आदि को देखते हुए जो पाठ ग्राह्य प्रतीत होता है, वह मूल में दिया जाता है और इतर प्रतियों का पाठ टिप्पणी में दिखाया जाता है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो एक या अधिक सब प्रतियों के पाठ टिप्पणी में दे दिये जाते हैं और विषयादि की दृष्टि से जो शुद्ध पाठ प्रतीत होता है, वह मूल में दिया जाता है। यहाँ इस विषय को स्पष्ट करने के लिए धवला मुद्रित प्रति के एक-दो उदाहरण दे देना आवश्यक समझते हैं—

धवला पुस्तक १०, पृ० ३३३ की पंक्ति ४ में 'जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो' यह पाठ स्वीकार किया गया है। यह ता० प्रति का पाठ है और इसके स्थान में अ०, आ० और का० प्रति का पाठ 'जहण्णियाए वड्ढिदो' है जो टिप्पणी में दिखलाया गया है। किन्तु इसके विपरीत इसी पृष्ठ की पंक्ति १३ में अ०, आ० और का० प्रति का पाठ 'बहुसो' मूल में स्वीकार किया है और ता० प्रति का 'बहुसो-बहुसो' पाठ टिप्पणी में दिखलाया गया है। यह तो जहाँ जिस प्रति के जो पाठ ग्राह्य प्रतीत हुए, उन्हें स्वीकार करने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदाहरण हैं। अब एक ऐसा पाठ उपस्थित किया जाता है जो किसी भी प्रति में उपलब्ध नहीं होता, पर प्रकरण और अर्थ की दृष्टि से सम्पादकों ने उसे स्वीकार करना आवश्यक माना है। ऐसे स्थल पर सब प्रतियों का पाठ नीचे टिप्पणी में दिखलाया गया है और प्रकरण संगत पाठ मूल में दिया गया है। इसके लिऐ धवला पुस्तक १०, पृष्ठ ३३२ की पाँचवीं टिप्पणी देखिए। यहाँ सब प्रतियों में 'मुवलंबणाकरणं' पाठ है, किन्तु इसके स्थान में सम्पादकों ने शुद्ध पाठ 'मवलंबणाकरणं' उपयुक्त समझ कर मूल में इसे स्वीकार किया है। 'धवला' में सर्वत्र अवलम्बनाकरण के लिए ओलंबणाकरण पाठ आता है। ये एक दो उदाहरण हैं। धवला के जितने भाग प्रकाशित हुए हैं, उन सब में इसी नीति से काम लिया गया है। 'सर्वार्थसिद्धि' में भी हमें इस नीति का अनुसरण करना पड़ा है। वहाँ हम किसी एक प्रति को आदर्श मानकर नहीं चल सके हैं।

महाबन्ध-सम्पादन के समय भी हमारे सामने इसी प्रकार की कठिनाई रही है। स्थितबिन्ध के सम्पादन के समय हमारे सामने केवल एक ही प्रति रही है। इसलिए वहाँ अवश्य ही हमें अपने को संयत रखकर प्रति पर भरोसा करके चलना पड़ा है। बहुत ही कम ऐसे स्थल हैं जहाँ [ ] ब्रैकेट में नये पाठ दिये गये हैं, किन्तु अनुभागबन्ध के १० फार्मों से आगे के सम्पादन के समय हमें ताम्रपत्र मुद्रित प्रति उपलब्ध हो जाने से विषय आदि की दृष्टि से विचार का क्षेत्र व्यापक हो जाने के कारण हमने इस बात की अधिक चेष्टा की है कि जहाँ तक बने, यह संस्करण शुद्ध रूप में सम्पादित करके प्रकाशन के लिए दिया जाय। और हमें यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि इस कार्य में हमें बहुत अंश में सफलता भी मिली है। हमें इस कार्य में सहारनपुर निवासी श्रीयुत पं० रतनचन्दजी मुख्तार और श्रीयुत नेमिचन्द्रजी वकील का भी पूरा सहयोग मिल रहा है, क्योंकि इन दोनों बन्धुओं ने इन ग्रन्थों के काल आदि प्रकरणों का विशेष अभ्यास किया है। इन प्रकरणों की प्रक्रिया उनके ध्यान में बराबर बैठती जा रही है, इसलिए लिपिकार की असावधानी के कारण जहाँ भी अशुद्धि होती है उसे हमें व उन्हें प्रकृतियों आदि की परिगणना कर व स्वामित्व आदि प्रकरणों को देखकर समझने में देर नहीं लगती। अवश्य ही भागाभाग और अल्पबहुत्व आदि कुछ ऐसे प्रकरण हैं, जिनमें अशुद्धियों का परिमार्जन करना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में हम किसी एक प्रति को आदर्श मानकर चलने के प्रयास को प्रश्रय नहीं दे सके हैं।

हमने पहले प्रस्तुत भाग के १० फार्मों की दोनों प्रतियों के आधार से तालिका दी है, उसे देखकर ही पाठक इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि कई प्रतियों को सामने रखे बिना मूल पाठ की पूर्ति नहीं हो सकती है। उदाहरणार्थ, प्रस्तुत संस्करण के ८१ पृष्ठ पर भागाभाग के प्रसंग से आ० प्रति का 'अणंता भागा' पाठ हमने मूल में स्वीकार किया है और ता० प्रति का 'अणंतभागो' पाठ नीचे टिप्पणी में दिखाया है, क्योंकि यहाँ आठों कर्मो के अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं, इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है तथा पृष्ठ ८८ की पंक्ति नौ में आ० प्रति के पाठ के स्थान से मूल में ता. प्रति का पाठ स्वीकार करना पड़ा है। कारण कि यहाँ आयु के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवों का कितना क्षेत्र है, इस प्रश्न का समाधान किया गया है। किन्तु आ० प्रति में उत्कृष्ट का वाची पाठ छूटा हुआ है, जिसकी पूर्ति 'ता०' प्रति के आधार से की गई है। इतना सब कुछ होते हुए भी प्रस्तुत संस्करण में ऐसे सैकड़ों स्थल हैं जहाँ पाठ की कमी देखकर उनकी पूर्ति स्वामित्व आदि दूसरे प्रकरणों के आधार से करनी पड़ी है। ऐसे स्थलों पर वे पाठ [ ] ब्रैकेट में दिये गये हैं। इससे हम किसी एक प्रति को आदर्श मान कर नहीं चल सके हैं। हमारी समझ से जब किसी मौलिक ग्रन्थ का अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है और ऐसा करते हुए किन्हीं बीजों के आधार से शुद्ध पाठ प्राप्त करना सम्भव होता है, तब अशुद्ध पाठों की परम्परा चलने देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इतना अवश्य है कि इस तरह जो भी पाठ प्रस्तुत किया जाय एक तो उसकी स्थिति स्वतन्त्र रहनी चाहिए और दूसरे जिन प्रतियों के आधार से सम्पादन कार्य हो रहा हो, उनके सम्बन्ध में भी पूरी जागरूकता से काम लिया जाय। हमने प्रस्तुत संस्करण में इसी नीति का अनुसरण किया है। मात्र ता० प्रति के अधिकतर जो पाठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

( ) या [ ] ब्रैकेटों से सम्बन्ध रखते हैं, उन सबको हम टिप्पणी में नहीं दिखा सके हैं। इनको देखकर हमें इस बात का आश्चर्य होता है कि ता० प्रति में इतने पाठभेद कैसे हो गये। कनडी की एक प्रति के आधार से दो प्रतिलिपि हुईं—एक श्री पं० सुमेरुचन्द्रजी ने करायी और दूसरी बनारस होकर आयी। फिर भी इनमें लिपिसम्बन्धी बहुत अधिक व्यत्यय है। इस आधार से हमें यह कहना पड़ता है कि भाषा और लिपि आदि कई दृष्टियों से मूल कनडी प्रति का अध्ययन होना चाहिए। इसके बिना कनडी प्रति के ठीक स्वरूप का निश्चय होना सम्भव नहीं है। इन दोनों प्रतियों में हमें लिपिसम्बन्धी जो भेद दृष्टिगोचर हुआ है उसमें से कुछ को आगे तालिका देकर दिखलाया जाता है—

१. भ और व अक्षरों का व्यत्यय—ता० प्रति पृ. १ पंक्ति ५ में 'विभागदेसो' पाठ है; जबकि आ० प्रति पृ. ६ पंक्ति ३ में यह पाठ 'विवागदेसो' उपलब्ध होता है।

२. ए और इ स्वरों का व्यत्यय—ता. प्रति पृ० २ पंक्ति ५ में 'सव्वसंकिलेस्स' पाठ है; जबकि आ० प्रति पृ. ८ पंक्ति १२ में 'सव्वसंकिलिद्वस्स.' पाठ उपलब्ध होता है।

३. क और ग अक्षरों का व्यत्यय—ता. प्रति पृ० २ पंक्ति १३ में 'उवरिमकेवज्जा' पाठ है; जबकि आ० प्रति पृ० ९ पंक्ति ११ में 'उवरिमगेवज्जा' पाठ उपलब्ध होता है।

४. उ और द्वित्व का व्यत्यय—ता० प्रति पृ० २ पंक्ति १३ में 'अणु०' पाठ है; जबकि आ० प्रति पृ० ९ पंक्ति १२ में इसके स्थान में 'अण्ण०' पाठ उपलब्ध होता है।

५. 'प्फ' के स्थान में केवल फ—ता० प्रति पृ० २ पं. १८ में 'वणफदि' पाठ है; जबकि आ० प्रति पृ० १० पंक्ति ४ में इसके स्थान में 'वणप्फदि' पाठ उपलब्ध होता है।

६. ज और पका व्यत्यय—ता० प्रति पृ० २१ पंक्ति ५ में सुहुमसंज० पाठ है; किन्तु इसके स्थान में आ० प्रति पृ० ८२ पंक्ति ११ में 'सुहुमसंप०' पाठ उपलब्ध होता है।

७. आकार के ह्रस्व और दीर्घ का व्यत्यय—ता० प्रति पृ० २१ पंक्ति १२ में 'अणाद' पाठ है; किन्तु आ० प्रति पृ० ८३ पंक्ति ११ में 'आणद' पाठ उपलब्ध होता है।

८. त और द का व्यत्यय—ता० प्रति पृ० ८४ पंक्ति १८ में 'वणफति' पाठ है; किन्तु इसके स्थान में आ० प्रति पृ० ३३३ पंक्ति ३ में 'वणप्फदिका०' पाठ उपलब्ध होता है।

ये ऐसे व्यत्यय हैं जो दोनों प्रतियों में सर्वत्र बहुलता से पाये जाते हैं। इनके सिवा थोड़े बहुत अन्य अक्षरों के भी व्यत्यय उपलब्ध होते हैं, उन्हें यहाँ नहीं दिखलाया है। यहाँ यह कह देना हमें आवश्यक प्रतीत होता है कि इन पाठभेदों में से आ० प्रति के पाठ हमें प्रायः उपयुक्त प्रतीत हुए, इसलिए प्रस्तुत मुद्रित संस्करण में हमने उन्हें ही स्वीकार किया है। दूसरे प्रारम्भ के १० मुद्रित फार्मों में जहाँ हमें आ० प्रति के पाठों के स्थान में अन्य पाठ स्वीकार करने पड़े हैं, वहाँ हमने आ० प्रति के पाठ टिप्पणी में दिखला दिये हैं। इसके लिए प्रस्तुत मुद्रित प्रति के ६, १०, ४६, ५४, ५६, और ७५ पृष्ठों की टिप्पणी देखिए। इन स्थलों में पहले हम जो आ० और ता० प्रति के पाठ मिलान की तालिका दे आये हैं, उसमें संशोधित पाठ ही दिखलाये गये हैं। यहाँ आ० प्रति के टिप्पणीगत पाठ ही उसके समझने चाहिए।

यहाँ एक बात की सूचना कर देना और आवश्यक प्रतीत होता है कि मूडबिद्री की कनडी प्रति का अनुभागबन्ध के प्रारम्भ का कुछ अंश त्रुटित है, जिसकी पूर्ति हमने उत्तर प्रकृतिअनुभागबन्ध के प्रारम्भिक स्थल को देखकर की है। किन्तु ऐसा करते हुए हमने जोड़े हुए अंश को व्यवस्थानुसार [ ] ब्रैकेट में दिखलाया है। यह ब्रैकेट प्रथम पृष्ठ से प्रारम्भ होकर पाँचवें पृष्ठ की ११ वीं पंक्ति में समाप्त होता है, इसलिए यह अंश जोड़ा हुआ समझना चाहिए। ग्रन्थ के सन्दर्भ में आनुपूर्वी बनी रहे, एकमात्र इसी अभिप्राय से हमने ऐसा किया है। इस प्रकार इस भाग का सम्पादन हमने जिन विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया है, उसका संक्षिप्त विवरण उक्त प्रकार है।

—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-परिचय

बन्ध के चार भेद हैं—प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध। इनमें से प्रस्तुत संस्करण में अनुभाग बन्ध का विचार किया गया है।

अनुभाग का अर्थ है—फलदानशक्ति। कषायों का शुभ और अशुभ जैसा परिणाम होता है; उसके कर्मों में उसी प्रकार फलदान शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। योग के निमित्त से गुणस्थान परिपाटी के अनुसार यथासम्भव ज्ञानावरणादि आठ मूल प्रकृतियों का और मतिज्ञानावरण आदि उत्तर प्रकृतियों का बन्ध होता है और कषाय के अनुसार उनमें न्यूनाधिक शक्ति का निर्माण होता है। यह न्यूनाधिक शक्ति ही अनुभाग है। प्रत्येक कर्म में उसकी प्रकृति के अनुसार ही अनुभाग शक्ति पड़ती है। इसलिए हम प्रकृति को सामान्य और अनुभाग को विशेष कह सकते हैं। यद्यपि ज्ञानावरण के मतिज्ञानावरण आदि विशेष ही हैं, पर अपनी-अपनी फलदानशक्ति के तारतम्य की अपेक्षा ये भी सामान्य ही हैं। प्रकृतिबन्ध में कहाँ कितनी शक्ति प्राप्त हुई है--इस प्रकार की विशेषता नहीं उत्पन्न होती। यह विशेषता अनुभाग बन्ध से ही प्राप्त होती है। जीव उत्तर काल में जो शुभ या अशुभ कर्मों के फल को भोगता है, उसका कारण मुख्यतः यह अनुभागबन्ध ही है और अनुभाग बन्ध का मूल कारण कषाय है, इसलिए कर्मबन्ध के सब कारणों में कषाय को मुख्य कारण कहा गया है। यों तो बन्धतत्त्व का सांगोपांग विचार करने के लिए अनेक बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक है, परन्तु प्रस्तुत भाग में अनुभाग बन्ध का ही विचार किया गया है, इसलिए यहाँ हम एकमात्र इसी का ऊहापोह करेंगे।

जीव और कर्म स्वतन्त्र दो द्रव्य हैं। उसमें भी जीव अमूर्त है और कर्म मूर्तिक। एक मूर्तिक का अन्य मूर्तिक के साथ बन्ध अपने स्पर्श गुण के कारण होता है। किन्तु अमूर्तिक का मूर्तिक के साथ बन्ध क्यों होता है? बन्धतत्त्व को ठीक तरह से समझने के लिए इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करना आवश्यक है। आचार्य कुन्दकुन्द ने इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा है—

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि कम्मं विरागसंपत्तो।

आशय यह है कि राग और द्वेष के कारण जीव कर्म से बन्ध को प्राप्त होता है। इस प्रकार यद्यपि इस वचन से हमें यह उत्तर तो मिल जाता है कि जीव का बन्ध किस कारण से होता है, फिर भी यह शंका बनी ही रहती है कि स्पर्श गुण के अभाव में जीव का पुद्गल से सम्बन्ध कैसे होता है, क्योंकि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ स्पर्श विशेष का नाम ही बन्ध है। पुद्गल में स्पर्श गुण होता है, इसलिए उसका अन्य द्रव्य के साथ बन्ध बन जाता है, पर जीव द्रव्य में इस गुण का अभाव होने से यह नहीं बन सकता है। यदि यह कहा जाय कि बन्ध पुद्गल का पुद्गल से होता है और जीव उसमें अनुप्रविष्ट रहता है, तो प्रश्न यह होता है कि जीव पुद्गल में अनुप्रविष्ट क्यों हुआ और पुद्गल के स्थानान्तरित होने पर वह उसका अनुगमन क्यों करता है? इस प्रश्न का उत्तर आचार्यों ने यह दिया है कि जीव और पुद्गल का बन्ध अनादि काल से हो रहा है और इस बन्ध का मुख्य कारण जीव की अपनी कमजोरी है। कर्म के निमित्त से जीव में योग और कषाय रूप परिणमन होता है और इस कारण जीव के साथ कर्म सम्बन्ध को प्राप्त होता है। यद्यपि जीव में स्पर्श गुण नहीं है, फिर भी जीव में विद्यमान कषाय परिणाम स्पर्शगुण का ही कार्य करता है। जिस प्रकार पुद्गल में स्पर्श गुण के कारण उसका अन्य पुद्गल-द्रव्य के साथ बन्ध होता है, उसी प्रकार जीव में योग व कषायरूप परिणाम होने के कारण उसका कर्म और नोकर्म के साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्ध होता है। किन्तु जीव का यह योग और कषायरूप परिणाम स्वाभाविक न होकर नैमित्तिक है, इसलिए जब तक इस प्रकार के निमित्त का सद्भाव रहता है, तभी तक यह बन्ध-प्रक्रिया चलती है; इसके अभाव में नहीं। इस प्रकार इस बात का निर्णय हो जाने पर कि जीव का कषाय रूप परिणाम और पुद्गल का स्पर्शगुण मुख्यतः बन्ध का प्रयोजक है, यहाँ इन्हीं दोनों के आधार से अनुभागबन्ध का विचार किया है। तात्पर्य यह है कि जीव में जिस मात्रा में कषायाध्यवसान स्थान होता है, कर्म का उसी मात्रा में जीव के साथ बन्ध होता है। साधारणतः जीव की कषाय और कार्मण वर्गणाओं का स्पर्श गुण इन दोनों के कारण बन्ध को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध। स्थितिबन्ध में विवक्षित कर्म का जीव के साथ कितने काल तक सम्बन्ध रहता है, इसका विचार किया जाता है और अनुभागबन्ध में कर्म का जीव के साथ जो बन्ध होता है, वह विघटन के समय जीव में कितनी मात्रा में और किस प्रकार की क्रिया के होने में सहायक होता है, इस बात का विचार किया जाता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए 'टाइमबम' का उदाहरण उपयुक्त होगा। इसमें दो बातें दृष्टिगोचर होती हैं—प्रथम तो उसका नियत समय पर विस्फोट होना और दूसरे विस्फोट के समय अमुक मात्रा में हलचल उत्पन्न करना। ठीक यही अवस्था कर्मों की है। कर्म भी नियत समय पर ही आत्मा से अलग होते हैं और जिस समय अलग होते हैं, उस समय वे आत्मा में एक विशेष प्रकार की नियत मात्रा में हलचल उत्पन्न करके ही अलग होते हैं। शास्त्रकारों ने इस हलचल को ही उदय या उदीरणा शब्दों द्वारा प्रतिपादित किया है। कर्मों का उदय या उदीरणा जिस क्रम का जितना अनुभाग होता है, तदनुरूप ही होता है, इसीलिए 'तत्त्वार्थसूत्र' में गृद्धपिच्छ आचार्य ने अनुभाग की व्याख्या करते हुए कहा है— 'विपाकोऽनुभवः।'

यह अनुभाग बन्ध की अपेक्षा दो प्रकार का है—मूलप्रकृति अनुभाग बन्ध और उत्तर प्रकृति अनुभाग बन्ध। मूल प्रकृतियाँ आठ हैं। बन्ध के समय इन्हें जो अनुभाग प्राप्त होता है, उसे मूल प्रकृति अनुभाग बन्ध कहते हैं और बन्ध के समय उत्तर प्रकृतियों को जो अनुभाग प्राप्त होता है, उसे उत्तर प्रकृति अनुभागबन्ध कहते हैं। तृतीय अनुभागबन्धाधिकार में इसी अनुभाग का विविध अधिकारों-द्वारा विचार किया गया है। वहाँ मूल प्रकृति अनुभागबन्ध का विचार करते समय पहले दो अधिकारों द्वारा उसका विचार किया गया है। वे दो अधिकार ये हैं—निषेक प्ररूपणा और स्पर्धक प्ररूपणा। उनका खुलासा इस प्रकार है—

निषेक प्ररूपणा—प्रति समय जो विवक्षित मूल या उत्तर कर्म बँधता है, उसका दो प्रकार से विभाग होता है—एक तो स्थिति की अपेक्षा और दूसरा अनुभाग की अपेक्षा। आबाधा काल को छोड़ कर स्थिति समय से लेकर प्रत्येक समय में जो कर्मपुंज प्राप्त होता है, उसे स्थिति की अपेक्षा निषेक कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक समय में बँधनेवाला कर्म अपनी स्थिति के अनुसार प्रत्येक समय में विभाजित हो जाता है। मात्र आबाधा के जितने समय होते हैं, उनमें निषेक-रचना नहीं होती। यह तो स्थिति के अनुसार कर्म-विभाजन का क्रम है। अनुभाग की अपेक्षा जघन्य अनुभाग वाले कर्म-परमाणुओं की प्रथम वर्गणा होती है और प्रत्येक परमाणु को वर्ग कहते हैं। क्रमवृद्धिरूप अनुभाग शक्ति को लिये हुए अन्तर रहित ये वर्गणाएँ जहाँ तक पाई जाती हैं, उसकी स्पर्धक संज्ञा है। ये स्पर्धक देशघाति और सर्वघाति दो प्रकार के होते हैं। ये दोनों प्रकार के स्पर्धक स्थितिबन्ध के अनुसार जो निषेक-रचना कही है, उसके प्रथम निषेक से लेकर अन्त तक पाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक स्थिति निषेक में देशघाति स्पर्धक हैं और सर्वघाति स्पर्धक हैं। मात्र देशघाति स्पर्धक आठों कर्मों के होते हैं और सर्वघाति स्पर्धक केवल चार घाति कर्मों के होते हैं।

स्पर्धक प्ररूपणा—अविभाग प्रतिच्छेद का हम विचार आगे करेंगे। ऐसे अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद एक वर्ग में पाये जाते हैं। तथा उन वर्गों से मिलकर एक वर्गणा बनती है और ऐसी अनन्तानन्त वर्गणाएँ मिलकर एक स्पर्धक होता है। विशेषता इतनी है कि प्रथम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग में समान अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। दूसरी वर्गणा के प्रत्येक वर्ग में एक से अधिक अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार प्रत्येक स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा तक जानना चाहिए।

ये दो अनुयोगद्वार आगे की प्ररूपणा के मूल आधार हैं। तदनुसार अनुभाग बन्ध का विचार संज्ञा आदि चौबीस अधिकारों द्वारा किया गया है। खुलासा इस प्रकार है–

संज्ञा–संज्ञा के दो भेद हैं–घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। जो ज्ञानावरणादि आठ कर्म बतलाये गये हैं, वे घाति और अघाति इन दो भागों में विभाजित किये गये हैं। घातिकर्म भी दो प्रकार के हैं–देशघाति और सर्वघाति। जो जीव के ज्ञानादि गुणों का पूरी तरह से घात करते हैं, उन्हें सर्वघाति कर्म कहते हैं और जो एकदेश घात करते हैं, उन्हें देश घाति कर्म कहते हैं। अघाति कर्म जीव के अनुजीवी गुणों का घात नहीं करते हैं, इसलिए उन्हें अघाति कहते हैं। घाति कर्मों का जो सर्वघाति और देशघाति अनुभाग है, वह उत्कृष्ट आदि भेदों में विभाजित होकर भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वघाति ही होता है, अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकार का होता है। इसी प्रकार जघन्य अनुभागबन्ध देशघाति ही होता है और अजघन्य अनुभागबन्ध सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकार का होता है। इस प्रकार घाति संज्ञा प्ररूपणा द्वारा इन सब बातों की जानकारी मिलती है। स्थान संज्ञा प्ररूपणा द्वारा कौन मनुष्य अनुभाग चतुःस्थानिक है, आदि बातों का ज्ञान होता है। चारों घातिकर्मों का उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक और एकस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानिक होता है और अजघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है। चार अघाति कर्मों में उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानिक होता है। अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानिक होता है। अजघन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है। यहाँ घातिकर्मों में लता, दारु, अस्थि और शैल रूप से चार प्रकार का अनुभाग माना गया है। जिसमें यह चारों प्रकार का अनुभाग होता है, उसे चतुःस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें शैल के बिना तीन प्रकार का अनुभाग होता है, उसे त्रिस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें अस्थि और शैल के बिना दो प्रकार का अनुभाग होता है, उसे द्विस्थानिक अनुभाग कहते हैं तथा जिसमें केवल लता रूप अनुभाग होता है, उसे एकस्थानिक अनुभाग कहते हैं। अघाति कर्म दो प्रकार के होते हैं–प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त कर्मों में गुड़, खाँड़, शर्करा और अमृतोपम तथा अप्रशस्त कर्मों में नीम, काँजीर, विष और हलाहलोपम अनुभाग माना गया है। यहाँ भी जहाँ यह चारों प्रकार का अनुभाग होता है, उसे चतुःस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जहाँ अन्त के भेद को छोड़कर तीन प्रकार का अनुभाग होता है, उसे त्रिस्थानिक अनुभाग कहते हैं और जहाँ अन्त के दो विकल्पों को छोड़कर शेष दो प्रकार का अनुभाग होता है, उसे द्विस्थानिक अनुभाग कहते हैं।

सर्व-नोसर्वबन्ध–ज्ञानावरणादि कर्मों का अनुभाग बन्ध होने पर वह सर्वबन्ध रूप है या नोसर्वबन्ध रूप है। इसका विचार इन दोनों अनुयोगद्वारों में किया गया है। जहाँ सब अनुभाग का बन्ध होता है, उसे सर्वबन्ध कहते हैं और जहाँ उससे न्यून अनुभाग का बन्ध होता है, उसे नोसर्वबन्ध कहते हैं। मात्र यह ओघ और आदेश से दो प्रकार का है, इसलिए जहाँ जो सम्भव हो उसे घटित कर लेना चाहिए।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट बन्ध–ज्ञानावरणादि का अनुभाग बन्ध होने पर वह उत्कृष्ट बन्ध है या अनुत्कृष्ट बन्ध है, इसका विचार इन दो अनुयोगद्वारों में किया जाता है। जहाँ ओघ या आदेश से सर्वोत्कृष्ट अनुभाग प्राप्त होता है, इसे उत्कृष्ट बन्ध कहते हैं और जहाँ इससे न्यून अनुभागबन्ध होता है, उसे अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध कहते हैं।

जघन्य-अजघन्य बन्ध–इन दोनों अनुयोगद्वारों में जो अनुभागबन्ध हुआ है, वह जघन्य है कि अजघन्य इसका विचार किया जाता है। बन्ध के समय जो सबसे कम अनुभाग प्राप्त होता है, उसे जघन्य अनुभाग बन्ध कहते हैं और इससे अधिक अनुभाग का बन्ध होने पर वह अजघन्य अनुभागबन्ध कहलाता है। वह भी ओघ और आदेश से दो प्रकार का होता है। यहाँ उत्कृष्ट आदि चारों भेदों के सम्बन्ध में इतना विशेष जानना चाहिए कि उत्कृष्ट अनुभागबन्ध में ओघ और आदेश से सर्वोत्कृष्ट अनुभाग का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्ध लिया जाता है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध में ओघ व आदेश से उत्कृष्ट के सिवा शेष जघन्य आदि सब अनुभागबन्ध लिया जाता है। इसी प्रकार जघन्य अनुभागबन्ध में ओघ व आदेश से सबसे कम अनुभागबन्ध विवक्षित है और अजघन्य अनुभागबन्ध में ओघ व आदेश से जघन्य के सिवा उत्कृष्ट तक का सब अनुभागबन्ध लिया जाता है।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्ध—इन चारों अनुयोगद्वारों में जो उत्कृष्ट आदि चार प्रकार का अनुभाग बन्ध बतलाया है, वह सादि-आदि किस रूप है, इस बात का विचार किया जाता है। इसका विशेष खुलासा हमने विशेषार्थ द्वारा इस प्रकरण के समय किया ही है, इसलिए वहाँ से जान लेना चाहिए। संक्षेप में उसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

कर्म	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
ज्ञानावरण	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार रूप
दर्शनावरण	सादि-अध्रुव	सादि-आध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार रूप
वेदनीय	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार रूप	सादि-आध्रुव	सादि-अध्रुव
मोहनीय	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार रूप
आयु	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
नाम	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार रूप	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव
गोत्र	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार रूप	सादि आदि चार रूप	सादि-अध्रुव
अन्तराय	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि-अध्रुव	सादि आदि चार रूप

स्वामित्व—यहाँ स्वामित्व को ठीक तरह से समझने के लिए इस अनुयोगद्वार के प्रारम्भ में तीन अन्य अनुयोगद्वारों की स्वतन्त्र रूप से विवेचना की गई है। वे तीन अनुयोगद्वार हैं—प्रत्ययानुगम, विपाकदेश और प्रशस्ताप्रशस्तप्ररूपणा। कर्मबन्ध के प्रत्यय (कारण) चार हैं—मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग। कहीं-कहीं प्रमाद के साथ ये पाँच भी कहे गये हैं, पर प्रमाद का अन्तर्भाव असंयम और कषाय में मुख्य रूप से हो जाता है, इसलिए यहाँ ये चार ही कहे गये हैं। इन चारों में से किस के निमित्त से किस कर्म का बन्ध होता है, इसका विचार प्रत्ययानुगम में किया जाता है। यहाँ इस बात का निर्देश करना आवश्यक प्रतीत है कि इन कारणों के रहने पर यथासम्भव विवक्षित कर्म के अनुभागबन्ध में न्यूनाधिकता आती है, इसलिए अनुभागबन्ध के स्वामित्व का निर्देश करते समय इस अनुयोगद्वार का निर्देश किया है।

बन्ध के समय कर्म का जो अनुभाग प्राप्त होता है, उसका विपाक जीव में, पुद्गल में या अन्यत्र कहाँ होता है, इसका विचार विपाक देश में किया गया है। तदनुसार कर्मों के चार भेद होते हैं—जीवविपाकी, भवविपाकी, पुद्गलविपाकी ओर क्षेत्रविपाकी। चार घाति कर्म, वेदनीय और गोत्रकर्म ये छह कर्म जीवविपाकी हैं, क्योंकि इनके उदय से जीव में अज्ञान, अदर्शन, सुख, दुःख, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, उच्च, नीच, अदान, अलाभ, अभोग, अनुपभोग और अवीर्यरूप परिणामों की उत्पत्ति होती है। आयुकर्म भवविपाकी है, क्योंकि नारक आदि भवों में इसका विपाक देखा जाता है। नामकर्म जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी और क्षेत्रविपाकी तीनों रूप है, क्योंकि एक तो इसके उदय से नारक आदि अवस्थाओं की और औदारिक आदि शरीरों की प्राप्ति होती है। दूसरे विग्रहगति में शरीर ग्रहण के पूर्व जीव के प्रदेशों का आकार पूर्व शरीर के समान बनाये रखना इसका कार्य है। यद्यपि उत्तर काल में टीकाकारों ने वेदनीय कर्म को पुद्गलविपाकी मानकर बाह्य सामग्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्राप्ति भी इसका कार्य बतलाया है; परन्तु यह विचार कर्म-सिद्धान्त की मूल मान्यता के विरुद्ध प्रतीत होता है। यहाँ तो वेदनीय को जीवविपाकी माना ही है। धवला निबन्धन अनुयोगद्वार में भी 'वेदणीयं सुखदुक्खम्मि णिबद्धं' अर्थात् वेदनीय कर्म सुख और दुःख में निबद्ध है, ऐसा कहा है। बाह्य सामग्री की प्राप्ति इसका अर्थ है–बाह्य सामग्री का स्वीकार सो यह भाव कषाय के सद्भाव में ही होता है, अतः बाह्य सामग्री की प्राप्ति वेदनीय कर्म का कार्य न होकर कषाय के सद्भाव का फल है। यद्यपि अरिहन्त परमेष्ठी के समवसरण आदि बाह्य सामग्री देखी जाती है, फिर भी उसमें उनके ममकार भाव न होने से उसके सद्भाव को प्राप्ति नहीं कहा जा सकता है। कारण कि जहाँ अरिहन्त परमेष्ठी विराजमान होते हैं, वहाँ उसका सद्भाव देवों के धर्मानुरागवश होता है। उनके गमन करते समय कमलादि की रचना भी देवों के धर्मानुराग का फल है। उत्तर काल में वेदनीय कर्म की व्याख्या में जो अन्तर पड़ा है, वह अन्तर गोत्रकर्म की व्याख्या में भी दिखलाई देता है। यहाँ इसे जीवविपाकी कहा है। धवला निबन्धन अनुयोगद्वार में भी 'गोदमप्पाणम्हि णिबद्धं' गोत्र कर्म आत्मा में निबद्ध है, ऐसा कहा है। इसका आशय यह है कि गोत्रकर्म के उदय से जीव की उच्च और नीच पर्याय का निर्माण होता है। उसका सम्बन्ध वर्णों के साथ नहीं है। यही कारण है कि कर्मभूमि में ब्राह्मण आदि का भेद किये बिना सब मनुष्यों के उच्च या नीच गोत्र का उदय बतलाया है। अमुक वर्ण में उच्चगोत्र का उदय होता है और अमुक वर्ण में नीच गोत्र का ऐसा विभाग वहाँ नहीं किया गया है। क्योंकि वर्ण का सम्बन्ध आजीविका से है, इसलिए नाम के समान वे काल्पनिक हैं। इक्ष्वाकु आदि वंशों के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। कर्मों के इन विभागों के कारण भी अनुभागबन्ध में विविधता आती है। इसलिए स्वामित्व के पूर्व इन विभागों का निर्देश किया है।

सब कर्म दो भागों में विभक्त हैं–प्रशस्त और अप्रशस्त। दूसरे शब्दों में इन्हें पुण्य और पापकर्म भी कहते हैं। बन्ध के समय प्रशस्त परिणामों से जिन्हें अधिक अनुभाग मिलता है, वे प्रशस्त कर्म कहे जाते हैं और अप्रशस्त परिणामों से जिन्हें अधिक अनुभाग मिलता है, उन्हें अप्रशस्त कर्म कहते हैं। चार घातिकर्म ये अप्रशस्त हैं और अघाति कर्म प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकार के हैं। इस कारण अनुभागबन्ध के स्वामित्व में अन्तर पड़ता है, यह स्पष्ट ही है।

इस प्रकार इन तीन अनुयोग द्वारों का निर्देश करके आगे स्वामित्व का विचार किया गया है। जैसा कि पूर्व में निर्देश किया है कि चार घाति कर्म अप्रशस्त हैं, अतएव इनका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामों से ही होगा और ये परिणाम संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि के जाग्रत अवस्था में साकार उपयोग के समय ही हो सकते हैं। यही कारण है कि ऐसी योग्यतासम्पन्न जीव को ही इन कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का बन्धक कहा है। चार अघातिकर्म यद्यपि प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार के होते हैं, पर सामान्य से उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध इन कर्मों में प्रशस्त परिणामों से ही प्राप्त होता है, इसलिए इन कर्मों की क्षपक श्रेणि में जहाँ बन्धव्युच्छित्ति होती है, वहाँ उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध कहा है। मात्र आयुकर्म का बन्ध अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक ही होता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में कहा है। यह उत्कृष्ट स्वामित्व का विचार है। जघन्य स्वामित्व में क्रम बदल जाता है। बात यह है कि जिन कर्मों का उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध होता है, उनका अनुभाग बन्ध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से होगा, यह स्वाभाविक बात है। यही कारण है कि चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभाग बन्ध का स्वामी अपनी व्युच्छित्ति के अन्तिम समय में स्थित क्षपक जीव कहा है। परन्तु यह नियम घातिकर्मों के लिए ही लागू है; अघातिकर्मों के लिए नहीं। क्योंकि अघातिकर्मों में प्रशस्त और अप्रशस्त ऐसा भेद होने के कारण जघन्य अनुभागबन्ध के स्वामित्व में प्रायः परिवर्तमान मध्यम परिणाम ही कारण माने गये हैं। हाँ, गोत्रकर्म में कुछ विशेषता है। बात यह है कि गोत्रकर्म अपने अवान्तर भेदों की अपेक्षा परावर्तमान प्रकृति होने पर भी अग्निकायिक, वायुकायिक और सातवें नरक के मिथ्यादृष्टि जीव के नीचगोत्र का ही बन्ध होता है। उसमें भी विशुद्ध परिणामों की बहुलता सम्यक्त्व के सन्मुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टि नारकी के जितनी सम्भव है, उतनी अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के सम्भव नहीं है, इसलिए ओघ से इसका जघन्य अनुभागबन्ध परावर्तमान मध्यम परिणामों से न कहकर सर्वविशुद्ध सम्यक्त्व के अभिमुख हुए नारकी के कहा है। यह सामान्य से विचार है कि आदेश से जहाँ जो विशेषता सम्भव हो, उसे जानकर स्वामित्व का निर्णय करना चाहिए। आगे काल आदि प्ररूपणाओं में भी यह स्वामित्व प्ररूपणा मूल आधार है, इसलिए यह काल आदि प्ररूपणाओं की योनि कहा जाता है। काल आदि का निर्देश ओघ और आदेश से मूल में किया ही है। कारण का निर्देश वहाँ ही हमने विशेषार्थ देकर कर दिया है, इसलिए पुनः उस सबका यहाँ परिचय कराना उपयुक्त न समझ कर यहाँ चौबीस अनुयोगद्वारों के आगे के प्रकरण को स्पर्श करना उचित मानते हैं।

भुजगारबन्ध—भुजगार पद देशामर्षक है। इससे भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यबन्ध का ग्रहण होता है। पिछले समय में जितना अनुभाग का बन्ध हुआ है, उससे वर्तमान समय में अधिक अनुभाग का बन्ध होना, इसे भुजगार (भूयस्कार)-बन्ध कहते हैं। पिछले समय में बाँधे गये अनुभाग से वर्तमान समय में कम अनुभाग का बन्ध होना, इसे अल्पतरबन्ध कहते हैं। पिछले समय में जितने अनुभाग का बन्ध हुआ है, वर्तमान समय में उतने ही अनुभाग का बन्ध होना, यह अवस्थित बन्ध कहलाता है। तथा जो पहले नहीं बँधकर वर्तमान समय में बँधता है, उसकी अवक्तव्य संज्ञा है। इस प्रकार इन चार विशेषताओं के साथ इस अनुयोगद्वार में अनुभागबन्ध का विचार किया गया है। इसके अवान्तर अधिकार तेरह हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व।

पदनिक्षेप—भुजगार विशेष का नाम पदनिक्षेप है। इस अनुयोगद्वार में अनुभाग बन्ध सम्बन्धी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट अवस्थान, जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान की समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन उपअधिकारों द्वारा विचार किया गया है।

वृद्धि—वृद्धि बन्ध में छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्य इन पदों की समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह उपअधिकारों द्वारा ओघ और आदेश से व्याख्यान किया गया है।

अध्यवसानसमुदाहार—आगे अध्यवसानसमुदाहार प्रकरण प्रारम्भ होता है। इसके बारह भेद हैं—अविभाग प्रतिच्छेद प्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, काण्डकप्ररूपणा, ओजयुग्मप्ररूपणा, षट्स्थानप्ररूपणा, अधस्तनस्थानप्ररूपणा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, पर्यवसानप्ररूपणा और अल्पबहुत्व। खुलासा जानने के लिए धवलाखण्ड ४, पुस्तक १२ में विषय-परिचय के २ से ४ तक पृष्ठ देखिए।

जीवसमुदाहार—आगे जीवसमुदाहार प्रकरण आता है। इसके आठ अनुयोगद्वार हैं—एकस्थान जीवप्रमाणनुगम, निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकालप्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पबहुत्व। इसके स्पष्टीकरण के लिए धवला खण्ड ४, पुस्तक १२ में विषय-परिचय के पृष्ठ ४ से ५ तक देखिए।

इस प्रकार मूल प्रकृति अनुभाग बन्ध का विचार करके उत्तर प्रकृति अनुभाग बन्ध का विचार प्रारम्भ होता है। अनुयोगद्वार सब वही है, जिनका निर्देश मूल प्रकृति अनुयोगद्वार में किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

विषय	*पृष्ठ*
मंगलाचरण	१
अनुभागबन्ध के दो भेदों का नामनिर्देश	१
मूलप्रकृति अनुभागबन्ध	**१-१८०**
मूलप्रकृति अनुभागबन्ध के दो भेद	१-२
निषेकप्ररूपणा	२
स्पर्धकप्ररूपणा	२
चौबीस अनुयोगद्वार	**३-१२३**
संज्ञाप्ररूपणा	३
संज्ञाप्ररूपणा के दो भेद	३
घातिसंज्ञा	३
स्थानसंज्ञा	३
सर्व-नोसर्वबन्धप्ररूपणा	४
उत्कृष्ट अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा	४
जघन्य अजघन्यबन्धप्ररूपणा	४-५
सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्धप्ररूपणा	५
स्वामित्वप्ररूपणा	**६-२५**
स्वामित्व के तीन अनुयोगद्वार	६
प्रत्ययानुगम	६
विपाकदेश	७
प्रशस्ताप्रशस्तप्ररूपणा	७
स्वामित्व के दो भेद	७
उत्कृष्ट स्वामित्व	७-१७
जघन्य स्वामित्व	१७-२५
कालप्ररूपणा	२६-४३
काल के दो भेद	२६
उत्कृष्ट काल	२६-३४
जघन्य काल	३४-४३
अन्तरप्ररूपणा	**४४-७४**
अन्तर के दो भेद	४४
उत्कृष्ट अन्तर	४४-५७
जघन्य अन्तर	५७-७४
सन्निकर्षप्ररूपणा	**७४-७९**
सन्निकर्ष के दो भेद	७४
उत्कृष्ट सन्निकर्ष	७४-७६
जघन्य सन्निकर्ष	७६-७९
नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय	**७९-८१**
उत्कृष्ट भंगविचय	७९-८०
जघन्य भंगविचय	८०-८१
भागाभागप्ररूपणा	**८१-८२**
भागाभाग के दो भेद	८१
उत्कृष्ट भागाभाग	८१-८२
जघन्य भागाभाग	८२
परिमाणप्ररूपणा	**८३-८७**
परिमाण के दो भेद	८३
उत्कृष्ट परिमाण	८३-८५
जघन्य परिमाण	८५-८७
क्षेत्रप्ररूपणा	**८७-९१**
क्षेत्र के दो भेद	८७
उत्कृष्ट क्षेत्र	८७-८८
जघन्य क्षेत्र	८९-९१
स्पर्शनप्ररूपणा	**९१-१०९**
स्पर्शन के दो भेद	९१
उत्कृष्ट स्पर्शन	९१-१००
जघन्य स्पर्शन	१००-१०९
कालप्ररूपणा	**१०१-११६**
काल के दो भेद	१०१
उत्कृष्ट काल	१०१-११४
जघन्य काल	११४-११६
अन्तरप्ररूपणा	**११६-१२०**
अन्तर के दो भेद	११६
उत्कृष्ट अन्तर	११६-११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
जघन्य अन्तर	११९-१२०
भावप्ररूपणा	१२०
अल्पबहुत्वप्ररूपणा	**१२०-१२३**
अल्पबहुत्व के दो भेद	१२०
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१२०-१२१
जघन्य अल्पबहुत्व	१२१-१२३
भुजगारबन्ध	**१२४-१४०**
अर्थपद	१२४
भुजगारबन्ध के तेरह अनुयोगद्वार	१२४
समुत्कीर्तना	१२४-१२५
स्वामित्व	१२५-१२६
काल	१२६-१२७
अन्तर	१२७-१३१
नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय	१३१-१३२
भागाभाग	१३२
परिमाण	१३३
क्षेत्र	१३४
स्पर्शन	१३४-१३७
काल	१३७-१३८
अन्तर	१३८
भाव	१३९
अल्पबहुत्व	१३९-१४०
पदनिक्षेप	**१४१-१६०**
पदनिक्षेप के तीन अनुयोगद्वार	१४१
समुत्कीर्तना	१४१
समुत्कीर्तना के दो भेद	१४१
उत्कृष्ट समुत्कीर्तना	१४१
जघन्य समुत्कीर्तना	१४१
स्वामित्व	**१४१-१५६**
स्वामित्व के दो भेद	१४१
उत्कृष्ट स्वामित्व	१४१-१४९
जघन्य स्वामित्व	१४९-१५६
अल्पबहुत्व	**१५७-१६०**
अल्पबहुत्व के दो भेद	१५७
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१५७-१५८
जघन्य अल्पबहुत्व	१५८-१६०
वृद्धिबन्ध	**१६१-१६८**
वृद्धिबन्ध के तेरह अनुयोगद्वार	१६१
समुत्कीर्तना	१६१
स्वामित्व	१६१-१६२
काल	१६२-१६३
अन्तर	१६३
नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय	१६३-१६४
भागाभाग	१६४
परिमाण क्षेत्र	१६५
स्पर्शन	१६५
काल	१६६
अन्तर	१६६
भाव	१६६
अल्पबहुत्व	१६७-१६८
अध्यवसानसमुदाहार	**१६८-१७६**
अध्यवसानसमुदाहार के बारह अनुयोगद्वार	१६८
अविभाग प्रतिच्छेदप्ररूपणा	१६९
स्थानप्ररूपणा	१७०
अन्तरप्ररूपणा	१७०
काण्डकप्ररूपणा	१७०
ओज-युग्मप्ररूपणा	१७१
षट्स्थानप्ररूपणा	१७१
अधस्तनस्थानप्ररूपणा	१७२-१७३
समयप्ररूपणा	१७४
समयप्ररूपणा अल्पबहुत्व	१७४
वृद्धिप्ररूपणा	१७४-१७५
यवमध्यप्ररूपणा	१७५
अल्पबहुत्व	**१७५-१७६**
अल्पबहुत्व के दो अनुयोगद्वार	१७५
अनन्तरोपनिधा	१७५
परम्परोपनिधा	१७६
जीवसमुदाहार	**१७७-१८०**
जीवसमुदाहार के आठ अनुयोगद्वार	१७७
एकस्थानजीवप्रमाणानुगम	१७७
निरन्तरस्थानजीवानुगम	१७७
सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम	१७७
नानाजीवकालप्रमाणानुगम	१७७
वृद्धिप्ररूपणा	१७७
वृद्धिप्ररूपणा के दो अनुयोगद्वार	१७७
अनन्तरोपनिधा	१७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	*पृष्ठ*
परम्परोपनिधा	१७७
यवमध्यप्ररूपणा	१७६
स्पर्शनप्ररूपणा	१७६
अल्पबहुत्व	१८०
उत्तरप्रकृति अनुभागबन्ध	**१८१-४२७**
उत्तरप्रकृति अनुभागबन्ध के दो अनुयोगद्वार	१८१
निषेकप्ररूपणा	१८१
स्पर्धकप्ररूपणा	१८२
चौबीस अनुयोगद्वार	१८२
संज्ञा	**१८२-१८३**
संज्ञा के दो भेद	१८२
घातिसंज्ञा	१८२
स्थानसंज्ञा	१८३

विषय	*पृष्ठ*
सर्व-नोसर्व उत्कृष्टादिबन्ध	१८४
सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्ध	१८४
स्वामित्वप्ररूपणा	**१८५-२३७**
स्वामित्व के दो भेद	१८५
उत्कृष्ट स्वामित्व	१८५-२१२
जघन्य स्वामित्व	२१२-२३७
कालप्ररूपणा	**२३८-३१४**
काल के दो भेद	२३८
उत्कृष्ट काल	२३८-२७३
जघन्य काल	२७३-३१४
अन्तरप्ररूपणा	**३१४-४२७**
अन्तर के दो भेद	३१४
उत्कृष्ट अन्तर	३१४-३७०
जघन्य अन्तर	३७१-४२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

तदियो अणुभागबंधाहियारो

[णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

१. एत्तो अणुभागबंधो दुविहो—मूलपगदिअणुभागबंधो चेव उत्तरपगदिअणुभागबंधो चेव ।

१ मूलपगदिअणुभागबंधो

२. एत्तो मूलपगदिअणुभागबंधो पुव्वं गमणिज्जं । तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा—णिसेगपरूवणा फद्दयपरूवणा य ।

सब अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सब सिद्धोंको नमस्कार हो, सब आचार्योंको नमस्कार हो, सब उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ।

१. आगे अनुभागबन्धका विचार करते हैं । वह दो प्रकारका है—मूलप्रकृति अनुभागबन्ध और उत्तरप्रकृति अनुभागबन्ध ।

मूलप्रकृति अनुभागबन्ध

२. आगे मूलप्रकृति अनुभागबन्धका सर्व प्रथम विचार करते हैं । उसके दो अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं । यथा—निषेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणा ।

विशेषार्थ—आत्माके साथ सम्बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मोंमें राग, द्वेष और मोहके निमित्तसे जो फलदान शक्ति प्राप्त होती है, उसे अनुभाग कहते हैं । कर्मबन्धके समय जिस कर्मकी जितनी फलदान शक्ति प्राप्त होती है उसका नाम अनुभागबन्ध है । वह ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति और मतिज्ञानावरण आदि उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे दो प्रकारकी है । इस अनुयोगद्वारमें इन्हीं दो प्रकारके अनुभागबन्धोंका विविध मुख्य और अवान्तर प्रकरणों द्वारा विस्तारके साथ विचार किया गया है । सर्व प्रथम मूलप्रकृति अनुभागबन्धका विचार किया गया है और तदनन्तर उत्तरप्रकृति अनुभागबन्धका । मूलप्रकृति अनुभागबन्धका विचार सर्व प्रथम दो अनुयोगोंके द्वारा करके अनन्तर उस परसे फलित होनेवाले अनेक अनुयोगोंके द्वारा विचार किया गया है । मुख्य अनुयोगद्वार ये हैं—निषेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणा । अनुभागकी मुख्यतासे निषेक दो प्रकारके होते हैं—सर्वघाति और देशघाति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिसेगपरूवणा

३. णिसेगपरूवणदाए अट्ठण्णं कम्माणं देसघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादूण णिसेगो। उवरि अप्पडिसिद्धं। चदुण्णं घादीणं सव्वघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादूण णिसेगो। उवरि अप्पडिसिद्धं। एवं णिसेयपरूवणा त्ति समत्तमणियोगद्दारं।

फद्दयपरूवणा

४. फद्दयपरूवणदाए अणंताणंताणं अविभागपडिच्छेदाणं समुदयसमागमेण एगो वग्गो भवदि। अणंताणंताणं वग्गाणं समुदयसमागमेण एगा वग्गणा भवदि। अणंताणंताणं वग्गाणं समुदयसमागमेण एगो फद्दयो भवदि। एवं फद्दयपरूवणा समत्ता।

यद्यपि सर्वघाति और देशघाति यह भेद घातिकर्मोंमें ही सम्भव है, फिर भी अघाति कर्मोंका अनुभाग घातिप्रतिबद्ध मानकर यहाँ ये दो भेद किये गये हैं, क्योंकि अघाति कर्म भी जीवके ऊर्ध्व-गमनत्व आदि प्रतिजीवी गुणोंका घात करनेवाले होनेसे वे घातिप्रतिबद्ध ही हैं। अघाति कर्मोंको अघाति संज्ञा देनेका कारण केवल इतना ही है कि वे जीवके अनुजीवी गुणोंका अंशतः भी घात करनेमें समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार कर्मोंके देशघाति और सर्वघाति निषेकोंका जिसमें विचार किया जाता है, वह निषेक प्ररूपणा है। तथा जिसमें अनुभागकी मुख्यतासे कर्मोंके स्पर्धकोंका विचार किया जाता है, वह स्पर्धक प्ररूपणा है। इस प्रकार मूलप्रकृति अनुभागबन्धका विचार सर्व प्रथम इन दो अनुयोगोंके द्वारा किया गया है।

निषेकप्ररूपणा

अब सर्वप्रथम निषेकप्ररूपणाका विचार करते हैं। उसकी अपेक्षा आठों कर्मोंके जो देशघाति स्पर्धक हैं, उनके प्रथम वर्गणासे लेकर निषेक हैं जो आगे बराबर चले गये हैं। तथा चार घातिकर्मोंके जो सर्वघाति स्पर्धक हैं, उनके प्रथम वर्गणासे लेकर निषेक हैं जो आगे बराबर चले गये हैं।

विशेषार्थ—इस प्रकरणमें आठों कर्मोंके यथासम्भव सर्वघाति और देशघाति निषेक कहाँसे प्रारम्भ होकर कहाँ समाप्त होते हैं, इस विषयका संकेत किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण आगे करेंगे।

इस प्रकार निषेकप्ररूपणा अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

स्पर्धकप्ररूपणा

४. अब स्पर्धक प्ररूपणाका विचार करते हैं। उसकी अपेक्षा अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंके समुदायसमागमसे एक वर्ग होता है। अनन्तानन्त वर्गोंके समुदायसमागमसे एक वर्गणा होती है और अनन्तानन्त वर्गणाओंके समुदायसमागमसे एक स्पर्धक होता है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें सबसे जघन्य अनुभाग शक्त्यंशका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है। प्रत्येक कर्म-परमाणुमें ये अविभागप्रतिच्छेद अनन्तानन्त उपलब्ध होते हैं। किन्तु यहाँ ऐसे कर्म-परमाणु विवक्षित हैं जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। ऐसे जितने कर्म-परमाणु होते हैं, उनमेंसे प्रत्येककी वर्ग और उनके समुदायकी वर्गणा संज्ञा है। अनुभागकी अपेक्षा एक-एक वर्गणामें अनन्तानन्त वर्ग होते हैं और अनन्तानन्त वर्गणाओंका एक स्पर्धक होता है। पहली वर्गणासे दूसरी वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होता है। दूसरी वर्गणासे तीसरी वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें भी एक-एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होता है। इस प्रकार एक-एक अविभागप्रतिच्छेदकी अधिकता स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा तक जाननी चाहिए। इसके बाद दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रत्येक वर्गमें अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंका अन्तर देकर अविभागप्रतिच्छेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउवीस-अणिओगद्दारपरूवणा

५. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चदुवीसमणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा—सण्णा सव्वबंधो णोसव्वबंधो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो एवं याव अप्पाबहुगे त्ति । भुजगारबंधो पदणिक्खेवो वड्डिबंधो अज्झवसाणसमुदाहारो जीवसमुदाहारो त्ति ।

१ सण्णापरूवणा

६. सण्णापरूवणदाए तत्थ सण्णा दुविहा—घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा य। घादिसण्णा चदुण्णं घादीणं उक्कस्सअणुभागबंधो सव्वघादी । अणुकस्सअणुभागबंधो सव्वघादी वा देसघादी वा । जहण्णअणुभागबंधो देसघादी । अजहण्णओ अणुभागबंधो देसघादी वा सव्वघादी वा। सेसाणं चदुण्णं कम्माणं उक्क० अणु० जह० अज० अणुभागबंधो अघादी घादिपडिबद्धो ।

७. ट्ठाणसण्णा य चदुण्णं घादीणं उक्कस्सअणुभाग० चदुट्ठाणियो । अणुक्कस्सअणु० चदुट्ठाणियो वा तिट्ठाणियो वा विट्ठाणियो वा एयट्ठाणियो वा । जह० अणुभा० एयट्ठाणियो । अज० अणु० एयट्ठाणियो वा विट्ठाणियो वा तिट्ठाणियो वा चदुट्ठाणियो वा । चदुण्णं अघादीणं उक्क० चदुट्ठाणियो । अणुक्क० अणुभा० चदुट्ठाणियो वा तिट्ठाणियो वा विट्ठाणियो वा । जह० अणु० विट्ठाणियो । अजह० अणु० विट्ठाणियो वा तिट्ठाणियो वा चदुट्ठाणियो वा ।

उपलब्ध होते हैं । शेष क्रम प्रथम स्पर्धकके समान जानना चाहिए । तथा यही क्रम अन्तिम स्पर्धक तक विवक्षित है ।

चौबीस अनुयोगद्वार प्ररूपणा

५. इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये चौबीस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं । यथा—संज्ञा, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध, अजघन्यबन्ध, सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रुवबन्धसे लेकर अल्पबहुत्व तक। भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धिबन्ध, अध्यवसानसमुदाहार और जीवसमुदाहार ।

१ संज्ञाप्ररूपणा

६. अब संज्ञाप्ररूपणाका प्रकरण है । उसमें भी संज्ञा दो प्रकारकी है—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा । घातिसंज्ञा—चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वघाति होता है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वघाति होता है और देशघाति होता है । जघन्य अनुभागबन्ध देशघाति होता है तथा अजघन्य अनुभागबन्ध देशघाति होता है और सर्वघाति होता है । तथा शेष चार कर्मोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध घातिसे सम्बन्ध रखनेवाला अघाति होता है ।

७. स्थानसंज्ञा—चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है, द्विस्थानीय होता है और एकस्थानीय होता है । जघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानीय होता है । तथा अजघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानीय होता है, द्विस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है और चतुःस्थानीय होता है । चार अघाति कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है और द्विस्थानीय होता है । जघन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानीय होता है तथा अजघन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानीय होता है, त्रिस्थानीय होता है और चतुःस्थानीय होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२-३ सव्व-णोसव्वबंधपरूवणा

८. यो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? सव्वबंधो वा णोसव्वबंधो वा। सव्वे अणुभागे बंधदि त्ति सव्वबंधो। तदो ऊणियं अणुभागं बंधदि त्ति णोसव्वबंधो। एवं सत्तण्णं कम्माणं। एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं।

४-५ उक्कस्स-अणुक्कस्सबंधपरूवणा

९. यो सो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो? उक्कस्सबंधो वा अणुक्कस्सबंधो वा। सव्वुक्कस्सियं अणुभागं बंधदि त्ति उक्कस्सबंधो। तदो ऊणियं बंधदि त्ति अणुक्कस्सबंधो। एवं सत्तण्णं कम्माणं। एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं।

६-७ जहण्ण-अजहण्णबंधपरूवणा

१०. यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स अणुभागबंधो किं जहण्णबंधो अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो

विशेषार्थ—घातिकर्मोंमें चतुःस्थानीयसे लता, दारु, अस्थि और शैलरूप, त्रिस्थानीयसे लता, दारु, और अस्थिरूप, द्विस्थानीयसे लता और दारुरूप और एकस्थानीयसे केवल लतारूप अनुभाग लिया गया है। अघातिकर्मोंमें अनुभाग दो प्रकारका है—प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त अनुभाग गुड, खाँड, शर्करा और अमृतोपम माना गया है। तथा अप्रशस्त अनुभाग नीम, काँजी, विष और हलाहल समान माना गया है। चतुःस्थानीयमें यह चारों प्रकारका, त्रिस्थानीयमें अमृत और हलाहलको छोड़कर शेष तीन तीन प्रकारका और द्विस्थानीयमें गुड और खाँडरूप या नीम और काँजीरूप अनुभाग लिया गया है।

२-३ सर्वबन्ध-नोसर्वबन्धप्ररूपणा

८. जो सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध है उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणीय कर्मका अनुभागबन्ध क्या सर्वबन्ध होता है या नोसर्वबन्ध होता है? सर्वबन्ध भी होता है और नोसर्वबन्ध भी होता है। सब अनुभागका बन्ध होता है, इसलिए सर्वबन्ध होता है। और उससे न्यून अनुभागका बन्ध होता है, इसलिए नोसर्वबन्ध होता है। इसी प्रकार सातों कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

४-५ उत्कृष्टबन्ध-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा

९. जो उत्कृष्टबन्ध और अनुत्कृष्टबन्ध है उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणीय कर्मका अनुभागबन्ध क्या उत्कृष्टबन्ध होता है या अनुत्कृष्टबन्ध होता है? सर्वोत्कृष्ट अनुभागको बाँधता है, इसलिए उत्कृष्टबन्ध होता है और उससे न्यून अनुभागको बाँधता है, इसलिए अनुत्कृष्टबन्ध होता है। इसी प्रकार सात कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

६-७ जघन्यबन्ध-अजघन्यबन्धप्ररूपणा

१०. जो जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध है, उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघ से ज्ञानावरणीयकर्मका अनुभागबन्ध क्या जघन्यबन्ध होता है या अजघन्यबन्ध होता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा अजहण्णबंधो वा। सव्वजहण्णयं अणुभागं बंधमाणस्स जहण्णबंधो। तदो उवरि बंधमाणस्स अजहण्णबंधो। एवं सत्तण्णं कम्माणं। एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं।

८-११ सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधपरूवणा

११. यो सो सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण चदुण्णं घादीणं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो किं सादिबंधो अणादिबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो? सादिय-अद्धुवबंधो। अजहण्णबंधो किं सादि० ४? सादियबंधो वा अणादियबंधो वा धुवबंधो वा अद्धुवबंधो वा। वेदणीय-णामाणं उक्कस्स० जहण्ण० अजहण्ण० किं सादि० अणादि० धुव० अद्धुव०? सादिय०—अद्धुवबंधो। अणुक्कस्सबंधो किं० सादि० ४? सादियबंधो वा अणादियबंधो वा धुवबंधो वा अद्धुवबंधो वा। गोदस्स उक्कस्सबंधो जहण्णबंधो किं सादि० ४? सादिय-अद्धुवबंधो। अणुक्कस्सबंधो अजहण्णबंधो किं सादि० ४? सादिबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो।] आयु० उक्क० अणु० जह० अज० किं सादि० ४? सादिय-अद्धुव०। एवं ओघभंगो मदि०-सुद०—असंज०—अचक्खुदं०—भवसि०—मिच्छादि०। णवरि भवसिद्धिए धुवबंधो णत्थि। सेसाणं सादिय-अद्धुव०। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

जघन्यबन्ध भी होता है और अजघन्यबन्ध भी होता है। सबसे जघन्य अनुभागको बाँधता है, इसलिए जघन्यबन्ध होता है और उससे अधिक अनुभागको बाँधता है, इसलिए अजघन्यबन्ध होता है। इसी प्रकार सातों कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

८-११ सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्धप्ररूपणा

११. जो सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रुवबन्ध है, उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घाति कर्मोंका उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्ट और जघन्यबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। अजघन्यबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है, अनादिबन्ध है, ध्रुवबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। वेदनीय और नामकर्मका उत्कृष्टबन्ध जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। अनुत्कृष्टबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है, अनादिबन्ध है, ध्रुवबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। गोत्रकर्मका उत्कृष्टबन्ध और जघन्यबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। अनुत्कृष्टबन्ध और अजघन्यबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, ? क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है, अनादिबन्ध है, ध्रुवबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। आयुकर्मका उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध क्या सादिबन्ध है, क्या अनादिबन्ध है, क्या ध्रुवबन्ध है या क्या अध्रुवबन्ध है? सादिबन्ध है और अध्रुवबन्ध है। इसी प्रकार ओघके समान मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंमें ध्रुवबन्ध नहीं होता है। शेष मार्गणाओंमें सादि और अध्रुवबन्ध होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२ सामित्तपरूवणा

१२. एत्तो सामित्तस्स[1] कच्चे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—पच्चयाणुगमो विवागदेसो पसत्थापसत्थपरूवणा चेदि। पच्चयाणुगमेण छण्णं कम्माणं मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं। वेदणीयस्स मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं योगपच्चयं। एवं णेदव्वं याव अणाहारए त्ति।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कादाचित्क होते हैं तथा जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणीमें होता है, इसलिए ये तीनों सादि और अध्रुवके भेदसे दो-दो प्रकारके होते हैं। अब रहा अजघन्य अनुभागबन्ध सो जघन्य अनुभागबन्धके प्राप्त होनेके पूर्व तक अनादिकालसे जितना भी अनुभागबन्ध होता है, वह सब अजघन्य है। तथा उपशमश्रेणिमें इन चार घातिकर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति होकर पुनः इनका बन्ध होने लगता है, इसलिए अजघन्य अनुभागबन्धके सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चारों विकल्प बन जाते हैं। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध कादाचित्क होता है और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए ये तीनों सादि और अध्रुवके भेदसे दो-दो प्रकारके होते हैं। अब रहा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सो उत्कृष्ट अनुभागबन्धके प्राप्त होनेके पूर्वतक वह अनादि है और उपशमश्रेणिमें उस अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी व्युच्छित्ति होकर पुनः उसका बन्ध होने पर वह सादि है, इसलिए अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चारों विकल्प बन जाते हैं। गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें और जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर प्राप्त होता है, इसलिए ये दो सादि और अध्रुव हैं। तथा इनके प्राप्त होनेके पूर्वतक अनुत्कृष्ट और अजघन्य अनुभागबन्ध अनादि है और उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति होकर पुनः इनका बन्ध होने पर ये सादि हैं, इसलिए अनुत्कृष्ट और अजघन्य अनुभागबन्धके सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चारों विकल्प होते हैं। यहाँ सर्वत्र ध्रुव अभव्योंकी अपेक्षा और अध्रुव भव्योंकी अपेक्षा कहा है। आयुकर्मका बन्ध कादाचित्क है इसलिए इसके उत्कृष्ट आदि चारोंके सादि और अध्रुव ये दो ही विकल्प होते हैं। मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य और मिथ्यादृष्टि इन मार्गणाओंमें यह ओघप्ररूपणा अविकल बन जाती है, क्योंकि एक तो ये अनादिकालसे सदा बनी रहती हैं दूसरे गुणप्रतिपन्न होनेके बाद पुनः मिथ्यात्वमें आने पर इनकी प्राप्ति सम्भव है। उसमें भी अचक्षुदर्शनी और भव्य मार्गणा गुणप्रतिपन्न जीवोंके भी क्रमसे क्षीणमोह और अयोगिकेवली गुणस्थान तक पाई जाती हैं, इसलिए इन सब मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणाके समान निर्देश किया है। मात्र भव्यमार्गणामें ध्रुव विकल्प घटित नहीं होता, इतना विशेष जानना चाहिए। शेष सब मार्गणाएँ यथासम्भव बदलती रहती हैं, इसलिए उनमें उत्कृष्ट आदि चारों सादि और अध्रुव ये दो प्रकारके ही प्राप्त होते हैं। यद्यपि अभव्य मार्गणा ध्रुव है फिर भी उसमें उत्कृष्ट आदि अनुभागबन्धोंके अनादि और ध्रुव न होनेसे सादि और अध्रुव ये दो विकल्प ही घटित होते हैं।

१२ स्वामित्वप्ररूपणा

१२. आगे स्वामित्वका कथन करनेके लिए यहाँ ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—प्रत्ययानुगम, विपाकदेश और प्रशस्ताप्रशस्त प्ररूपणा। प्रत्ययानुगमकी अपेक्षा छहकर्म मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय और कषायप्रत्यय होते हैं। वेदनीयकर्म मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कषायप्रत्यय और योगप्रत्यय होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

१. मूलप्रतौ सामित्तस्स कम्म तत्थ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. विवागदेसेण छण्णं कम्माणं जीवविवाग० । आयुग० भवविवाग० । णामस्स जीवविवाग० पोग्गलविवाग० खेत्तविवाग० । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

१४. पसत्थापसत्थपरूवणदाए चत्तारि घादीओ अप्पसत्थाओ । वेदणी०–आयुग०–णाम०–गोद० पसत्थाओ अप्पसत्थाओ य । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

१५. एदेण अट्ठपदेण सामित्तं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०–ओघेण आदे० । ओघे० णाणावर०–दंसणावर०–मोहणी०–अंतराइगाणं उक्कस्स-अणुभागबंधो कस्स ? अण्णद० चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिमिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जागार० णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्सगे अणुभाग-बंधे वट्टमाणस्स । वेदणीय-णामा-गो० उक्क० अणुभागबं० कस्स ? अण्णद० खवगस्स सुहुम० चरिमे उक्कस्सए अणुभाग० वट्टमा० । आयु० उक्क० अणुभाग० ? अप्पमत्त-

---

विशेषार्थ—यहाँ प्रत्यय शब्दसे बन्धके हेतुओंका ग्रहण किया है। बन्धके हेतु चार हैं—मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग। अन्यत्र प्रमादको भी बन्धका हेतु कहा है। किन्तु वह असंयम और कषायकी मिलीजुली अवस्था है, इसलिए यहाँ उसका पृथक्से निर्देश नहीं किया है। वेदनीयका केवल योगहेतुक भी बन्ध होता है, इसलिए उसके बन्धके हेतु चार कहे हैं। शेष छह कर्मोंका केवल योगहेतुक बन्ध नहीं होता, इसलिए उनके बन्धके हेतु तीन कहे हैं। यहाँ आयुकर्मका किंनिमित्तक बन्ध होता है, इसका निर्देश नहीं किया। कारण कि उसका सार्वकालिकबन्ध नहीं होता। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जहाँ मिथ्यात्वबन्धका हेतु है वहाँ शेष सब हैं। असंयमके सद्भावमें मिथ्यात्व है भी और नहीं भी है। किन्तु कषाय और योग अवश्य हैं। कषायके सद्भावमें मिथ्यात्व और असंयम हैं भी और नहीं भी हैं, किन्तु योग अवश्य है। योगके सद्भावमें प्रारम्भके तीन हैं भी और नहीं भी हैं।

१३. विपाक देशकी अपेक्षा छह कर्म जीवविपाकी हैं। आयुकर्म भवविपाकी है तथा नामकर्म जीवविपाकी पुद्गलविपाकी और क्षेत्रविपाकी है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

१४. प्रशस्ताप्रशस्त प्ररूपणाकी अपेक्षा चार घातिकर्म अप्रशस्त होते हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकारके होते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अन्यत्र जिनकी पुण्य और पाप संज्ञा कही है, उन्हींकी यहाँ प्रशस्त और अप्रशस्त संज्ञा दी है। चार घातिकर्मोंका अनुभागबन्ध अप्रशस्त ही होता है। तथा शेष चार कर्मोंका अनुभागबन्ध दोनों प्रकारका होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि शेष चार कर्मोंके अवान्तर भेदोंमें कोई प्रशस्त प्रकृतियाँ होती हैं और कोई अप्रशस्त, इसलिए यहाँ पर इन चार कर्मोंको दोनों प्रकारका कहा है।

१५. इस अर्थ पदके अनुसार स्वामित्व दो प्रकारका है जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मोके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है? पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार, जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभाग बन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत तत्प्रायोग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजदस्स सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्क० अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। एवं ओघभंगो पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारग त्ति।

१६. आदेसेण णिरयगदीए घादीणं उक्क० अणुभाग० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० सागार-जागार० संकिलि० उक्क० अणुभा० वट्टमाण०। वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभाग० कस्स० ? अण्णद० सम्मादि० सागार-जागार० सव्वविसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वट्ट०। आयुग० उक्क० अणुभाग० कस्स० ? अण्णद० सम्मादि० सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वट्ट०। एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि सत्तमाए आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्ध० उक्क० अणुभा० वट्ट०।

१७. तिरिक्खेसु घादीणं उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० सागार-जागा० सव्वसंकिलिट्ठस्स० उक्क० अणुभा० वट्ट०। वेद०-णामा-गोद० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० संजदासंजद० सागा०-जागा० सव्वविसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वट्ट०। आयु० उक्क० अणुभाग० कस्स० ? अण्ण० पंचिं०

विशुद्धि युक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अप्रमत्त संयत जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है। इसी प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँच-मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवाले चक्षुदर्शनी, अचक्षु-दर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंमें चारों गतियों और दश गुणस्थानोंकी प्राप्ति सम्भव होनेसे ओघ प्ररूपणा बन जाती है।

१६. आदेशसे नरकगतिमें घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार जागृत संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभाग बन्धमें अवस्थित अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त तीन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत तत्प्रायोग्यविशुद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्धि युक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मिथ्यादृष्टि आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है।

१७. तिर्यञ्चोंमें घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार जागृत सर्वसंक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च घातिकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, सर्व विशुद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर संयतासंयत तिर्यञ्च उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, मिथ्यादृष्टि सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश युक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च आयुकर्मके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सण्णि-मिच्छादि० सव्वाहि पज्जत्तीहिं० सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स उक्क० अणुभा० वट्ट०। एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३।

१८. पंचिंदि०तिरिक्खअप० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा०-जागा० उक्कस्ससंकिलि० उक्क० अणुभा० वट्ट०। वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागार-जागार० सव्वविसु० उक्क० अणुभा० वट्ट०। आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्क० अणुभा० वट्ट०। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-पंचिंदिय-तसअपज्ज०। णवरि विगलिंदिएसु अण्णदरेसु पज्जत्तग त्ति भाणिदव्वं।

१९. मणुस०३ ओघभंगो। णवरि घादीणं उक्कस्सओ अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलेस० उक्क अणुभा० वट्ट०।

२०. देवाणं याव उवरिमगेवज्जा त्ति णेरइगभंगो। अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० उक्क० संकिलि० उक्क० अणुभा० वट्ट०। सेसं देवोघं।

२१. एइंदियाणं घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० बादरएइंदि० सव्वाहि प० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। वेद०-णामा० उक्क० ? बादरएइंदि० सव्वाहि प० सागा०-जा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट०। आयु० उक्क० अणुभा० ?

उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिये।

१८. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश युक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर संज्ञी जीव चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्यविशुद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रियोंमें अन्यतर पर्याप्तक जीवोंके उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये।

१९. मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

२०. सामान्य देवोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें चार घातिकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर जीव चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष स्वामित्व सामान्य देवोंके समान है।

२१. एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय और नाम कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव उक्त दोनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादर० सागार-जा० तप्पाओग्गवि० उक्क० वट्ट० । गोद० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० बादरपुढ०-आउ०-वणप्फदि० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्त० सागार-जा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । एवं बादर-बादरपज्जत्त०-बादरअपज्ज०-सुहमपज्जत्तापज्जत्ताणं ।

२२. पुढवि०-आउ०-वणप्फदिपत्ते०-णिगोद० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स ? अण्ण० बादर० सव्वाहि प० सागा०-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० बादर० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० उक्क० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? बादरस्स तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० । एवं बादरपज्जत्तापज्जत्ताणं सव्वसुहुमाणं पि । णवरि यं यं उद्दिस्सदि तस्स णामगहणं[1] कादव्वं ।

२३. तेउ०-वाउ० धादि०४ गोदस्स च उक्क० अणु० कस्स० ? बादर० सव्वाहि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० । वेदणी०-णामा० उक्क० अणुभा० कस्स ? अण्ण० बादर० सागार-जा० सव्वविसु० उक्क० अणुभा० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स ?

विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक जीव गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय, बादर अपर्याप्त एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें उच्च गोत्रका बन्ध अग्निकायिक, वायुकायिक जीवोंके नहीं होता, इसलिए गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी इनको छोड़कर शेष तीन बादरकायवाले जीवोंके कहा है।

२२. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और निगोद जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर जीव चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार इनके बादर, बादरपर्याप्त, बादर अपर्याप्त और सब सूक्ष्म जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है जिस जिसका उद्देश्य हो, वहाँ उसका नाम ग्रहण करके स्वामित्व प्राप्त करना चाहिए।

२३. अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें चार घातिकर्मों और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त उक्त बादर जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामी हैं। वेदनीय और नामकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर उक्त जीव उक्त दोनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामी हैं। आयुकर्मके उत्कृष्ट

[1] मूलप्रतौ—गहणं ण कादव्वं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्ण० बादर० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० । एवं बादर-पज्जत्तापज्जत्ताणं सुहुमाणं पि णेदव्वं ।

२४. ओरालियमि० घादि०४ उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि-मिच्छा० तिरिक्ख० मणुसस्स वा सागार-जा० णियमा उक्कस्सअणुभा० वट्ट० । वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मादि० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छा० तिरिक्ख-मणुस० सागार-जा० तप्पाओग्गवि० उक्क० वट्ट० ।

२५. वेउव्वियका० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? देवस्स वा णेरइयस्स वा मिच्छादि० सागार-जागा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? देव० णेरइ० सम्मादि० सागार-जा० णियमा सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० । एवं वेउव्वियमि० । आयु० णत्थि । णवरि वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० उवसमणादो परिवदस्स पढमसमए देवस्स ।

अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर उक्त जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामी हैं । इसी प्रकार इनके बादर, बादरपर्याप्त बादर अपर्याप्त और सब सूक्ष्म जीवोंके भी जानना चाहिए ।

२४. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, तिर्यञ्च या मनुष्य, साकार-जागृत और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पञ्चेन्द्रिय उक्त जीव चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सम्यग्दृष्टि, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, तिर्यञ्च या मनुष्य, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पञ्चेन्द्रिय उक्त जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

२५. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर देव या नारकी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्धि युक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए । परन्तु इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता । तथा इतनी विशेषता है कि इनके वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उपशमश्रेणिसे गिरकर प्रथम समयमें देव हुआ अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. आहार०-आहारमि० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सागा०-जागा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० सव्वविसु० उक्क० अणु० वट्ट०। आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० तप्पाओंग्गविसु० उक्क० वट्ट०। णवरि आहारमिस्स० सरीरपज्जत्तीहि गाहिदि त्ति।

२७. कम्मइग० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स सण्णि-मिच्छादि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० अणुभागबंधे वट्ट०। वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० चदुगदियस्स सम्मादि० सागार-जा० सव्वविसु० उक्क० अणुभा० वट्ट०। अथवा उवसमस्स कालगदस्स पढमसमयदेवगदस्स।

२८. इत्थि०-पुरिस० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिगदियस्स सण्णि-मिच्छादिट्ठि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। वेदणी०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० खवगस्स अणियट्टि० उक्क० अणुभा० वट्ट०। आयु० ओघं।

२९. णवुंसगे घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० तिगदियस्स

---

२६. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर उक्त जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर उक्त जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्धियुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर उक्त जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगमें जो जीव शरीर पर्याप्तिको ग्रहण करेगा, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

२७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। अथवा जो उपशामक जीव मर कर प्रथम समयवर्ती देव हुआ है, वह उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

२८. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयु कर्मका भङ्ग ओघके समान है।

२९. नपुंसकवेदवाले जीवोंमें चार घातिकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादि० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । वेदणी०-आयुग०-णामा-गोदाणं इत्थिभंगो ।

३०. अवगद० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० उवसम० परिवद-माणस्स चरिमे उक्क० अणुभा० वट्ट० । वेदणी०-णामा-गो० ओघं ।

३१. कोध-माण-मायासु घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सेसाणं णवुंसगभंगो ।

३२. मदि०-सुद० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मणुस० संजमाभिमुहस्स सव्वविसु० चरिमे उक्क० अणुभा० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० पंचिंदि० सण्णि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्क० वट्ट० । एवं विभंगे ।

३३. आभिणि०—सुद०—ओधि० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० चदुगदि० असंजदसम्मा० सव्वाहि पज्ज० सागार-जा० उक्क० मिच्छत्ताभिमुह० चरिमे उक्क० वट्ट० । वेदणी०-आयुग०-णामा-गो० ओघभंगो । एवं ओधिदंस०-सम्मादि० ।

नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तीन गतिका मिथ्या-दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है ।

३०. अवगतवेदी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर गिरनेवाला उपशामक जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग ओघके समान है ।

३१. क्रोध, मान और मायाकषायवाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनु-भागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । शेषकर्मोंका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है ।

३२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संयमके अभिमुख, सर्वविशुद्ध और अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनु-भागबन्धका स्वामी कौन है ? पंचेन्द्रिय, संज्ञी, साकार-जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंमें जानना चाहिए ।

३३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित, अन्यतर चार गतिका असंयत सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. मणपज्ज० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंज० णियमा उक्क० संकिलि० असंजमाभिमुह० चरिमे उक्क० वट्ट० । सेसाणं ओघं । एवं संजदाणं । णवरि घादि०४ मिच्छत्ताभिमुह० चरिमे उक्क० वट्ट० । एवं सामाइय-च्छेदो० । णवरि वेदणी०-णामा-गो० अणियट्टि० खवग० ।

३५. परिहार० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंजद० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० सामाइय--च्छेदोवट्ठावणाभिमुह० चरिमे उक्क० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्तसंज० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० । आयु० ओघं ।

३६. सुहुमसंप० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० उवसम० परिव-दमाण० चरिमे० उक्क० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० खवग० चरिमे उक्क० वट्टमाण० ।

३७. संजदासंजदा० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छत्ताभिमुह० सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । वेद०-

ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

३४. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, असंयमके अभिमुख और अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित और मिथ्यात्वके अभिमुख संयत जीव चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी अनिवृत्तिक्षपक जीव होता है ।

३५. परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, सामायिक और छेदोपस्थापना संयमके अभिमुख और अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम, और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है ।

३६. सूक्ष्मसांपरायिक जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर गिरनेवाला उपशामक उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

३७. संयतासंयतोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यात्वके अभिमुख, साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० संजमाभिमुह० चरिमे उक्क० वट्ट० । आउ० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० ।

३८. असंज० घादि०४ मदि०भंगो। वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंजद सम्मादि० संजमाभिमुह० उक्क० वट्ट० । आयु० मदि०भंगो ।

३९. किण्णले० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिगदियस्स सागार-जा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । वेद-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० णेरइयस्स असंजदसम्मा० सव्वविसुद्ध० उक्क० वट्ट० । आयु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० मिच्छादि० सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठ० उक्क० वट्ट० । एवं णील-काऊणं । णवरि णेरइयस्स कादव्वं ।

४०. तेऊए घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० देवस्स मिच्छादि० सागार-जा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । वेद-णामा-गो० परिहारभंगो। आउ० ओघं । एवं पम्माए । णवरि घादीणं सहस्सारभंगो ।

अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके अभिमुख और अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

३८. असंयतोंमें चार घाति कर्मोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

३९. कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जाग्रत, तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ नारकीके उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करना चाहिए।

४०. पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर देव मिथ्यादृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका भंग परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके समान है। आयु कर्मका भंग ओघके समान है। इसीप्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें चार घातिकर्मोंका भंग सहस्रारकल्पके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. सुक्काए घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० देवस्स उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सेसाणं ओघं ।

४२. अब्भवसि०-मिच्छा० मदिभंगो । णवरि अब्भवसि० वेद-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सण्णि० पंचिंदि० सागार-जा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । अहवा मणुसस्स दव्वसंजदस्स कादव्वं ।

४३. वेदगे० घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० असंज० सागार-जा० उक्क० मिच्छत्ताभिमुहस्स उक्क० अणु० वट्ट० । सेसं परिहारभंगो ।

४४. खइगे घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० असंज० सागार-जा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सेसं ओघं ।

४५. उवसम० घादि०४ उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० असंज० सागार-जा० णिय० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिमुह० उक्क० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० उवसमसुहुमसंप० चरिमे उक्क० वट्ट० ।

४६. सासणे घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागार-

---

४१. शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर देव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है ।

४२. अभव्यों और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अभव्योंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, पंचेन्द्रिय, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है अथवा द्रव्यसंयत मनुष्य उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंका भंग परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके समान है ।

४४. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है ।

४५. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर उपशामक, सूक्ष्मसांपरायिक जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा० णिय० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिमुह० उक्क० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागार-जागा० णिय० सव्वविसु० । आउ० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० ।

४७. सम्मामिच्छा० घादि० ४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागार-जा० णिय० उक्क० मिच्छत्ताभिमु० उक्क० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० चदुगदि० सागार-जागार० सव्वविसुद्ध० सम्मत्ताभिमु० उक्क० वट्ट० ।

४८. असण्णीसु घादि०४ उक्क० अणुभा० कस्स० ? पंचिंदि० पज्जत्त० सागार० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० अणुभा० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० पज्जत्त० सागा० सव्वविसु० उक्क० अणु० वट्ट० । आउ० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्णद० पंचिंदि० पज्जत्त० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्क० वट्ट० । [अणाहार कम्मइ० ।] एवं उक्कस्सं समत्तं ।

४९. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० णाणा०-दंसणा०-अंतरा० जहण्णओ अणुभागबंधो कस्स० ? अण्णदरस्स खवगस्स सुहुमसंपराइगस्स चरिमे

साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और नियमसे सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मनुष्य आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४७ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट मिथ्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभाग बन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यत्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभाग बन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है ।

४८. असंज्ञी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभाग बन्धमें अवस्थित अन्यतर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । अनाहारक जीवोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

४९. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक सूक्ष्मसांपरायिक जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुभा० वट्ट० । मोह० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० खवग० अणियट्टि० चरिमे जह० अणु० वट्ट० । वेद०-णामा० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स । आयु० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० जहण्णियाए अपज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मज्झिमपरिणामस्स जह० अणु० वट्ट० । गोद० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइ० मिच्छा० सागा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० चरिमे जह० अणु० वट्ट० । एवं ओघभंगो पंचिंदि० तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति ।

५०. णेरइएसु घादि०४ जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० असंजदसं०सागा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० ओघं । आउ० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि०जहण्णियाए पज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मज्झिमपरिणामस्स । एवं सत्तमाए । उवरिमासु वि तं चेव । णवरि गोदस्स जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० मिच्छादि० परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जह० अणु० वट्ट० ।

५१. तिरिक्खेसु घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० संजदासंजद०

भागबन्धका स्वामी है। मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? अन्तिम जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव वेदनीय और नाम कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर जघन्य अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान, मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित जीव आयु कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख और अन्तिम जघन्य अनुभाग बन्धमें अवस्थित अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी मिथ्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार ओघके समान पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, लोभकषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

५०. नारकियोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भंग ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव आयुके कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये। ऊपरकी अन्य पृथिवियोंमें भी यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

५१. तिर्यञ्चोंमें घातिकर्मोंके जघन्य अनभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागार-जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । वेद०-आउ०-णामा० ओघं । गोद०जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० जीवस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि० सागार-जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३ । णवरि गोद० जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० पंचिंदि० मिच्छादि० परियत्त० जह० अणु० वट्ट० ।

५२. पंचिंदियतिरिक्खअप० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । वेद०-णामा-गो० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मज्झिम० जह० अणुभा० वट्ट० । आउ० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० जहण्णिगाए अपज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाण० मज्झिम० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्ववि-गलिंदि०-पंचिंदि०-तस०अपज्ज० ।

५३. मणुस०३ सत्तण्णं कम्माणं ओघो । गोद० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम० जह० अणुभा० वट्ट० ।

५४. देवाणं याव उवरिमगेवज्जा त्ति विदियपुढविभंगो । अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति सत्तण्णं कम्माणं देवोघं । गोद० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सव्वाहि० सागार० णिय० उक्क० संकिलि० जह० अणु० वट्ट० ।

विशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर संयतासंयत जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी है। वेदनीय, आयु, और नाम कर्मका भङ्ग ओघके समान है। गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

५२. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर जीव आयु कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

५३. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

५४. देवोंमें उपरिम ग्रैवेयक तक दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. एइंदिएसु घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० बादर० सव्वाहि प० सागार-जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । वेद०-आउ०-णामा-गो० तिरिक्खोघं। एवं बादर० सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० ।

५६. पुढवि०-आउ०-वणप्फदि०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-णिगोद० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० बादर० पज्जत्त० सागार-जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । तिण्णि क० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० परियत्त०मज्झिमपरि० । आउ० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० अपज्जत्तगणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाण० मज्झिम० जह० अणु० वट्ट० । एवं बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं च । तेउ०-वाउ० घादि०४ गोदस्स० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० बादरपज्जत्त० सागार-जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । सेसाणं पुढविभंगो ।

५७. ओरालियका० सत्तण्णं कम्माणं ओघं । गोदे जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०—वाउ० सागार-जा० सव्वविसु० ।

५८. ओरालियमि० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स ? अण्ण० तिरिक्खमणुस० असंजदसम्मादिट्ठि० सागार-जा० सव्वविसु० सेकाले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति । गोद०

५५. एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

५६. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और निगोद जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादरपर्याप्त उक्त जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला उक्त जीव तीन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तिमान, मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर उक्त जीव आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार इनके बादर और सूक्ष्म तथा इन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर बादरपर्याप्त जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

५७. औदारिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर अग्निकायिक और वायुकायिक जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

५८. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको ग्रहण करेगा ऐसा अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एइंदियभंगो । णवरि सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति भाणिदव्वं । सेसाणं ओघं ।

५९. वेउव्वि० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० देवस्स० णेरइ० असंजद०सम्मादि० सागार-जा० सव्वविसु० जह० वट्ट० । गोद० ओघं । वेदणी०-आउ०-णाम० णिरयोघं ।

६०. वेउव्वियमिस्स० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० असंजदस० से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति सागार-जा० सव्वविसु० जह० अणु० वट्ट० । गोद० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० अत्थि य सत्तमाए पुढ० णेरइ० मिच्छादि० सागा०-जा० सव्वविसु० से काले सरीर० । वेद०-णामा० ओघं ।

६१. आहारका० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० सव्वविसु० । सेसमणुदिसभंगो । एवं आहारमि० । णवरि से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति भाणिदव्वं ।

६२. कम्मइ० घादि०४ जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० असंजद-सम्मा० सागार-जा० सव्वविसु० जह० वट्ट० । गोद० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० अत्थि य सत्तमाए पुढ० मिच्छादि० सागार- जा० सव्वविसु० जह० वट्ट० । सेसं परि-

है । गोत्रकर्मका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको ग्रहण करेगा, ऐसा कहना चाहिये । शेष कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है ।

५९. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । गोत्रकर्मका भङ्ग ओघके समान है । वेदनीय, आयु और नामकर्मका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है ।

६०. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा, ऐसा साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर देव और नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा, ऐसा अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी मिथ्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय और नाम कर्मका भङ्ग ओघके समान है ।

६१. आहारककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंका भङ्ग अनुदिशके समान है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको ग्रहण करेगा, उसके कहना चाहिए ।

६२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्तमाण० सम्मा० मिच्छा० ।

६३. इत्थि० पुरिस० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० खवग० अणियट्टि० चरिमे जह० अणु० वट्ट० । वेद०—णामा० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० परिय० जह० वट्ट० । आउ० ओघं । गोद०जह० अणु० ? तिगदि० मिच्छादि० परियत्त० जह० अणु० वट्ट० ।

६४. णवुंसग० घादि०४ इत्थि०भंगो । वेद०—णामा० जह० अणु० तिगदि० । आउ० गोद० ओघं ।

६५. अवगदवे० घादि०४ ओघं । वेद०-णामा-गो० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० उवसम० परिवदमा० चरिमे जह० अणु० वट्ट० ।

६६. कोध—माण मायासु घादि०४ णवुंसगभंगो । वेद०-णामा० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० परिय० जह० अणु० वट्ट० । आउ०—गोद० ओघं ।

६७. मदि०—सुद० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागारजा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० चरिमे वट्ट० । सेसं ओघं । एवं विभंग०-अब्भवसि०-मिच्छा० । णवरि अब्भवसि० दव्वसंज० ।

अनुभागबन्धका स्वामी परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव है ।

६३. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें विद्यमान अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है ।

६४. नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । आयु और गोत्रकर्मका भङ्ग ओघके समान है ।

६५. अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर गिरनेवाला उपशामक उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है ।

६६. क्रोध, मान और माया कषायवाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग नपुंसकवेदीके समान है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें विद्यमान अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । आयु और गोत्रकर्मका भङ्ग ओघके समान है ।

६७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके अभिमुख और अन्तिम जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अभव्य जीवोंमें द्रव्यसंयत जीवोंके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४ ओघं। वेद०-णामा० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० परियत्तमा०मज्झिम०। आयु० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण०पज्जत्त णिव्वत्तीए णिव्वत्तमाण० जह० अणु० वट्ट०। गोद० जह० अणु० कस्स०? चदुगदि० सागार जा० णिय०उक्क०संकिलि० मिच्छत्ताभिमुह० जह० अणु० वट्ट०।

६९. मणपज्ज० वे०-गोद० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण सागार-जा०णिय० उक्क० संकिलि० असंजमाभिमुह० जह० वट्ट०। सेसं आभिणि०भंगो। एवं संजदा०। णवरि गोद० मिच्छत्ताभिमुह०।

७०. सामाइ०-छेदो० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० अणियट्टि-खवग०। सेसं मणपज्जवभंगो। णवरि गो० मिच्छत्ताभिमुह० जह० वट्ट०।

७१. परिहार० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्तसंज० सागार-जा० सव्वविसु०। वेद०-आउ०-णामा० जह० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० परिय० मज्झिम० जह० अणु० वट्ट०। गोद० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० पमत्त० सागार-जा० णिय० उक्क० संकिलि० सामाइ०-छेदो० अभिमुह० ज० वट्ट०।

---

६८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मो का भङ्ग ओघ के समान है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर चार गति का जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला है। आयु के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? जघन्य पर्याप्तनिवृत्तिसे निवर्तमान और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्म के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

६९. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें वेदनीय और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकारजागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, असंयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्धमें विद्यमान अन्यतर जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि गोत्र-कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी मिथ्यात्वके अभिमुख जीव है।

७०. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपक उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी मिथ्यात्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्धमें विद्यमान उक्त जीव है।

७१. परिहारविशुद्ध संयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, और सर्वविशुद्ध अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें विद्यमान अन्यतर जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनु-भागबन्धका स्वामी है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, सामायिक और छेदोपस्थापना संयमके अभिमुख तथा जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. सुहुमसंप० घादि०३ ओघं। णवरि वेद० णामा-गो० जह० अणु० ? परिवद० जह० वट्ट० ।

७३. संजदासंजदा० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्णद० मणुस० सम्मादि० सव्वविसु० संजमाभिमुह० । वेद०-णामा०-आउ० परिहारभंगो। गोद० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० सागार-जा० णिय० उक० संकिलि० मिच्छत्ता-भिमुह० जह० वट्ट० ।

७४. असंजदेसु घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागार-जा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० जह० वट्ट० । सेसं ओघं ।

७५. किण्णले० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० सम्मादि० सव्व-विसु० । वेद०-णामा-गो० णिरयोघं । आउ० ओघं । एवं णील-काऊणं । णवरि गोद० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० जीवस्स सव्वाहि पज्ज० सागार-जा० सव्वविसु० । णवरि णील० तप्पाओग्गविसुद्ध० ।

७६. तेऊए घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सव्वविसुद्धस्स । सेसं सोधम्मभंगो । एवं पम्माए वि । सुकाए घादि०४ जह० अणु० कस्स ? ओघं । सेसाणं आणदभंगो ।

---

७२. सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें तीन घातिकर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उपशमश्रेणीसे गिरनेवाला और जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

७३. संयतासंयतोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और आयुकर्मका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्धमें विद्यमान अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है।

७४. असंयतोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्धमें विद्यमान अन्यतर मनुष्य उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है।

७५. कृष्णलेश्यामें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर नारकी सम्यग्दृष्टि जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर अग्निकायिक और वायुकायिक जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि नीललेश्यामें तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

७६. पीतलेश्यामें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें भी जानना चाहिये। शुक्ल लेश्यामें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी ओघके समान है। शेष कर्मोंका भङ्ग आनत कल्पके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७, खइग० घादि०४ ओघं। गोद० जह० अणु० ? चदुगदि० असंज० सागार-जा० णिय० उक्क०। सेसं ओधिभंगो। वेदग० घादि०४ तेउ०भंगो। सेसं ओधिभंगो। उवसम० घादितिगं जह०.अणु० कस्स० ? अण्ण० उवसम० सुहुमसंप० चरिमे जह० वट्ट०। वेद०-णामा-गो० ओधिभंगो। मोह० जह० अणु० कस्स०। अण्ण० उवसम० अणियट्टि०।

७८. सासणे घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सव्वविसु०। वेद०-णामा० जह० अणु० कस्स० ? चदुगदि० परिय०मज्झिम०। आयु० णिरयभंगो। गोद० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण०सत्तमाए पुढ० सागार-जा० सव्वविसु०।

७९. सम्मामि० घादि०४ जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह०। वेद०-णामा० जह० अणु० ? चदुगदि० परिय०। गोद० जह० अणु० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागार-जागा० णिय० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिमुह०। असण्णी० एइंदियभंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं जहण्णयं समत्तं।

एवं सामित्तं समत्तं।

७७ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंका भंग पीतलेश्यावाले जीवोंके समान है। शेष कर्मोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीन घाति कर्मोंके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है? अन्तिम जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर उपशामक सूक्ष्मसांपरायिक जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

७८. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय और नाम कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आयुकर्मका भंग नारकियोंके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध सातवीं पृथिवीका नारकी जीव गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

७९. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला चार गतिका जीव उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भंग है।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालपरूवणा

८०. कालं दुविहं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ उक्क०अणुभागबंधो केवचिरं कालादो होदि? जह०एग०,उक्क० बेसमयं। अणु० जह० एग०,उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गल०। वेद०-णामा-गोदा० जहण्णुक०-एग०। अणु०अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो [सादिओ सपज्जवसिदो] वा। यो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णि०—जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० देसू०। आउ० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं आउग० याव अणाहारग त्ति। एवं ओघभंगो मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०। णवरि भवसि० अणादिओ अपज्जवसिदो णत्थि।

कालप्ररूपणा

८०. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका कितना काल है? जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परावर्तनके बराबर है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल तीन प्रकारका है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सांत। जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त्त है। इसी प्रकार आयु कर्मका अनाहारक मार्गणा तक काल जानना चाहिए। इसी प्रकार ओघके समान मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंमें अनादि-अनन्त विकल्प नहीं है।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे होता है। इनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। जो जीव इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके एक समयके लिए अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है और पुनः उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने लगता है, उसके इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका एक समय काल उपलब्ध होता है। तथा जो अनन्त काल तक एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक पर्यायोंमें परिभ्रमण करता रहता है, उसके इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अनन्त काल उपलब्ध होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है। वेदनीय, नाम और गोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपने-अपने बन्धकालके अन्तिम समयमें होता है। तथा इसके पहले नियमसे अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। उसमें भी जो अभव्य होते हैं उनके इस उत्कृष्टकी अपेक्षा सदा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता रहता है और भव्योंके उपशान्तमोह होनेके पूर्व तक अनादि कालसे अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। किन्तु उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेके बाद वह सादि हो जाता है। जो जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तकाल तक और उत्कृष्ट रूपसे कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक होता रहता है। यही कारण है कि इन तीनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. णिरएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । एवं सत्तसु पुढवीसु अप्पप्पणो ट्ठिदिं णेदव्वं ।

८२. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० णिरयोघभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं । एवं अब्भवसि० असण्णि त्ति । पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० उक्क० तिरिक्खोघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । पंचिंदियतिरिक्खअप० अट्ठण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं० सव्वअपज्जत्ताणं सव्वसुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं च ।

८३. मणुस०३ वेद०-णामा-गोदा० उक्क० ओघं । सेसं पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

८४. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० णिरयभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं

जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प बतला कर सादि-सान्तकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है । आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है और इसका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय कहा है । आयुकर्मका निरन्तर बन्ध अन्तर्मुहूर्तकाल तक ही होता है । यही कारण है कि इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । यहाँ मत्यज्ञानी आदि कुछ अन्य मार्गणाएँ परिगणित की गई हैं, जिनमें ओघप्ररूपणाके अनुसार काल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें सब कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान कहा है । यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि ओघप्ररूपणामें यहाँ स्वामित्वका निर्देश करके जिस प्रकार काल घटित करके बतलाया है, उसी प्रकार इन सब मार्गणाओंमें अलग-अलग स्वामित्वका विचार कर उक्त काल घटित कर लेना चाहिए । मात्र भव्यमार्गणामें ओघरूपणाके स्वामित्वसे कोई अन्तर नहीं है । केवल इस मार्गणामें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका अनादि-अनन्त विकल्प नहीं बनता ।

८१. नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें अपनी-अपनी स्थितिको जानकर काल ले आना चाहिए ।

८२. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट भंग सामान्य नारकियोंके समान है । किन्तु अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है । इसी प्रकार अभव्य और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए ।

८३. मनुष्यत्रिकमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । शेष भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है ।

८४. देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल नारकियोंके समान है । अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा० । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी णेदव्वा ।

८५. एइंदिएसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा । एवं सव्वसुहुमाणं ओघं । पुढवी०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोदाणं च ओघं । बादरएइंदि० सत्तण्णं क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखें० ओसप्पिणि० उस्सप्पिणि० । बादरएइंदियपज्जत्ता० सत्तण्णं क० अणु० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जाणि वस्ससहस्साणि । एवं बादर०पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय-णियोद० एदे सव्वे पज्जत्ता । बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि०-बादरवणप्फदिपत्ते०-बादर०णिगोद ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० कम्मट्ठिदी० । णवरि बादरवणप्फदि० अंगुल० असंखे० ।

अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब देवोंके अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए।

८५. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोक प्रमाण है। इसी प्रकार सब सूक्ष्म जीवोंके काल एकेन्द्रिय ओघके समान है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें काल ओघके समान है। बादर एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है जो असंख्यता संख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीके बराबर है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और निगोद इनके पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और बादर निगोद जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल कर्मस्थिति प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

विशेषार्थ—यद्यपि एकेन्द्रियोंका सामान्य उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है, पर यह काल सब अवान्तर भेदोंमें परिभ्रमण करनेकी अपेक्षासे कहा है। सात कर्मोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रियके होता है। बादरएकेन्द्रिय हो जाने पर पर्याप्त दशामें उसके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होना सम्भव है। इसीसे यहाँपर एकेन्द्रियके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियकी उत्कृष्ट कायस्थिति उक्त प्रमाण है। एकेन्द्रिय सूक्ष्म और पाँचों स्थावरकायिक सूक्ष्म जीवोंकी यही कायस्थिति होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल भी यही कहा है। पाँचों स्थावरकायिक और निगोद जीवोंमें भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। अभिप्राय यह है कि पृथिवी आदि चारकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण तो है ही, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंकी कायस्थिति भिन्न है, पर इनमें भी सूक्ष्म जीवोंकी अपेक्षा सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल ओघ एकेन्द्रियोंके समान ही प्राप्त होता है, इसलिए इनमें भी एकेन्द्रिय ओघवत् काल कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. बेइंदि०-तेइंदि-चदुरिंदि० तेसिं च पज्जत्ता० उक्क० णिरयभंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जाणि वाससहस्साणि।

८७. पंचिंदि०-तस०२ घादि०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियं, बेसागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुध०ब्भहियं। पज्जत्ते सागरोवमसदपुध० बेसाग० सह०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० ओघं। अणु० जह० अंतो०। उक्क० णाणावरणभंगो।

८८. पंचमण०-पंचवचि० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगि० घादि०४ ओघं। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० अणंतका० असंखें०। ओरालिय० घादि०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि देसू०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० ओघं।

बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उक्त प्रमाण काल कहा है। इसी प्रकार आगे भी जिनकी जो कायस्थिति कही है, उसका विचार कर सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट काल जान लेना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका अलगसे निर्देश नहीं किया। शेष कथन सुगम है।

८६. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल नारकियोंके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है।

८७. पंचेन्द्रिय द्विक और त्रसद्विक जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल क्रमसे पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर और पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है। किन्तु पर्याप्तकोंमें सौ सागर पृथक्त्व और दो हजार सागर है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल ज्ञानावरणके समान है।

विशेषार्थ---पञ्चेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी सौ सागर पृथक्त्व, त्रसकायिककी पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और त्रसकायिक पर्याप्तकोंकी दो हजार सागर है। इसीसे यहाँ इनमें चार घातिकर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल ओघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

८८. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। काययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। तथा इन सबके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। औदारिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० णाणा०भंगो। ओरालियमि० सत्तण्णं क० जहण्णु० एग०, अणु० जह० उक्क० अंतो०। एवं वेउव्वियमि०-आहारमि०। णवरि आहारमि० आउ० जह० एग०, उक्क० एग०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

८९. वेउव्वि०-आहारका० अट्ठण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो। कम्मइग० सत्तण्णं क० जहण्णुक्क० एग०। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णिसम०।

९०. इत्थि० घादि०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं। वेद०-णामा-गोदा० जहण्णु० एग०। अणु० णाणावरणभंगो। एवं पुरिस०।

अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पर्याप्त होनेके एक समय पूर्व उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यही नियम वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए, इसलिए इनमें भी सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान कहा है। मात्र आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुकर्मके कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इनमें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध शरीर पर्याप्ति प्राप्त होनेके एक समय पहले सम्भव है। तथा इसी प्रकार शरीर पर्याप्तिके प्राप्त होनेके एक समय पहलेसे आयुबन्ध भी सम्भव है, इसलिए इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

८९. वैक्रियिककाययोगी और आहारकाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल तीन समय है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। उसमें भी सात कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अन्तिम समयमें होता है, क्योंकि चार घातिकर्मोंके योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम और वेदनीय, नाम व गोत्रके योग्य उत्कृष्ट सर्वविशुद्ध परिणाम वहीं सम्भव हैं। अतः इनके सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

९०. स्त्रीवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि वेद०-णामा-गोदा० अणु० जह० अंतो०, सव्वेसिं उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। णवुंसगे कायजोगिभंगो। अवगद० सत्तण्णं क० उक्क० एग०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं।

६१. कोधादि०४ घादि०४ मणजोगिभंगो। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० एग०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

६२. विभंगे घादि०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं साग० देसू०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० एग०। अणु० णाणावरणभंगो।

त्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त है तथा सबके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। नपुंसकवेदी जीवोंमें काययोगी जीवोंके समान भंग है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके छह कर्मोंका काल जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पुरुषवेदी जीव उपशमश्रेणी पर चढ़कर उतरते समय यदि मरकर देव होते हैं, तो भी पुरुषवेदी ही होते हैं। और नहीं मरते हैं, तो भी पुरुषवेदी ही होते हैं। यहाँ स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके समान एक समय काल उपलब्ध नहीं होता। अतः इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तमुहूर्त कहा है। उपशमश्रेणी पर चढ़ाकर और उतारनेके बाद पुनः अन्तमुहूर्त कालके भीतर उपशमश्रेणी पर आरोहण करानेसे यह काल उपलब्ध होता है। अपगतवेदी जीवोंमें उतरते समय अपगतवेदके अन्तिम समयमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है। तथा वेदनीय आदि तीन कर्मोंका क्षपकश्रेणीमें अपने बन्धके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है और अपगतवेदका जघन्यकाल एक समय व नौवें-दसवें गुणस्थानके कालकी अपेक्षा उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है, इसलिए अपगतवेदमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय व अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

६१. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग मनोयोगी जीवोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है।

विशेषार्थ—क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। अन्यत्र इनका निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता रहता है। किन्तु चारों कषायोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

६२. विभंगज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है, अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० एग० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि० साग० सादि० । एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-वेदग० । णवरि वेदगे० छावट्ठि० ।

९४. मणपज्जव० सत्तण्णं क० उक्क० एग० । अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी दे० । एवं संजद-सामाइ०-छेदोव० । परिहार० सत्तण्णं क० उक्क० एग० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी दे० । अथवा वेद०-णामा-गोदाणं च उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० तं चेव । एवं [संजदासंजदाणं । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।]

विशेषार्थ—जो मिथ्यादृष्टि मनुष्य संयमके अभिमुख और सर्वविशुद्ध होता है, उसके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है । अन्यत्र इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इन तीनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है । तथा विभङ्गज्ञानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है, इससे सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

९३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल साधिक छियासठ सागर है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल पूरा छियासठ सागर है ।

विशेषार्थ—जो असंयतसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वके अभिमुख होता है और अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, उसके इन तीन सम्यग्ज्ञानोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है । तथा वेदनीय आदि तीन कर्मोंका क्षपकश्रेणिमें बन्धके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए यहाँ उक्त सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है । तथा इन तीनों ज्ञानोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल साधिक छियासठ सागर है, इसलिए इनमें उक्त सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक छियासठ सागर कहा है । यह प्ररूपणा सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गणाओंमें भी पूर्वोक्त प्रकारसे ही काल कहा है । किन्तु इतना विशेष समझना चाहिए कि वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्टकाल पूरा छियासठ सागर ही है, इसलिए इसमें उक्त सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल छियासठ सागर ही होता है ।

९४. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । अथवा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल वही है । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए । चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५. पंचण्णं लेस्साणं सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं साग० सत्तारस०-सत्त०-बेसा०-अट्ठारस० सादि० । णवरि तेउ०-पम्माए० वेद०-णामा-गोदा० यदि दंसणमोहक्खवगस्स सामित्तादो उक्क० एग० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी० ।

९६. सुकाए घादि०४ उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं सा० सादि० । वेद०-णामा-गोदा० उक्क० एग० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं साग० सादि० ।

बन्धका काल दो प्रकारसे बतलाया है। प्रथम तो चार घातिकर्मोंके समान ही इनका काल है। फिर प्रकारान्तरसे इनका काल दूसरा कहा है। इस भेदका कारण क्या है,यह विचारणीय है। विदित होता है कि सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मानने पर इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय उपलब्ध होता है और दर्शनमोहनीयकी क्षपणावाले सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके होने पर जब इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध माना जाता है,तब इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय उपलब्ध होता है। इसी प्रकार प्रथम विकल्पकी अपेक्षा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और दूसरे विकल्पकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

९५. पाँच लेश्यावाले जीवोंमें सातकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। इतनी विशेषता है कि पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके विषयमें यदि दर्शनमोहनीयका क्षपक जीव है, तो स्वामित्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल कायस्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—पीत और पद्म लेश्यावाले दर्शनमोहनीयके क्षपक जीवके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय उपलब्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

९६. शुक्ल लेश्यवाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीससागर है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें शुक्ललेश्यावाले जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें वेदनीय, नाम और गोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है,यह स्पष्ट ही है। कारण कि शुक्ललेश्याका यही काल है। इतने काल तक इसके निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता रहता है। शेष कथन सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. खइग० सुक्कले०भंगो। उवसम० सत्तण्णं क० उक्क० एग०। अणु० जह० उक्क० अंतो०। एवं सम्मामि०। सासणे सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० वेसम०। अणु० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ। णवरि घादि०४ उक्क० एग०।

९८. सण्णीसु पुरिसभंगो। आहारा० ओघभंगो। णवरि अणु० बादरएइंदियभंगो। अणाहारा० कम्मइगभंगो।

एवं उक्कस्सं समत्तं

९९. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ गोदं च जह० अणु० जह० उक्क० एग०। अज० तिभंगो। वेद-णामा० जह० जह० एग०, उक्क०

९७. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें शुक्ललेश्यावाले जीवोंके समान भङ्ग है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल छह आवली है। इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल एक समय है।

विशेषार्थ—उपशम सम्यक्त्वमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशवाले, मिथ्यात्वके अभिमुख जीवके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय होता है। तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय होता है, इसलिए इसमें उक्त सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह प्ररूपणा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके इसी प्रकार घटित हो जाती है, इसलिए इसमें उक्त सातों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान कहा है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध जीवके होता है। तथा सासादन सम्यक्त्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवलि है, इसलिए इसमें चार घातिकर्मोंसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवलि कहा है। तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवलि कहा है।

९८. संज्ञी जीवोंमें पुरुषवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल बादर एकेन्द्रियोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—आहारक जीवोंका उत्कृष्टकाल अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। बादर एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति भी इतनी ही है, इसलिए आहारक जीवोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल बादर एकेन्द्रियोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

९९. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। आउ० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं आउ० याव अणाहारग त्ति। एवं ओघभंगो मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०। णवरि भवसि० अणादियो अपज्जवसिदो णत्थि।

है। अजघन्य अनुभागबन्धके तीन भङ्ग हैं। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोक प्रमाण है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आयुकर्मका विचार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। इसी प्रकार ओघके समान मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्योंमें अनादि–अनन्त भङ्ग नहीं है।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है तथा गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख जीवके बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इन पाँच कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धके तीन भङ्ग है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। सादि-सान्त अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। खुलासा इस प्रकार है—किसी एक जीवने उपशमश्रेणि पर आरोहण किया और उतर कर पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर वह क्षपकश्रेणि पर आरोहण करके उक्त कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध करता है। तब उसके उक्त चार कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। और यदि कोई अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशमश्रेणि पर आरोहण कर उपशान्तमोह हो गिरता है तथा अन्तमें क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर मुक्ति लाभ करता है, तब उसके उक्त कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण उपलब्ध होता है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके होता है, इसलिये इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव एक समय तक अजघन्य अनुभागबन्ध करके जघन्य अनुभागबन्ध करने लगता है, उसके इनके अजघन्य अनुभाग बन्धका एक समय काल ही उपलब्ध होता है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। कारण यह है कि इन दोनों कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रियों में नहीं होता, उनके निरन्तर अजघन्य अनुभागबन्ध होता रहता है और उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण कही है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धके जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समयका तथा अजघन्य अनुभागबन्धके जघन्य काल एक समयका खुलासा नाम और गोत्रकर्मके समान है। आयुकर्मका निरन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध होता है, इसलिये इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीके नारकीके सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित होने पर होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००. णिरएसु घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। गोद० जह० अणु० जहण्णुक्क० एग०। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग०। एवं सत्तमाए पुढवीए। पढमाए याव छट्ठि त्ति तं चेव। णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक्क० भवट्ठिदी भाणिदव्वा।

१०१. तिरिक्खेसु घादि०४ गोद० जह० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। वेद०-णामा० ओघं। एवं अब्भवसि०-असण्णीसु।

इसके अजघन्य अनुभागबन्धका काल जिस प्रकार चार घातिकर्मोंका घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहाँ ओघके समान मत्यज्ञानी आदि छह अन्य मार्गणाओंका निर्देश किया है सो इनमें भव्यमार्गणाके सिवा शेष मार्गणाओंमें स्वामित्वकी अपेक्षा कुछ भेद रहने पर भी कालप्ररूपणा ओघके समान अविकल बन जाती है, इसलिए इनमें कालका निर्देश ओघके समान किया है।

१००. नारकियोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये। पहली पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है। और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी भवस्थिति प्रमाण कहना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और प्रत्येक पृथिवीमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि सर्वविशुद्धके होता है। इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे यहाँ चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। सामान्य नारकियोंमें और सातवीं पृथिवींमें गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि यहाँ गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध होनेके बाद ऐसा जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक नियमसे नरकमें रहता है। प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव करता है, इसलिए यहाँ इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०१. तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है। वेदनीय और नामकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अभव्य और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। पचेन्द्रियतिर्यञ्च त्रिकमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदियतिरिक्ख०३ घादि०४ उकस्सभंगो। वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक० कायट्ठिदी०। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० घादि०४ जह० जह० एग०, उक० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक० चत्तारि समयं। अज० जह० एग०, उक० अंतो०। एवं सव्वअपजत्तगाणं तसाणं थावराणं च सुहुम-पज्जत्तगाणं च।

१०२. मणुस०३ घादि०४ जह० ओघं। अज० अणुकस्सभंगो। वेद०-णामा-गोदा० पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

१०३. देवाणं घादि०४ जह० णिरयभंगो। अज० जह० एग०, उक० तेत्तीसं सा०। वेद०-णामा-गो० तं चेव। णवरि जह० जह० एग०, उक० चत्तारि समयं। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा। णवरि अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति गोदस्स जह० अणु० जह० एग०, उक० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक० अप्पप्पणो भवट्ठिदी०।

समान है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है। जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण है। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त त्रस और स्थावर तथा सूक्ष्म और उनके पर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें और इनके अवान्तर भेदोंमें कालका विचार स्वामित्व और कायस्थितिको ध्यानमें रखकर कर लेना चाहिये। विशेषता इतनी है कि यहाँ चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मूलोघके समान सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण बन जाता है। इसी प्रकार यहाँ वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका विचार कर काल ले आना चाहिए।

१०२. मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

१०३. देवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल नारकियोंके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। इसी प्रकार सब देवोंके जानना चाहिए। किन्तु अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी भवस्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—नारकियोंसे देवोंमें दो विशेषताएँ हैं। प्रथम तो यह कि देवोंमें और उनके अवान्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०४. एइंदि०-बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० अणुक्कस्सभंगो। वेद०-णामा-गो० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। अज० अणुक्कस्सभंगो। णवरि एइंदि० गोद० जह० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०।

१०५. पंचिंदि०-तस०२ सत्तण्णं क० जह० ओघं। अजहण्ण० ओघभंगो। णवरि कायट्ठिदी भाणिदव्वं। पुढवि०-आउ०-बादरवणप्फदिपत्ते०-णियोद० सत्तण्णं क० जह० पंचिंदि०तिरि०अपज्जत्तभंगो। अज० सव्वाणं अप्पप्पणो अणुक्कस्सभंगो। तेउ०-वाउ० एवं चेव। णवरि गोद० घादीणं भंगो कादव्वो।

भेदोंमें गोत्रकर्मका स्वामित्व सामान्य नारकियोंके समान न होकर दूसरी पृथिवीके समान है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल वेदनीय और नामकर्मके साथ कहा गया है। दूसरे अनुदिशसे लेकर आगे गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व सम्यग्दृष्टि संक्लिष्ट परिणामवाले जीवको प्राप्त होता है और इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए अनुदिश आदिमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०४. एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनुत्कृष्टके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका अनुत्कृष्टके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव पर्याप्त अवस्थामें पूर्ण विशुद्ध होकर करते हैं। इससे इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। ऐसे ये एकेन्द्रियादिक जीव चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्धि होकर करते हैं इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०५. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल भी ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि कायस्थिति कहनी चाहिये। पृथिवीकायिक, जलकायिक, बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर और निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल सबका अपने-अपने अनुत्कृष्टके समान है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भङ्ग घातिकर्मोंके समान करना चाहिये।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विककी कायस्थितिका निर्देश उत्कृष्ट कालका निर्देश करते समय कर आये हैं। उसे जानकर यहाँ सात कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कहना चाहिए। एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीव सर्वविशुद्ध होकर करते हैं, इसलिए अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें गोत्रकर्मका काल घातिकर्मोंके साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०६. पंचमण०-पंचवचि० घादि० ४-गोद० जह०, उक्क० एग० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । वेद०-णामा० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । कायजोगि० सत्तण्णं क० जह० अज० ओघभंगो । णवरि घादि०४-गोद० अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं० । एवं णवुंस० ।

१०७. ओरालिका० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अज० जह० एग०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि देसू० । एवं वेद०-णामा-गोदा० । णवरि जह० तिरिक्खोघभंगो । ओरालियमि० घादि०४-गोद० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । वेद०-णामा० अपज्जत्तभंगो । एवं वेउव्वियमि०-आहारमि० । वेउव्वियका० घादि०४ जह० अज० उक्कस्सभंगो । गोद० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० ।

कहा है । किन्तु पृथिवीकायिक आदिमें परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीव करते हैं, इसलिए इनके गोत्रकर्मके अनुभागबन्धका काल वेदनीय और नाम कर्मके साथ कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१०६. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—काययोगी जीवोंमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यता है और उनकी कायस्थितिका काल अनन्तकाल है, इसलिए इनमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है । परन्तु इनमें वेदनीय और नामकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध असंख्यात लोकप्रमाण काल तक काययोगके सद्भावमें निरन्तर होता रहता है; क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी यही कायस्थिति है और काययोगमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके इन कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इन दोनों कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ओघके समान असंख्यात लोकप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१०७. औदारिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । इसी प्रकार वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके विषयमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके जघन्य अनुभागबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । वेदनीय और नामकर्मका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये । वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल उत्कृष्टके समान है । गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल एक समय है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० अणुक्कस्सभंगो। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० णाणावरणभंगो। एवं आहार-कायजोगि०। णवरि गोद० जह० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। कम्मइ० पंचण्णं क० जह० एग०। अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि समयं। वेद०-णामा० जह० अज० एग०, उक्क० तिण्णिसम०। एवं अणाहार०।

१०८. इत्थिवे० घादि०४ जह० एग० उक्क० एग०। अज० जह० एग०, उक्क० पलिदोपमसदपुधत्तं। वेद०-णामा-गोदा० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० णाणावरणभंगो। एवं पुरिस०। णवरि घादि०४ अज० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। अवगदवे० सत्तण्णं क० जह० एग०, अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१०९. कोधादि०४ घादि०४ गोद० जह० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० अपज्जत्तभंगो।

अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार आहारक-काययोगी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

विशेषार्थ—इन पूर्वोक्त योगोंका काल और इनमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व जान कर उक्त काल ले आना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ हमने अलग-अलग खुलासा नहीं किया।

१०८. स्त्रीवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभाग बन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्ध जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी जीवका जघन्यकाल एक समय है और पुरुषवेदी अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल क्रमसे एक समय ४१ और अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०९. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय और नाम कर्मका भंग अपर्याप्तकोंके समान है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

११०. विभंगे घादि०४-गोद० जह० एग०, उक्क० एग० । अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू० । वेद०-णामा० जह० ओघं । अज० णाणावरणभंगो ।

१११. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४—गोद० जह० एग०, उक्क० एग० । अज० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादि० । वेद०-णामा० जह० ओघं । अज० जह० एग०, उक्क० णाणावरणभंगो । मणपज्जव० घादि०४—गोद० जह० एग०, उक्क० एग० । अज० जह० एग, उक्क० पुव्वकोडी दे० । वेद०-णामा० जह० ओघं । अज० णाणावरणभंगो । एवं संजद-सामाइय-च्छेदो० ।

११२. परिहार० घादि०४-गोद० जह० एग० । अज० जह० अंतो, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । वेद०-णामा० मणपज्जवभंगो । एवं संजदासंजदस्स । सुहुमसंपराइ० छण्णं क० अवगद०भंगो ।

---

११०. विभंगज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है ।

१११. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल साधिक छियासठ सागर है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल ज्ञानावरणके समान है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल एक समय है । इसी प्रकार अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है । इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी आदि तीन ज्ञानवाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है । उपशमश्रेणिपर आरोहणकर और उतरकर क्षपकश्रेणिपर आरोहण करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है । तथा गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशवाले मिथ्यात्वके अभिमुख जीवके होता है । इन जीवोंके गोत्रकर्मका एक बार जघन्य अनुभागबन्ध होनेपर पुनः उसके जघन्य अनुभागबन्धके योग्य यह अवस्था अन्तर्मुहूर्तकालके पहले नहीं हो सकती। अतः इनमें इन पाँचकर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध पर्याप्त निवृत्तिसे निवर्त्तमान मध्यम परिणामवाले किसी भी जीवके हो सकता है । ऐसे जीवके एक बार जघन्य अनुभागबन्ध होकर और बीचमें अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर देकर पुनः जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनमें वेदनीय और नामकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय कहा है । शेष कथन सुगम है ।

११२. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है । वेदनीय और नामकर्मका भंग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए । सूक्ष्मसांपरायित जीवोंमें छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११३. किण्णाए घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अज० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं साग० सादि० । वेद०-णामा-गोदा० जह० ओघं । अज० णाणा-वरणभंगो । णवरि गोद० अज० जह० अंतो० । णील-काऊणं सत्तण्णं कम्माणं जह० पढमपुढविभंगो । अज० अणुक्कस्स० ।

११४. तेउ-पम्मासु घादि०४ जह० एग० । अज० जह० अंतो०, उक्क० बे-अट्ठारस साग० सादि० । वेद०-णामा०-गोदा० जह० सोधम्मभंगो । अज० जह० एग०, उक्क० णाणावरणभंगो । सुक्काए घादि०४ जह० एग० । अज० अणुक्कस्सभंगो । वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं । अज० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं साग० सादि० ।

११५. खइगे घादि०४—गोद० जह० एग० । णवरि गोद० जह० एग०, उक्क०

कर्मोंका भङ्ग अपगतवेदी जीवोंके समान है ।

११३. कृष्ण लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है । इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल पहली पृथिवीके समान है । अजघन्य अनुभाग-बन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—कृष्णलेश्यामें चार घातिकर्मोंका बन्ध सम्यग्दृष्टि सर्वविशुद्ध जीवके होता है, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय कहा है । इस लेश्यामें गोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीके नारकीके सम्यक्त्वके अभिमुख होनेपर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय होता है । यह जीव उसके बाद नरकमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक अवश्य रहता है, इसलिए इसके गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । शेष कथन सुगम है ।

११४ पीत और पद्म लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनु-भागबन्धका भंग सौधर्मकल्पके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल ज्ञानावरणके समान है । शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है । वेद-नीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—इन लेश्याओंमें अपने-अपने स्वामित्वका विचारकर काल ले आना चाहिए । कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका स्पष्टीकरण नहीं किया ।

११५. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेसमयं। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं साग० सादि०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०।

११६. वेदग० घादि०४-गोद० जह० खइग०भंगो। णवरि गोद० जह० जहण्णु० एगस०। अज० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि सा०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० छावट्ठि०।

११७. उवसम० घादि०४-गोद० जह० एग०। अज० जह० उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सम्मामि०। सासणे घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अज० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० णाणा०भंगो। आहार० सत्तण्णं कम्माणं जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखेंज्ज०।

एवं कालं समत्तं।

जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट-काल दो समय कहा है सो इसका कारण यह है कि इसका जघन्य अनुभाग चारों गतिके सम्यग्दृष्टि जीवके उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से बँधता है। तथा इसे इन परिणामोंको पुनः प्राप्त करनेमें अन्त-र्मुहूर्त काल लगता है अथवा एक बार उपशमश्रेणीसे उतरकर पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़नेका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

११६. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मके जघन्द अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके जघन्य अनुभागबन्धके समय होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

११७. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। आहारक जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरपरूवणा

११८. अंतरं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०–ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ उक्क० अणुभाग० अंतरं केवचिरं०? जह० एग०, उक्क० अणंत० असंखेँज्जा०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा०-गोदा० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क अंतो०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० अद्ध-पोँग्गल०। अणु० जह० एग०, उक्क० तेँत्तीसं० सादि०। एवं ओघभंगो अचक्खुदं०-भवसि०।

अन्तरप्ररूपणा

११८. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका कितना अन्तर है? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इस प्रकार ओघके समान अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध जिन परिणामोंके प्राप्त होनेपर होता है, वे एक समयके बाद पुनः प्राप्त हो सकते हैं और असंज्ञी तकके जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त-काल प्रमाण है। इतने कालके भीतर इन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता, अतएव इन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। एक समय तक अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होकर पुनः उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है। तथा उपशम-श्रेणिसे उतर कर पुनः उपशमश्रेणि पर चढ़कर उपशान्तमोह होने तकका काल अन्तर्मुहूर्त है, और बीचमें अन्तर देकर इतने काल तक इन कर्मोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है, इसलिए इनके अन्तर-कालका निषेध किया है। जो जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर एक समय या अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका अबन्धक होकर पुनः इन कर्मोंका बन्ध करता है, उस जीवकी अपेक्षा इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मका एक समयका अन्तर देकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है। तथा अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें और कुछ कालसे न्यून अन्तमें अप्रमत्तसंयत होकर आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमाण कहा है। जो जीव अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके बाद एक समय तक उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके पुनः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने लगता है, उसके आयु-कर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय उपलब्ध होता है और जो पूर्वकोटिके प्रथम त्रिभागके आयुबन्धके अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके पुनः उत्कृष्ट आयुके साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११९. णिरएसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० । आउ० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देसू० । एवं सव्वणिरएसु अप्पप्पणो ट्ठिदी देसूणं कादव्वं ।

१२०. तिरिक्खेसु घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० अणंतका० । अणुक्कस्स० जह० एगसमयं, उक्कस्सयं संखेंज्जसमयं । वेद०-णामा-गोदा० उक्क० जह० एग०, उक्क० अद्धपोंग्गल० । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० ।

देव या नारकी होकर यह छह महीना काल शेष रहने पर पुनः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है,उसके आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है । यही कारण है कि आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है ।

११९. नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महिना है । इसी प्रकार सब नरकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्यसे नरकमें यह अन्तरकाल कहा है । इसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट कालका विचार करके ले आना चाहिए । नरकमें उत्पन्न होनेके बाद पर्याप्त होने पर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है और उसके बाद अन्तमें वह सम्भव है, इसलिए यहाँ सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । प्रथमादि नरकोंमें जिस नरककी जो उत्कृष्ट स्थिति है, उसका विचार कर उस-उस नरकमें सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

१२०. तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात समय है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल प्रमाण है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके होता है और इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए इनमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है । तथा तिर्यञ्चोंमें इन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उत्कृष्ट रूपसे संख्यात समय अर्थात् दो समय तक होता रहता है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात समय कहा है । इनमें वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयतासंयत जीवके होता है और तिर्यञ्च रहते हुए इनमें संयतासंयत गुणस्थानका कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अन्तरकाल सम्भव है, इसलिए इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है । जो तिर्यञ्च पूर्वकोटिके त्रिभागमें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके पुनः अन्तिम त्रिभागमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, उसके आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है । अतएव तिर्यञ्चोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२१. पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आयु० तिरिक्खोघं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आयु० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्ततसाणं थावराणं च सव्वसुहुमपज्जत्ताणं च।

१२२. मणुस०३ घादि०४–आउ० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि घादि०४ अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० उक्क अंतो०।

प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है। ऐसा जीव मर कर पुनः तिर्यञ्च नहीं होता, इसलिए एक पर्यायमें ही बँधनेवाली आयुकी अपेक्षा यह अन्तरकाल उपलब्ध किया गया है। तिर्यञ्च आयुकर्मका पूर्वकोटि आयुके प्रथम त्रिभागमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके और तीन पल्यकी आयुवाला तिर्यञ्च होकर वहाँ छह महीना काल शेष रहने पर पुनः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर सकता है, इसलिए इनमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तीन पल्य कहा है।

१२१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त त्रस और स्थावर तथा सब सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यञ्चोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी मुख्यतासे ही आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध किया गया है इसलिए यहाँ आयुकर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। तिर्यञ्चोंमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर काल किसी भी तिर्यञ्चके उपलब्ध हो सकता है यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए। यहाँ सब स्थावर अपर्याप्त जीवोंमें सब सूक्ष्म अपर्याप्त और सब बादर अपर्याप्त जीवोंका भी अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि इनकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त कालसे अधिक नहीं है। त्रसअपर्याप्त जीवोंका निर्देश अलगसे किया ही है। इन सब अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त काल होनेसे इनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान अन्तरकाल बन जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन सुगम है।

१२२. मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्म और आयुकर्मका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है और इस अपेक्षा इनमें चार घातिकर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। इसलिए इनमें उक्त कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२३. देवेसु घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० अट्ठारस साग० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसूणा०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ० उक्क० अणु० एग०, उक्क० छम्मासं देसू०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदीओ णेदव्वाओ।

१२४. एइंदि० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। बादरे अंगुल० असंखें०। बादरपज्जत्ते संखेंज्जाणि वाससहस्साणि। सव्वसुहुमाणं उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। एवं वणप्फदि-णियोदाणं। सव्वेसिं० अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० सत्तवस्ससहस्साणि सादि०

अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें उपशान्तमोह हो जानेपर इनका बन्ध नहीं होता अन्यत्र सर्वदा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता रहता है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यद्यपि उपशान्तमोहका मरणकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है पर ऐसा जीव मरकर नियमसे देव ही होता है और यहाँ मनुष्यत्रिकका प्रकरण है। इसलिए यहाँ इस कालका ग्रहण नहीं किया जा सकता है। शेष कथन सुगम है।

१२३. देवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महिना है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपनी-अपनी स्थितिको जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है। किन्तु यह बात वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके विषयमें नहीं है। उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वार्थसिद्धिके देवके भी होता है। यही कारण है कि सामान्य देवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। अन्य देवोंमें जिसकी जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसे ध्यानमें रखकर वहाँ सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल ले आना चाहिए। उन उन देवोंमें यह अन्तर काल लाते समय यह सामान्य देवोंकी अपेक्षा प्राप्त किया गया सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल विवक्षित नहीं रहता इतना स्पष्ट है। शेष कथन सुगम है।

१२४. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। बादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। सब सूक्ष्मोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। इसी प्रकार सब वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। इन सब जीवोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रारम्भके तीनमें साधिक सात हजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो० वणप्फदि० तिण्णि वाससहस्साणि सादि०। अणु० जह० एग०, उक० बावीसं-वास० सादि० [अंतो०] दस वाससहस्सा० सादि० अंतो०।

१२५. पुढवि०-आउ०-तेउ० वाउ०-वणप्फदिपत्ते० सत्तण्णं क० उक० जह० एग०, उक० असंखेज्जा लोगा। बादर० कम्मट्ठिदी। पज्जत्ताणं संखेज्जाणि वाससहस्साणि। सव्वाणं अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० सत्त वाससहस्साणि सादि० बे वाससह० सादि० तिण्णि वाससह० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० अप्पप्पणो पगदिअंतरं। तेउ०-वाउ० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अणु० अप्पप्पणो पगदिअंतरं।

वर्ष और सूक्ष्म तथा निगोद जीवोंमें अन्तर्मुहूर्त है। तथा वनस्पतिकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष, अन्तर्मुहूर्त, साधिक दस हजार वर्ष और अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और बाद एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें बादर पृथिवी-कायिक पर्याप्त जीवोंकी मुख्यतासे आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल प्राप्त किया गया है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और निगोद पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त तथा वनस्पतिकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति दस हजार वर्ष है। इसलिए इनमें इस कालको ध्यानमें रखकर आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त किया गया है। शेष अन्तरकाल लाते समय स्वामित्व और अपनी-अपनी कायस्थितिको ध्यानमें रखकर वह ले आना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका अलगसे निर्देश नहीं किया। मात्र जहाँ कायस्थिति अधिक है और अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है वहाँ जो विशेषता है उसका निर्देश हम काल प्ररूपणाके समय कर आये हैं इसलिए उसे जानकर यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

१२५. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके बादरोंमें उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थिति प्रमाण है। तथा इनके पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। इन सबके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष, साधिक दो हजार वर्ष और साधिक तीन हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपने अपने प्रकृति-बन्धके अन्तरके समान है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर अपने अपने प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंकी अपेक्षा अग्नि-कायिक और वायुकायिक जीवोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता कही है। उसका कारण यह है कि पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक आयु-कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते समय मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं इसलिए उनकी पृथिवीकायिक आदि पर्याय बदल जाती है, अतः इनमें एक पर्यायकी मुख्यतासे ही आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध किया गया है। किन्तु अग्निकायिक और वायु-कायिक जीवोंकी यह बात नहीं है। वे नियमसे तिर्यञ्चायुका ही बन्ध करते हैं। इसलिए इनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२६. बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०५ज्ज० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वाससह०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ०[1] उक्क० जह० एग०, उक्क० चत्तारि [2]वासाणि देसू० सोलसरादिंदियाणि सादि० [दोमासाणि देसू०]। अणु० जह० एग०, उक्क० पगदिअंतरं।

१२७. पंचिंदि०-तस०२ घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अणु० ओघं। आउ० [उक्क० अणु०] जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अणु० ओघं। वेद०-णामा-गोदा० उक्क अणु० ओघं।

१२८. पंचमण०-पंचवचि० घादि०४-आउ०[1] उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद० णामा०-गोदा० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। काय-जोगि० घादि०४ उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क०

आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त करनेमें ऐसी कोई बाधा नहीं आती, अतः कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। यही कारण है कि यहाँ यह कायस्थिति प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१२६. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम चार वर्ष, साधिक सोलह दिन-रात और कुछ कम दो महीना है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रियोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति बारह वर्ष, त्रीन्द्रियोंकी उनचास दिन रात और चतुरिन्द्रियोंकी छह महीना है। इन जीवोंमें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होने पर इनकी द्वीन्द्रियादि पर्याय छूट जाती है, इसलिए इनमें प्रथम त्रिभागके प्रारम्भमें और भवस्थितिके अन्तमें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराकर उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए।

१२७. पञ्चेन्द्रिय द्विक और त्रसद्विक जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विककी कायस्थितिका पहले निर्देश कर आये हैं। उसके प्रारम्भमें और अन्तमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करानेसे आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल आ जाता है। शेष कथन सुगम है।

१२८. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। काययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके

---

१ मूलप्रतौ आउ० उक्क० जह० अंतो० इति पाठः। २ मूलप्रतौ वाससहस्साणि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आउ० [उक्क०] जह० एग०, उक्क० अंतो०। [अणु०] जह० एग०, उक्क० पगदिअंतरं। ओरालियका० मणजोगिभंगो। णवरि आउ० अणु० जह० एग०, उक्क० सत्तवाससहस्साणि सादि०।

१२६. ओरालियमि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। आउ० अपज्जत्तभंगो। एवं वेउव्वियमि०-आहारमि०। णवरि आहारमि० आउ० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। वेउव्विय० अट्ठण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। एवं आहारका०। कम्मइ० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। एवं अणाहार०।

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। औदारिक काययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके योग्य परिणाम एक समय और अन्तर्मुहूर्तके बाद होते हैं, इसलिए इनमें उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल स्पष्ट ही है। औदारिककाययोगी जीवोंमें आयुकर्मके सिवा यह अन्तरकाल इसी प्रकार प्राप्त होता है। मात्र औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है, इसलिए इसमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष कहा है। काययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध एक समयके बाद इसलिए बन जाता है कि अन्य काययोगोंमें ऐसे परिणाम एक समयके बाद हो सकते हैं, अतः इनमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपशमश्रेणिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१२६. औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इसी प्रकार आहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—औदारिक मिश्रकाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध इसलिए किया है कि इसमें औदारिकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें चार

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

१३०. इत्थि० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० । वेद०-णामा-गोदा० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । अणु० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि० । पुरिस० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० । वेद०-णामा-गोदा० इत्थिवेदभंगो । आउ० उक्क० णाणा०भंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । णवुंसगे घादि०४ तिरिक्खोघं । वेद०-णामा-गोदा० इत्थिवेदभंगो । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं दे० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं साग० सादि० । अवगदवेदे सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० उक्क० अंतो० ।

घातिकर्मोंका संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टिके और वेदनीय, नाम और गोत्रका सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध होता है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगमें भी उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल न होनेका कारण है। शेष कथन सुगम है।

१३०. स्त्रीवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एकसमय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। पुरुषवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधक तेतीस सागर है। नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अपगतवेदी जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल यद्यपि उपशमश्रेणिमें सम्भव है, पर इनकी बन्धव्युच्छित्तिके पहले ही स्त्रीवेदका उदय नहीं रहता, इसलिए इसमें इन तीन कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भी अन्तरकाल नहीं बनता। देवियोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति पचपन पल्य है, इसलिए इसमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य कहा है। क्योंकि जो पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य प्रथम त्रिभागमें आयुकर्मका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, पुनः पचपन पल्यकी आयुवाली देवी होकर वहाँ छह महीना काल शेष रहने पर पुनः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, उसके आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य उपलब्ध होता है। नपुंसकवेदी जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३१. कोधादि०४ घादि०४-आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० । वेद०-णामा-गो० उक्क०अणु० णत्थि अंतरं । णवरि लोभे मोहणी० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

१३२. मदि०—सुद० घादि०४ तिरिक्खोघं । आउ० उक्क० घादिभंगो । अणु० ओघं । वेद०-णामा-गोदा० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । एवं असंजद०—मिच्छादि० । विभंगे घादि०४ णिरयोघं । वेद०-णामा-गोदाणं उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देसूणं ।

आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके पुनः नपुंसकवेदी नहीं होते, इसलिए इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण कहा है । अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उपशमश्रेणि गिरनेवाले जीवके अपगतवेदके अन्तिम समयमें होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनमें उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

१३१. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । इतनी विशेषता है कि लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—जो जीव उपशमश्रेणि पर आरोहण करता है, उसके क्रोध, मान और माया कषायका अभाव होकर लोभकषायके सद्भावमें मोहनीय कर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है और ऐसा जीव सूक्ष्मसाम्परायमें मरकर देव पर्यायमें यदि उत्पन्न होता है, तो वहाँ भी लोभकषायका सद्भाव बना रहता है, इसलिए लोभकषायमें मोहनीयके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल बन जाता है । अब यदि यह जीव दसवें गुणस्थानमें एक समय तक रहकर मरता है, तो एक समय अन्तरकाल उपलब्ध होता है और यदि अन्तर्मुहूर्त रहकर मरता है तो अन्तर्मुहूर्त अन्तरकाल उपलब्ध होता है । यही कारण है कि लोभकषायमें मोहनीयके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१३२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग घातिकर्मोंके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार असंयत और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । विभङ्गज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह मास है ।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानमें संयमके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनमें इन कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । विभङ्गज्ञानमें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३३. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० छावट्ठि० देसू०। अणु० ओघं। एवं ओधिदं०—सम्मादि०। मणपज्जव० सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जहण्णु० अंतो०। आउ० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। एवं संजद-सामाइय-च्छेदो०। णवरि सामाइय-च्छेदो० सत्तण्णं क० अणु० णत्थि अंतरं।

१३४. परिहार० घादि०४ उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। वेद०-णामा गोदा० उक्क० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडि० देसू०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०।

भागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्यके होता है, इसलिए इसमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१३३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। इसी प्रकार संयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिक आदि तीन ज्ञानोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनमें उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनमें उक्त सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल उपशमश्रेणिकी अपेक्षा बन जाता है जो जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। यद्यपि आभिनिबोधिक आदि तीनों ज्ञानोंका उत्कृष्ट काल चार पूर्वकोटि अधिक छियासठ सागर है, पर यहाँ आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर ही बनता है, क्योंकि यहाँ पर वेदकसम्यक्त्वकी मुख्यतासे ही यह अन्तरकाल उपलब्ध होता है। मनःपर्ययज्ञानमें असंयमके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसमें इन सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इसमें इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि यह जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका अबन्धक रहता है। सामायिक और छेदोपस्थापना संयम नौवें गुणस्थान तक ही होते हैं, इसलिए इनमें आयुके सिवा शेष सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता, इसलिए उसका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१३४. परिहारविशुद्धसंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा [1]उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० एग०। आउ० मणपज्जवभंगो। सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। संजदासंजद० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। आउ० परिहारभंगो।

१३५. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। किण्णाए घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं सा० सादि०। अणु० जह० एग०, उ० बेसम०। वेद०-णामा-गोदा० [उक्क० अणु०] जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं सा० देसू०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ० [उक्क० अणुभा०] जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देसू०। एवं छण्णं लेस्साणं आउ० सरिसमंतरं। णील-काऊणं सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उ० सत्तारस सत्त साग० देसू०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। तेउ०-पम्मा० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० बे अट्ठारस० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेदणी०-णामा-गो० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु०- एग०। सुक्काए घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० अट्ठारससा० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० अणु० ओघं।

समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। अथवा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। आयुकर्मका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। आयुकर्मका भङ्ग परिहारविशुद्धसंयत जीवोंके समान है।

१३५. चक्षुःदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महिना है। इसी प्रकार छह लेश्यावाले जीवोंके आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका समान अन्तर है। नील और कापोतवाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम सत्तरह सागर व कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक दो सागर व साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल ओघके समान है।

१ मूलप्रतौ अथवा वाउ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३६. अब्भवसि० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। आउ० मदि०भंगो।

१३७. खइग० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेद०-णामा-गोदा० ओघभंगो। आउ० [उक्क० अणु०] जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। अणु० ओघं।

विशेषार्थ—कृष्णलेश्यावाले जीवोंके चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तीन गतिमें सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। जो नरक जानेके सन्मुख कृष्णलेश्यावाला जीव है, उसके अन्तमें कृष्णलेश्या हो जाती है और नरकसे निकलनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक यह बनी रहती है, इसलिए साधिक तेतीस सागर काल उपलब्ध हो जाता है। परन्तु वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध असंयतसम्यग्दृष्टि, सर्वविशुद्ध नारकीके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। कृष्णलेश्यामें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्यके होता है, इसलिए इसमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि इनके एक लेश्या अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं पाई जाती। नील और कापोत लेश्यामें सात कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नारकियोंके ही होता है, इसलिए इनमें सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर कहा है। पीत और पद्मलेश्यामें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध देवगतिमें होता है और देवोंमें पीतलेश्याका मुख्यतासे दूसरे कल्प तक व पद्मलेश्याका बारहवें कल्प तक निर्देश किया जाता है। इनकी उत्कृष्ट आयु क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है, इसलिए इनमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध इन लेश्याओंमें सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके होता है, तथा पुनः उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी योग्यता आने तक लेश्या बदल जाती है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहनेका कारण यह है कि इनमें इन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। शुक्ललेश्यामें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक होता है, इसलिए इसमें इन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१३६. अभव्य जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयु कर्मका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—अभव्य जीवोंके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल है। इसीसे यहाँ आयु कर्मके अतिरिक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। यह स्पष्ट है कि इन सात कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है। शेष कथन सुगम है।

१३७. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग ओघके के समान है। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३८. वेदग० सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० एय०। णवरि घादि०४ अणु० णत्थि अंतरं। आउग० ओधिणाणा०भंगो। उवसम० सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१३९. सासणे घादि०४ उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। वेद०-आउ०-णामा-गोदा० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम०। सम्मामि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं।

१४०. सण्णि० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णि० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०,

---

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, इसलिए इसमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। उपशमश्रेणिमें क्षायिकसम्यक्त्व भी होता है और इसमें चार घातिकर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है, इसलिए क्षायिकसम्यक्त्वमें इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१३८. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीवके होनेसे इसमें इन तीन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। उपशमसम्यक्त्वमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख जीवके अन्तिम समयमें होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिमें सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इन सातों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशम सम्यक्त्वमें उपशमश्रेणिकी अपेक्षा कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१३९. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्त्वमें मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। किन्तु वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका सर्वविशुद्ध जीवके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इसमें इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१४०. संज्ञी जीवोंमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० अणंतकालं असंखेंज्जा० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० । आउ० उक्क० जह० एग०, उ० पुव्वकोडितिभागं देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी सादि० ।

१४१. आहार० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखेंज० । अणु० ओघं । वेद०-णामा-गोदा० ओघं । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखें० । अणु० ओघं ।

एवमुक्कस्समंतरं समत्तं ।

१४२. जहण्णए पगदं । दुवि०--ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४ जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आउ० जह० वेदणीय-भंगो । अज० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं साग० सादि० । गोद० जह० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो । एवं अचक्खुदं०-भवसि० ।

उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीवको पहिली पूर्वकोटिके त्रिभागमें आयुकर्मका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके पुनः पूर्वकोटिकी आयुवाले असंज्ञियोंमें उत्पन्न कराकर अन्तमें आयुबन्ध करावे और इस प्रकार आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि ले आवे । शेष कथन सुगम है ।

१४१. आहारक जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका भङ्ग ओघके समान है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—आहारकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर काल कहा है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर समाप्त हुआ ।

१४२. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आयु कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका भंग वेदनीय कर्मके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४३. णिरएसु घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देसूणं। गोद० जह० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। अज० जह० एग०, उ० एग०। एवं सत्तमाए पुढवीए। उवरिमासु छसु तं चेव। णवरि गोद० वेद०भंगो। अप्पप्पणो द्विदीओ देसूणाओ कादव्वाओ।

अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—चार घात कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः ओघसे इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। उपशमश्रेणिमें चार घाति कर्मोंका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक बन्ध नहीं होता। इसके बाद पुनः उनका यथायोग्य अजघन्य अनुभागबन्ध होने लगता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। वेदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध बादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंके भी हो सकता है और इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है। यही कारण है कि ओघसे इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीके नारकीके सम्यक्त्वके अभिमुख होनेपर होता है। यह अवस्था पुनः कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके बाद या अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके बाद उपलब्ध होती है, इसलिए ओघसे इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१४३. नारकियोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। गोत्र कर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वीमें जानना चाहिए। ऊपरकी छह पृथिवियोंमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्रकर्मका भङ्ग वेदनीयके समान है तथा अपनी-अपनी कुछ कम स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—नरकमें चार घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध असंयत सम्यग्दृष्टिके होता है और इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिये यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि दोनोंके परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है तथा गोत्रका सातवें नरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है। सातवें नरकमें प्रारम्भमें और अन्तमें इस व्यवस्थाको प्राप्त कर कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका भी कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर कहा है। गोत्रकर्मका एक बार जघन्य अनुभागबन्ध होनेपर पुनः वैसी योग्यता अन्तर्मुहूर्त कालके पहले नहीं आती, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४. तिरिक्खसु घादि०४ जह० जह० एग०, उ० अद्धपोग्गलदे० । अज० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। वेद०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। आउ० जह ओघं। अज० अणुक्कस्सभंगो। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं० असंखे०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। पंचिंदि०-तिरिक्ख०३ घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अज० ज० एग०, उक्क० बेसमयं। वेद०-णामा० जह० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० पुव्व-कोडिपुधत्तं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। आउ० ज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अज० अणु०भंगो। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिपुध०। अज०[1] जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०।

अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। सातवीं पृथिवीमें यह ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उसमें सामान्य नारकियोंके समान अन्तर काल कहा है। हाँ, प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें गोत्रकर्मकी वेदनीय और नामकर्मसे स्वामित्वकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है, इसलिए इनमें और सब अन्तर तो अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार सामान्य नारकियोंके समान है, पर गोत्रकर्मकी अपेक्षा यह अन्तर वेदनीयके समान कहा है। शेष अन्तर कालको विचार कर ले आना चाहिये।

१४४. तिर्यञ्चोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय और नाम कर्मके जघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। पचेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय और नाम कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयतासंयतके होता है और संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, अतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चोंमें गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवके होता है। तथा इनका उत्कृष्ट

1 मूलप्रतौ अज० जह० जह० एग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४५. पंचिंदि० तिरि० अपज्ज० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-णामा-गोदा० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सव्वअपजत्त-सुहुमपजत्ताणं च।

१४६. मणुस०३ घादि०४ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि वेद०-णामा-गोदा० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१४७. देवेसु घादि०४ जह० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू०। अज०

अन्तर अनन्तकाल है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें संयतासंयत गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है, इसलिए इनमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण कहा है। यद्यपि इनमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले पंचेन्द्रिय जीवके होता है, पर ऐसी योग्यता भोगभूमिमें सम्भव नहीं, इसलिए इनमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण कहा है। आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध भी यहीं कर्मभूमिके पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकके होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी उक्त प्रमाण कहा है। मात्र वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध भोगभूमि और कर्मभूमि दोनोंके सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है। इन सब स्थलोंमें उत्कृष्ट अन्तर लाते समय प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभागबन्ध कराकर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए। शेष कथन सुगम है, इसलिए उसका अलग से निर्देश नहीं किया।

१४५. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, और सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

१४६ मनुष्यत्रिक में चार घातिकर्मों के जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। शेष कर्मोंके अनुभागबन्धके अन्तरकाल का भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल उपशमश्रेणिमें उपलब्ध होता है। तथा इसी प्रकार वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी उपशमश्रेणिमें उपलब्ध होता है। यतः उपशमश्रेणिमें इन सबका बन्ध मनुष्यत्रिकमें अन्तर्मुहूर्त काल तक नहीं होता, अतः यहाँ चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल तथा वेदनीय, नाम गोत्रके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१४७ देवों में चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० बेसम० । वेद०-णामा० जह० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । अज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । आउ० णिरयभंगो । गोद० ज० ज० एग०, उक्क० ऍक्कत्तीसं० देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । एवं सव्वदेवाणं । णवरि अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति गोद० घादिभंगो ।

१४८, एइंदिएसु घादि०४ जह० ज० एग०, उक्क० असंखेँज्जा लोगा । अज० जह० एग०, उक्क० बे सम० । वेद०-आउ०-णामा० तिरिक्खोघं । णवरि आउ० अज० उक्कस्स० पगादिअंतरं । गोद० ज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं० । अज० जह० एग०, उक्क० बे सम० । बादरे० अंगुल० असंखे० । पज्जत्ते संखेँज्जाणि वाससहस्साणि । सुहुम० असंखेँज्जा लोगा ।

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है । आयु कर्मका भंग नारकियों के समान है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है । इसी प्रकार सब देवों के जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें गोत्र कर्मका भंग चार घातिकर्मोंके समान है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे देवोंमें चार घातिकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टिके होता है । तथा वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टिके भी होता है। अतः यहाँ इन छह कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । मात्र गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टिके ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थान अन्तिम ग्रैवेयक तक ही उपलब्ध होता है, अतः यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है । भवनत्रिक आदि देवोंमें जहाँ जो स्थिति हो, उसे ध्यानमें रखकर अपना-अपना यह अन्तरकाल ले आना चाहिए । नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टिके ही होता है, इसलिए इनमें गोत्र कर्मका भङ्ग चार घातिकर्मोंके समान कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१४८ एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । वेदनीय, आयु और नामकर्मका भंग सामान्य तिर्यँचोंके समान है । इतनी विशेषता है कि आयु कर्मके अजघन्य अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्ध के अन्तरके समान है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । बादर एकेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें असंख्यात लोक प्रमाण है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध बादर एकेन्द्रियोंके होता है और बादर एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है, इसलिए इनमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है । सामान्य तिर्यञ्चोंमें वेदनीय, आयु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४९. बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० तेसिं च पज्जत्त० सत्तण्णं क० जह० ज० एग०, उक्क० संखेंज्जाणि वाससहस्साणि । अज० अपज्जत्तभंगो । आउ० जह० णाणावरणभंगो० । अज० पगादिअंतरं ।

१५०. पंचिंदि०-पंचिंदियपज्जत्त० घादि०४ जह० अज० ओघं । वेद०-आउ०-णामा० ज० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । अज० ओघं । गोद० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी० । अज० ओघं । एवं तस-तसपज्जत्त-चक्खुदं० ।

और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण उपलब्ध होता है। यह भी यहाँ इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। एकेन्द्रियोंमें पृथिवीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति बाईस हजार वर्ष है। यदि कोई एकेन्द्रिय पूर्व भवके प्रथम त्रिभागमें आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध करके बाईस हजार वर्षकी आयुवाला पृथिवीकायिक होता है और वहाँ भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अजघन्य अनुभागबन्ध करता है,तो आयुकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष उपलब्ध होता है। एकेन्द्रियों में प्रकृतिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर इतना ही है। यही कारण है कि यहाँ आयुकर्मके अजघन्य अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान कहा है। एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके होता है। इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। यह सामान्य एकेन्द्रियों की अपेक्षा अन्तरकाल कहा है। बादर एकेन्द्रिय, बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियकी कायस्थिति क्रमसे अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण, संख्यात हजार वर्ष और असंख्यात लोकप्रमाण है। इसलिये इसके अनुसार आठों कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१४९ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें तथा उनके पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। अजघन्य अनुभागबन्धका भंग अपर्याप्तकोंके समान है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका भंग ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य अनुभाग बन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है।

विशेषार्थ—इन जीवोंकी कायस्थिति संख्यात हजारवर्ष है। इसलिए इनमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात हजारवर्ष कहा है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान कहा है। यहाँ प्रकृतिबन्धमें आयुकर्म का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक बारहवर्ष, साधिक उनचास दिन-रात और साधिक छह महीना प्रमाण कहा है। यहाँ आयुकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका यह अन्तर इसी प्रकार उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ इसके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५० पंचेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मों के जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघ के समान है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार त्रस, त्रस पर्याप्त और चक्षुदर्शनी जीवोंके जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५१. पुढ०-आउ० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० बेसम०। बादरे कम्मट्ठिदी०। पज्जत्ते संखेंज्जाणि वास-सहस्साणि। एवं वेद०-णामा-गोदाणं। णवरि अज० अपज्जत्तभंगो। एवं आउ० जह०। अज० पगदिअंतरं कादव्वं। एवं तेउ०-वाऊणं पि। णवरि गोद० णाणा०भंगो। वणप्फदि-पत्तेय-णियोदाणं च पुढविभंगो। णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदीओ कादव्वाओ।

१५२. पंचमण०-पंचवचि० घादि०४ ज० अज० णत्थि अंतरं। वेद०-आउ०-

विशेषार्थ—ओघसे चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल पञ्चेन्द्रियद्विककी मुख्यतासे ही उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ यह अन्तरकाल ओघके समान कहा है। किन्तु वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके विषयमें सर्वथा यह बात नहीं है, इसलिए इनका विचार स्वतन्त्ररूपसे किया है। उसमें भी यहाँ जिनकी जो कायस्थिति है, तत्प्रमाण इन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल बन जाता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। त्रस, त्रसपर्याप्त और चक्षुदर्शनी जीवोंमें भी चार घातिकर्मोंका ओघके समान और शेषका अपनी-अपनी कायस्थितिके अनुसार यह अन्तरकाल बन जाता है, इसलिये वह इन जीवोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५१. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें कर्मस्थिति प्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तर काल अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल है। इसके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तर कालके समान करना चाहिये। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्रकर्मका भंग ज्ञानावरणके समान है। वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और निगोद जीवोंमें पृथिवी कायिक जीवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति करनी चाहिये।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इसीसे इन जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण कहा है। इतनी विशेषता है कि कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें बादर पर्याप्त कराके इन कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध कराकर यह अन्तरकाल ले आवें। यहाँ शेष चार कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल भी इसी प्रकार ले आवें। पर यह केवल बादर पर्याप्तके ही प्राप्त होता है,यह नियम नहीं है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी उक्त प्रमाण कायस्थिति होनेसे इनमें भी यह अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन दोनों कायवाले जीवोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व ज्ञानावरणके समान होनेसे इसका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। यहाँ अन्य जितने कायवाले जीव गिनाए हैं, इनमें भी उनकी कायस्थितिको जानकर उक्त अन्तर काल ले आना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है। शेष कथन सुगम है।

१५२. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अज-घन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णामा० ज० जह० उक्क० अंतो० । अज० जह० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । गोद० जह० णत्थि अंतरं । अज० [जहण्णु०] एग० ।

१५३. कायजोगि० घादि०४ जह० अज० ओघं० । वेद०-णामा० ओघं० । आउ० एइंदियभंगो । गोद० जह० णत्थि अंतरं । अज० ओघं ।

१५४. ओरालि० घादि०४ जह० [अज०] णत्थि अंतरं । वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० सत्तवाससह० सादि० । गोद० जह० जह० एग०, उक्क० तिण्णिवाससह० देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० बेसम० । ओरालिय–

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

विशेषार्थ—पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभाग-बन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है तथा उपशमश्रेणिमें योगपरिवर्तन हो जाता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके होता है। तथा आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अन्यतर अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके होता है। उक्त योगोंमें यह अवस्था अन्तर्मुहूर्तके बाद हो सकती है, इसलिए इनमें इन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभाग-बन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, पर इन योगोंमें एक बार गोत्र-कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध होने पर उसी योगके रहते हुए दूसरी बार वह अवस्था प्राप्त नहीं होती, इसलिए इन योगोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१५३. काययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। वेदनीय और नाम कर्मका भंग ओघके समान है। आयुकर्मका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनु-भागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है।

विशेषार्थ—काययोगके रहते हुए गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है, क्योंकि पहले उसका विचार कर आये हैं।

१५४. औदारिक काययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष है। अजघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। औदारिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मि० पंचण्णं क० जह० अज० णत्थि अंतरं। वेद०—आउ०—णामा० अपज्जत्तभंगो। एवं वेउव्वियमि०—आहारमि०। णवरि वेउव्वियमि० आउ० णत्थि अंतरं।

१५५. वेउव्वियका० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० बेसम०। वेद०-आउ०-णामा० जह० ज० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। गोद० जह० णत्थि अंतरं। अज० एग०। एवं आहारका०। णवरि गोद० णाणा०भंगो। कम्मइ० सत्तणं क० जह० अज० णत्थि अंतरं। णवरि वेद०-णामा० जह० अज० [एग०]। एवं अणाहारका०।

मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभाग बन्ध का अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु और नामकर्म का भंग अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों में जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवोंमें आयु कर्मका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—औदारिक काययोगमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और उपशमश्रेणिमें उपशान्तमोहके कालसे औदारिककाययोगका काल अल्प है, इसलिए इसमें चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवालेके होता है। यतः औदारिककाययोगमें यह अवस्था कमसे कम एक समयका अन्तर देकर और उत्कृष्टसे कुछ कम बाईस हजार वर्षके अन्तरसे प्राप्त हो सकती है, इसलिए इसमें इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय स्पष्ट ही है, क्योंकि इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय कहा है। इससे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उक्त प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होता है। आयुकर्मका जघन्य अनुभाग-बन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। तथा औदारिककाययोगमें प्रथम त्रिभागसे दूसरी बार आयुबन्धके कालमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है, इसलिए इसमें आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष कहा है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंके होता है। उसमें भी बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष है। इसलिए इसमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

१५५. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार आहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भंग ज्ञानावरणके समान है। कार्मण-काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५६. इत्थि०-पुरिस० घादि०४ जह० अज० णत्थि अंतरं। वेद०-णामा०-गोद० जह० ज० एग०, उक्क० पलिदो०सदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। आउ० जह० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अज० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि०, तेत्तीसं० सादि०। णवुंस० घादि०४ ज० अज० णत्थि अंतरं। वेद०-आउ०-णामा० जह० ओघं। अज० पुरिस०भंगो। गोद० जह० ओघं०। अज० एग०। अवगदवे० सत्तण्णं क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धयोग्य परिणाम कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तरसे होते हैं, इसलिए इसमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है, यह स्पष्ट ही है। वेदनीय, आयु और नामकर्मका बन्ध मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ये परिणाम कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे हो सकते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल स्पष्ट ही है। वैक्रियिककाययोगके कालमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धके योग्य परिणाम दो बार नहीं होते, इसलिए यहाँ इसके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१५६. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे सौ पल्य पृथक्त्व और सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयु कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य और साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल पुरुषवेदी जीवोंके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंके क्षपकश्रेणिमें अपने-अपने वेदकी उदयव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता है तथा इसके पहले इनके अजघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इन जीवोंके चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इन जीवोंके स्वामित्वको देखते हुए वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव होनेसे यहाँ इन तीन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे सौ पल्य पृथक्त्व और सौ सागरपृथक्त्व कहनेका कारण यह है कि इन जीवोंके अपनी कायस्थितिके प्रारम्भ और अन्तमें जघन्य अनुभागबन्ध होकर मध्यमें सतत अजघन्य अनुभागबन्ध होते रहना सम्भव है। यहाँ इन तीन कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय इनके जघन्य अनुभागबन्धके जघन्य और उत्कृष्टकालको ध्यानमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५७. कोधादि०४ घादि०४ जह० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणि मणजोगिभंगो। णवरि लोभे मोह० अज० ओघं।

१५८. मदि०-सुद० घादि०४—गोद० जह० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं णवुंसगभंगो। एवं मिच्छादिट्ठी०। विभंगे घादि०४—गोद० जह० अज० णत्थि अंतरं। वेद०—णामा० जह० अज० णिरयोघं। आउ० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० छम्मासं देसू०।

रखकर कहा है, यह स्पष्ट ही है। आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अपनी-अपनी कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे हो सकता है, इसलिए यह अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे होने पर इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और जिस पुरुषवेदी या स्त्रीवेदी मनुष्यने आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे तेतीस सागर और पचपन पल्य बाँधते समय अजघन्य अनुभागबन्ध किया, पुनः तेतीस सागर और पचपन पल्यकी आयुके अन्तमें पुनः आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध किया, उस पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी जीवके आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध क्रमसे साधिक तेतीस सागर और साधिक पचपन पल्य उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। नपुंसकवेदीके पुरुषवेदीके समान चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, यह स्पष्ट ही है। तथा ओघ प्ररूपणाके समय वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जो अन्तर कहा, वह नपुंसकवेदमें सम्भव है, इसलिये यहाँ यह कथन ओघके समान कहा है। मात्र गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समयसे अधिक उपलब्ध नहीं होता; क्योंकि नपुंसकोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय ही उपलब्ध होता है। इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और शेष तीन कर्मोंका उपशमश्रेणिसे गिरते समय अपगतवेदके अन्तिम समयमें होता है। यही कारण है कि यहाँ इन सातों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है।

१५७. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष कर्मोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभ कषायमें मोहनीय कर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है।

विशेषार्थ—क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल लाते समय पहले जिस प्रकार मनोयोगी जीवोंके वह घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए, इसलिए वह मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। मात्र ओघसे मोहनीयकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित करके बतलाया है, वह यहाँ लोभकषायमें अविकल घटित हो जाता है, इसलिए यह कथन ओघके समान कहा है।

१५८. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घाति कर्म और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष कर्मोंका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान है। आयुकर्मके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५९. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४-गोद० जह० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० छावट्ठि० सादि०। अज० ओघं। आउ० जह० जह० एग०, उक्क० छावट्ठिसाग० सादि०। अज० ओघं। एवं ओधिदं०-सम्मादि०।

१६०. मणपज्ज० घादि०४-गोद० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। वेद०-णामा० जह० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी० देसू०। अज० ओघं। आउ० जह० अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। एवं संजदा०।

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है।

विशेषार्थ—तीनों मिथ्याज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए तो इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होता है,इसलिए यहाँ इसके भी जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१५९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन दोनों सम्यग्ज्ञानियोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इन पाँचोंके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल उपशमश्रेणिमें उपशान्तमोह गुणस्थानमें एक समय रहकर मरणकी अपेक्षा एक समय और उपशान्तमोहमें पूरे काल तक रहकर उतरनेकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। ओघसे भी यह इतना ही उपलब्ध होता है, इसलिए यह अन्तर ओघके समान कहा है। वेदनीय और नामकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय होनेसे इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। यह सम्भव है कि ये दोनों सम्यग्ज्ञानी अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभागबन्ध करें और मध्यमें अजघन्य अनुभागबन्ध करते रहें, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर कहा है। इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ओघके समान यहाँ भी घटित हो जाता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। इसी प्रकार आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका यथायोग्य विचार कर अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१६०. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६१. सामाइ०-छेदो० घादि०४-गोद० जह० अज० णत्थि अंतरं। वेद०-आउ०-णामा० मणपज्जवभंगो। णवरि वेद०-णामा० अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। परिहार०-संजदासंजदा० घादि०४-गोद० जह० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं सामाइयभंगो। णवरि परिहार० घादि०४ अज० एग०। असंजदे घादि०४ जह० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं कम्माणं णवुंसगभंगो।

१६२. किण्णाए घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं सा० देसू०। अज०

कम त्रिभाग प्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें भी चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। मनःपर्ययज्ञानी जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण कर यदि मरता है, तो उसके मनःपर्ययज्ञान नहीं रहता। अतएव मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें उक्त पाँचों कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल उपशमश्रेणि पर आरोहण और अवरोहणकी अपेक्षा ही सम्भव है। यतः उपशान्तमोहका स्वस्थानकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ पाँचों कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट अवस्थिति काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। किसी जीवने मनःपर्ययज्ञानके सद्भावमें एक समयके अन्तरसे वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध किया और किसीने मनःपर्ययज्ञानके कालके प्रारम्भ और अन्तमें इनका जघन्य अनुभागबन्ध किया और मध्यमें अजघन्य अनुभागबन्ध करता रहा, तो यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यह उक्त प्रमाण कहा है। ओघसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त घटित करके बतला आये हैं, वह यहाँ भी सम्भव है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६१. सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु और नामकर्मका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वेदनीय और नामकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। परिहारविशुद्धि संयत और संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष कर्मोंका भङ्ग सामायिक संयत जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें चार घाति कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। असंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तरकाल नहीं है। शेष कर्मोंका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंको उपशान्तमोह गुणस्थानकी प्राप्ति न होनेसे इनमें वेदनीय और नामकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय कहा है। परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागका बन्ध सर्वविशुद्धि अवस्थाके होनेपर एक समय तक होता है। इसके बाद पुनः अजघन्य अनुभागबन्ध होने लगता है, इसलिए यहाँ चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है। स्वामित्व और कालका विचार कर अन्तरकाल ले आना चाहिए।

१६२. कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० वेसम० । वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । आउ० विभंगभंगो । गोद० णिरयोघं । णील-काऊणं घादि०४-वेद०-णामा० किण्णभंगो । गोद० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० वेसम० ।

१६३. तेउ० घादि०४ जह० णत्थि अंतरं । अज० ज० एग० । सेसाणं सोधम्मभंगो । एवं पम्माए वि । णवरि वेद०-आउ०-णामा०-गोदा० सहस्सारभंगो । सुक्काए घादि०४ जह० अज० ओघं । वेद०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । अज० ओघं । आउ०-गोदा० णवगेवज्जभंगो ।

अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है । आयुकर्मका भङ्ग विभङ्गज्ञानी जीवोंके समान है गोत्रकर्मका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है । नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्म, वेदनीय और नामकर्मका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है ।

विशेषार्थ—कृष्णलेश्यामें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टिके सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है । ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे भी हो सकते हैं । यही कारण है कि यहाँ इन चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है, यह इसीसे स्पष्ट है कि इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है । वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध जघन्य बन्धयोग्य मध्यम परिणामवाले किसी भी जीवके हो सकता है । ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी । यही कारण है कि यहाँ इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है । यहाँ नील और कापोत लेश्यामें चार घातिकर्म वेदनीय और नामकर्मका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान कहा है सो इसका अभिप्राय इतना ही है कि कृष्णलेश्याके समान नील और कापोतलेश्याके कालको जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

१६३. पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । शेष कर्मोंका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है । इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंमें भी जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है । शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तरकाल ओघके समान है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है । आयु और गोत्रकर्मका भङ्ग नौग्रैवेयकके समान है ।

विशेषार्थ—पीतलेश्यामें अप्रमत्तसंयतके सर्वविशुद्ध परिणामोंसे चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता है । ऐसे परिणाम पीतलेश्याके कालमें दो बार सम्भव नहीं हैं । इससे यहाँ चार

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

१६४. अब्भव० घादि०४–गोद० जह० जह० एगस०, उक० अणंतकालमसंखेंज्जा पो० । अज० जह० एगस०, उक० बे सम० । सेसं ओघं ।

१६५. खइए घादि०४ जह० अज० ओघं । वेद०–णामा–गोदा० ज० जह० एग०, उक० तेंत्तीसं सा० सादि० । अज० ओघं । आउ० जह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू० । अज० ओघं ।

१६६. वेदगस० घादि०४ जह० णत्थि अंतरं । अज० एग० । वेद०-णामा०

घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा इनका जघन्य अनुभागबन्धका एक समय तक ही होता है । इससे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१६४. अभव्य जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । शेष कर्मों का भंग ओघके समान है ।

विशेषार्थ—अभव्य जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है । ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी होते हैं और अनन्त कालके बाद भी होते हैं । इससे यहाँ इन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है । तथा इन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१६५. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है । वेदनीय नाम और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है । आयु कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धकी अन्तर प्ररूपणा जिसप्रकार ओघमें कही है, वह क्षायिक सम्यक्त्वमें अविकल बन जाती है, इसलिए यह कथन ओघके समान कहा है । वेदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे और गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध असंयतसम्यग्दृष्टि अवस्थामें संक्लेशपरिणामोंसे होता है । यहाँ ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी हो सकते हैं । यही कारण है कि यहाँ इन तीनों कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है । इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर इनके जघन्य अनुभागबन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालको ध्यानमें रखकर कहा है । आयुकर्मका अन्तरकाल सुगम है ।

१६६. वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । वेदनीय और नाम कर्मके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० जह० एग०, उक्क० छावट्ठि० देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । आउ० जह० वेदणीयभंगो । अज० ओघं । गोद० जह० णत्थि अंतरं ।

१६७. उवसम० घादि०४-गोद० णत्थि अंतरं । अज० ओघं । वेद०-णामा० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

१६८. सासणे घादि०४-गोद० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क बेसम० । वेद०-आउ०-णामा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज०

जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयु कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका भंग वेदनीय कर्मके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका भंग ओघके समान है। गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत होता है, उसीके चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए यहाँ चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा इसके चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होनेसे यहाँ अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। यहाँ वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम छियासठ सागरके अन्तरसे उपलब्ध हो सकते हैं, इसलिए इन दोनों कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम छियासठ सागर कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके हो सकता है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१६७. उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—उपशम सम्यग्दृष्टिके चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिमें चढ़ते समय और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होनेपर होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे सम्भव हैं, इसलिए तो इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयतक और उपशान्तमोह गुणस्थानकी अपेक्षा अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१६८. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० चत्तारिसमयं। गोद० जह०-अज० णत्थि अंतरं।

१६९. सम्मामि० वेद०-णामा० सासण०भंगो। सेसाणं जह० अज० णत्थि अंतरं।

१७०. सण्णी० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णी० घादि०४—गोद० जह० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उ० बेसम०। वेद०-आउ०-णामा० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। णवरि आउ० अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी सादि०।

भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतियोंमें सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है। यतः ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे उपलब्ध होते हैं, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है, यह स्पष्ट ही है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतियोंमें मध्यम परिणामोंसे और आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ये परिणाम भी कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे होते हैं, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६९. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें वेदनीय और नामकर्मका भंग सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके तथा गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशवाले मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होनेके कारण इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल सासादन सम्यग्दृष्टिके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है।

१७०. संज्ञी जीवोंमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भंग है। असंज्ञी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—असंज्ञियोंमें चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे कहा है, इसलिये इन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल बन जाता है। इसी प्रकार अन्यकर्मोंका अन्तर भी अपने-अपने स्वामित्वको ध्यानमें लेकर घटित कर लेना चाहिए। मात्र आयुकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर लाते समय वह साधिक एक पूर्वकोटि प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटिकी अपेक्षा ही यह अन्तर प्राप्त हो सकता है, अन्य प्रकारसे नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७१. आहार० घादि०४ जह० अज० ओघं । वेद०-आउ०-णामा० जह० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । अज० ओघं । गोद० जह० अंतो, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । अज० ओघं । एवं अंतरं समत्तं ।

१५ सण्णियासपरूवणा

१७२. सण्णियासं दुविधं-जह० उक्क० । उक्कस्सए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० णाणावरणीयस्स उक्कस्सयं अणुभागं बंधंतो दंसणा०-मोहणी०- अंतरा० णियमा बंधगा । तं तु छट्ठाणपदिदं बंधदि । वेद०-णामा-गोदा० णियमा अणुक्क० अणंतगुणहीणं बंधदि । आउ० अबंधगो । एवं दंसणा०-मोह०-अंतरा० । वेद० उक्क० अणुभागं बं० तिण्णिघादीणं णिय० बं० । णि० अणु० अणंतगुणहीणं बंधदि । मोह०-आउगस्स अबंधगो । णामा-गोदा० णिय० बं० णि० उक्कस्सं । एवं णामा-गोदा० । आउगस्स उक्कस्सं बं० सत्तण्णं क० णिय० बं० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं बंधदि । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-तिण्णिवेद०-कोधादि०४-आभि०-सुद०-ओधि०- मणपज्ज०-संजद०-चक्खुदं०-

---

१७१. आहारक जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है।

विशेषार्थ—आहारककी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ वेदनीय, आयु नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य स्थितिका बन्ध कराकर यह अन्तर ले आवे। शेष कथन सुगम है। इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

१५ सन्निकर्षप्ररूपणा

१७२. सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह छह स्थान पतित बाँधता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह अनुत्कृष्ट अनन्तगुणहीन अनुभागका बन्ध करता है। वह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायकर्मकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये। वेदनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्मोंका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणहीन अनुभागका बन्ध करता है, वह मोहनीय और आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागका बंध करता है। इसीप्रकार नाम और गोत्रकर्मकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है। जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। इसीप्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, द्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीन वेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, आभि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति। णवरि तिण्णिवेद०-तिण्णिकसा० वेद० उक्क० बं० मोह० णिय० बंध० अणंतगुणहीणं बंधदि। एवं सामाइ०-छेदोव०।

१७३. णिरएसु णाणाव० उक्क० अणु० बंध० दंसणा०-मोह०-अंतरा० णिय० बं०, तं तु [1]छट्ठाणपदिदं बंधदि। वेद०-णामा-गोदा० णि० बं० णि० अणु० अणंतगुण-हीणं०। आउ० अबंध०। एवं तिण्णिघादीणं। वेद० उक्क० बं० घादि०४ णि० बं० णि० अणंतगुणहीणं०। आउ० अबंध०। णामा-गोदा० णिय० बं० तं तु छट्ठाणपदिदं बं०। एवं णामा-गोदाणं। आउ० उक्क० सत्तण्णं क० णि० बं० णियं० अणु० अणंतगुणहीणं०।

१७४. अवगदवे० णाणावर० उक्क० बं० दंसणा०-मोह०-अंतरा० णि० बं० णि० उक्क०। वेद०-णामा-गोदा० णि० बं० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं०। एवं तिण्णं घादीणं। वेद० उक्क० बंधं० तिण्णिघादीणं णिय० बं० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं०। णामा-गोदा० णि० बं० णि० उक्कस्सं। एवं णामा-गोदाणं।

निर्वोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी; अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि तीन वेदवाले और तीन कषायवाले जीवोंमें वेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मोहनीयका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। इसीप्रकार सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिये।

१७३. नारकियोंमें ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बंध करनेवाला जीव दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है; आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार तीन घाति कर्मोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये। वेदनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार घातिकर्मोंका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है, वह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है। इसीप्रकार नाम और गोत्रकर्मकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है।

१७४. अपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियम से उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार तीन घाति कर्मोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये। वेदनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्मों का नियम से बन्ध करता है। जो नियम से अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है। नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार नाम और गोत्रकर्मकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये।

१ मूलप्रतौ 'छसंगणं पदिदं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७५. सुहुमसं० णाणावर० उक्क० बं० दंसणा०-अंतरा० णि० बं० णिय० उक्कस्स० । वेद०-णामा-गोदा० णि० बं० णि० अणु० अणंतगुणहीणं० । एवं दोण्णं घादीणं । वेद० उक्क० बं० तिण्णं घादीणं णि० बं० णि० अणु० अणंतगुणहीणं० । णामा-गोदा० णि० बं० णि० उक्क० । एवं णामा-गोदाणं ।

१७६. सेसाणं सव्वेसिं णिरयभंगो । णवरि तेउ-वाऊणं णाणावर० उक्क० बं० तिण्णं घादीणं गोद० णि० बं० तं तु० । वेद०-णामा० णि० बं० णि० अणु० अणंत-गुणहीणं० । आउ० अबंधगो । एवं तिण्णं घादीणं गोदस्स च । वेद० उक्क० बं० घादीणं गोदस्स च णि० बं० णि० अणंतगुणहीणं० । णाम० णिय० तं तु छट्ठाणपदिदं बंधदि ।

एवं उक्कस्ससण्णियासं समत्तं

१७७. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० णाणावर० जह० अणुभागं बंधंतो दंसणा०-अंतरा० णि० बं० णि० जहण्णं० । वेद०-णामा-गोदाणं णि० बं० णि० अजहण्णं अणंतगुणब्भहियं बंधदि । मोहाउगस्स अबंधगो । एवं दंसणा०-अंतराइ० । वेद० जह० बं० घादि०४—गोद० णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भहियं० । आउ०

---

१७५. सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियम से उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है । इसी प्रकार दो घातिकर्मोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये । वेदनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घाति कर्मोंका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है । नाम और गोत्र-कर्मका नियमसे बन्ध करता है । जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है । इसी प्रकार नाम और गोत्रकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

१७६. शेष सब मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्म और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है । वेदनीय और नामकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है । वह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता । इसी प्रकार तीन घातिकर्म और गोत्रकर्मकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये । वेदनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणे हीन अनुभागका बन्ध करता है । नामकर्मका नियमसे बन्ध करता है किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

१७७. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघ और आदेश । ओघसे ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण और अन्तरायका नियम-से बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य अनुभागका बन्ध करता है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है । वह मोहनीय और आयुकर्मका बन्ध नहीं करता । इसी प्रकार दर्शनावरण और अन्तरायकर्मकी मुख्यता से सन्निकर्ष जानना चाहिये । वेदनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिया बं० सिया अबं० । यदि बं० णि० तं तु छट्ठाणपदिदं० । णाम० णि० बं० णि० तं तु छट्ठाणपदिदं० । एवं आउ०-णाम० । मोह० जह० बंध० छण्णं कम्माणं णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भहियं० । आउ० अबंध० । गोद० जह० बं० छण्णं क० णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भहियं० । आउ० अबंधगा । एवं ओघभंगो पंचिंदि०-तस० २–पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०–लोभ०–आभि०–सुद०-ओधि०–मणपज्ज०-संजद०–चक्खुदं०–अचक्खुदं०–ओधिदं०–भवसि०–सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति ।

१७८. णिरएसु णाणा० जह० अणुभा० घादीणं तिण्णं णि० बं० तं तु छट्ठाणपदिदं बं० । वेद०-णामा-गोद० णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भहियं० । आउ० अबंध० । एवं तिण्णं घादीणं । वेद० जह० अणु० बं० घादि०४–गोद० णि० बं० अज० अणंतगु० । आउ० सिया बं० सिया अबं० । यदि बं० तं तु छट्ठाणपदिदं० । णाम० णि० बं० तं तु० छट्ठाणपदिदं० । एवं आउ० । णामा–गोदाणं ओघभंगो । एवं सत्तमाए पुढवीए तिरिक्खोघं अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सव्वएइंदि०-ओरालि०-वेउव्वि०-

चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है, जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। आयुकर्मका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो वह नियमसे छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है। नामकर्मका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह नियमसे छह स्थानपतित अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार आयु और नामकर्मकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये। मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव छह कर्मोंका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। वह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव छह कर्मोंका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। वह आयु कर्मका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, लोभकषायवाले, आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यय-ज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी अवधिदर्शनी, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१७८. नारकियोंमें ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्मोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। वह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार तीन घातिकर्मोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। वेदनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। आयुकर्मका कदाचित् बन्ध करता है और कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो वह नियमसे छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है। नामकर्मका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बध करता है। इसी प्रकार आयुकर्मकी मुख्यता-से सन्निकर्ष जानना चाहिये। नाम और गोत्र कर्मकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ओघके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवी, सामान्य तिर्यंच, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियमि० आहार०-आहारमि० कम्मइ०-मदि०-सुद० विभंग०-परिहार०-संजदासंजद-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-वेदग०-सासण०-सम्मामि०-असण्णि-अणाहारग त्ति । पढमादि याव छट्टि त्ति तं चेव । णवरि गोद० वेदणीयभंगो । तिरिक्ख-मणुसअपज्ज० देवा याव उवरिमगेवज्जा त्ति सव्वविगलिंदि०-पंचिंदि०-तसअपज्ज०-सव्वपुढवि०-आउ०-वणप्फदि०-बादर०पत्तेय०-णियोद० एवं चेव । मणुस०३ घादीणं ओघं । सेसं विदियपुढविभंगो ।

१७९. सव्वतेउ०-वाउ० णाणा० जह० जह० अणु० बं० तिण्णं घादीणं गोदस्स च णि० बं० णि० तं तु छट्ठाणपदिदं० । सेसं अपज्जत्तभंगो ।

१८०. इत्थि० णाणा० जह० बं० तिण्णि घादीणं णि० बं० णि० जहण्णा० । वेद०-णामा-गो० णि० बं० णि० अज० अणंतगु० । सेसं देवोघं । एवं पुरिस० । णवुंस० घादि०४ इत्थिभंगो । सेसं णिरयोघं । एवं णवुंसगभंगो कोध-माण-माय-सामाइ०-छेदो० ।

१८१. अवगद० णाणा० जह० बं० दंसणा०-अंतराइ० णि० बं० णि० जह० । वेद०-णामा-गो० णि० बं० णि० अज० अणंतगुणब्भहियं० । मोह० अबंध० । एवं

औदारिक काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धि संयत, संयतासंयत, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । पहली पृथिवीसे लेकर छठवीं तकके नारकियोंमें वही भंग है । इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्रकर्मका भंग वेदनीयके समान है । तिर्यंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देवोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और निगोद जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मोंका भंग ओघके समान है । शेष कर्मोंका भंग दूसरी पृथिवीके समान है ।

१७९. सब अग्निकायिक और सब वायुकायिक जीवोंमें ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्म और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह छह स्थान पतित अनुभागका बन्ध करता है । शेष भंग अपर्याप्तकोंके समान है ।

१८०. स्त्रीवेदी जीवोंमें ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन घातिकर्मोंका नियमसे बन्ध करता है । जो नियमसे जघन्य अनुभागका बन्ध करता है । वेदनीय, नाम, और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है । जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है । शेष भंग सामान्य देवोंके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिये । नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । शेष भंग सामान्य नारकियोंके समान है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके समान क्रोध कषायवाले, मानकषायवाले, मायाकषायवाले, सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

१८१. अपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका नियमसे बन्ध करता है । जो नियमसे जघन्य अनुभागका बन्ध करता है । वेदनीय नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है । जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है । वह मोहनीयका बन्ध नहीं करता । इसी प्रकार दर्शनावरण और अन्तरायकर्मकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये । वेदनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणा०-अंतराइ० । वेदणी० ज० बं० घादि०४ णि० बं० णि० अज० अणंतगुण-ब्भहियं० । णामा-गो० णि० बं० णि० जह० । एवं णामा-गोदाणं । मोह० ज० बं० छण्णं कम्माणं णि० बं० णि० अजहण्णा० अणंतगु० । एवं सुहुमसं० छण्णं कम्माणं । तेउ०- पम्मा० देवोघं । सुकाए मणुसभंगो ।

एवं सण्णियासो समत्तो ।

१६ णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा

१८२. णाणाजीवेहि भंगविचयं दुविहं—जह० उक्क० । उक्क० पगदं । तत्थ इमं अट्ठपदं–ए उकस्स-अणुभागबंधगा ते अणुकस्सअबंधगा । ए अणुकस्सअणु० बंध० ते उक्क० अणुभाग० अबंधगा । ये पगदी बंधदि तेसु पगदं अबंधगेसु अव्ववहरो। एदेण अट्ठपदेण अट्ठण्णं क० उक्क० अणुभा० सिया सव्वे अबंधगा, सिया अबंधगा य बंधगे य, सिया अबंधगा य बंधगा य । अणुक्क० अणुभागं सिया सव्वे बंधगा य, सिया बंधगा य अबंधगे य, सिया बंधगा य अबंधगा य । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपत्ते०-कायजोगि०–ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४–मदि०–सुद०-असंज०-अचक्खु०–तिण्णिले०-भवसि०–अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति ।

वाला जीव चार घातिकर्मका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। नाम और गोत्रकर्मका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य अनुभागका बन्ध करता है। इसीप्रकार नाम और गोत्रकर्मकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव छह कर्मोंका नियमसे बन्ध करता है। जो नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। इसीप्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें, छह कर्मोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिये। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है। शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें मनुष्योंके समान भंग है।

इसप्रकार सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

१६ नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयप्ररूपणा

१८२. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग विचय दो प्रकारका है–जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है कि जो उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक होते हैं, वे अनुत्कृष्ट अनुभागके अबन्धक होते हैं। और जो अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक होते हैं,वे उत्कृष्ट अनुभागके अबन्धक होते हैं। इसप्रकार कर्मका बन्ध करते हैं। उनका यहाँ प्रकरण है। क्योंकि अबन्धकोंमें व्यवहार नहीं होता। इस अर्थ पदके अनुसार आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके कदाचित् सब जीव अबन्धक हैं, कदाचित् नाना जीव अबन्धक हैं और एक जीव बन्धक है, कदाचित् नाना जीव अबन्धक हैं और नाना जीव बन्धक हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके कदाचित् सब जीव बन्धक हैं, कदाचित् नाना जीव बन्धक हैं और एक जीव अबन्धक है,कदाचित् नानाजीव बन्धक हैं और नाना जीव अबन्धक हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी,तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३. मणुसअपज्ज०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-सुहुमसं०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छा० उक्क० अणुक्क० अट्ठभंगो। एइंदिय-बादर-सुहुम० पज्जत्तापज्जत्त० काएसु सव्वबादरअपज्जत्त-सव्वसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-सव्ववणप्फदि०-णियोद०-बादर०पत्ते०अपज्जत्त० आउ० ओघं। सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणुक्क० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। सेसाणं सव्वेसिं सत्तण्णं कम्माणं उक्क० तिण्णिभंगो। अणुक्कस्सा पि पडिलोमेण तिण्णि भंगा। आउ० उक्क० अणुक्क० तिण्णि भंगा।

एवं उक्कस्सभंगविचयो समत्तो।

१८४. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० तत्थ इमं अट्ठपदं उक्कस्सभंगो। घादि० ४-गोदस्स जह० अज० उक्कस्सभंगो। वेदणी०-आउ०-णामा० जह० अज० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि० ४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति। णवरि कम्मइ० अणाहार० आउ० णत्थि।

१८५. एइंदि०-बादर०-बादरपज्जत्ता० गोद० ओघं। सेसाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। बादर०अपज्जत्त०-सव्वसुहुमाणं च अट्ठण्णं कम्माणं जह० अज० अत्थि

---

१८३. मनुष्य अपर्याप्तक, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी, आहारकमिश्र काययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्म साम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा आठ भङ्ग हैं। एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें तथा पाँचों स्थावर कायिकोंमें सब बादर अपर्याप्त, सब सूक्ष्म और उनके बादर और सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, निगोद जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक नाना जीव हैं और अबन्धक नाना जीव हैं। शेष सब मार्गणाओंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके तीन भङ्ग हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके भी प्रतिलोमक्रमसे तीन भङ्ग हैं। आयु कर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट पदकी अपेक्षा तीन भङ्ग हैं।

इसप्रकार उत्कृष्ट भङ्गविचय समाप्त हुआ।

१८४. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा वहाँपर पर यह अर्थ पद उत्कृष्टके समान जानना चाहिये। चार घाति कर्म और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा भंगविचय उत्कृष्टके समान है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभाग बन्धके नाना बन्धक जीव हैं और नाना अबन्धक जीव हैं। इसप्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१८५. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें गोत्रकर्मका भङ्ग ओघके समान है। शेष कर्मोंके नाना बन्धक जीव हैं और नाना अबन्धक जीव हैं। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त और सब सूक्ष्म जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके नाना बन्धक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधगा य अबंधगा य । सव्वबादरअपज्ज०-सुहुम०-सव्ववणप्फदि-णियोद०-पुढ०-आउ० घादि० ४ उक्कस्सभंगो । सेसाणं जह० अज० अत्थि बंधगा य अबंधगा य । तेउ०-वाउ०-बादरतेउ०-वाउ० घादि०४-गोद० उक्कस्सभंगो । सेसाणं जह० अजह० अत्थि बंधगा य अबंधगा य । सेसाणं णिरयादीणं सव्वेसिं सव्वभंगा उक्कस्सभंगो ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं ।

१७ भागाभागपरूवणा

१८६. भागाभागं दुवि०—जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० अणुभागबंधगा जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागो । अणुक्क० अणुभाग० जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा[1] । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइ०-णवुंस०-कोहादि४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-तिण्णिले०-भवसि० - अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति ।

१८७. एइंदिय-वणप्फदि-णियोदेसु आउ० ओघं । सेसाणं उक्क० असंखेंज्जदिभागो । अणुक्क० असंखेंज्जा भागा । अवगदवे० सत्तण्णं क० उक्क० संखेंज्जदिभागो । अणुक्क० संखेंज्जा भागा । एवं सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं । सेसाणं असंखेंज्जजीविगाणं उक्क०

जीव हैं और नाना अबन्धक जीव हैं । सब बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, निगोद, पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके नाना बन्धक जीव हैं और नाना अबन्धक जीव हैं । अग्नि-कायिक, वायुकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके नाना बन्धक जीव हैं और नाना अबन्धक जीव हैं । शेष नरकादि सब मार्गणाओंमें सब कर्मोंके सब भङ्ग उत्कृष्टके समान है ।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ ।

१७ भागाभागप्ररूपणा

१८६. भागाभाग दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? अनन्तवें भाग प्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मण काययोगी नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्या-वाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

१८७. एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें आयुकर्मका भंग ओघके समान है । शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके छह कर्मोंकी अपेक्षा भागाभाग जानना चाहिये । शेष

---

[1] ता० प्रतौ अणंतभागो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेॅज्जदिभागो। अणुक्क० असंखेॅज्जा भागा। सेसाणं संखेॅज्जजीविगाणं उक्क० संखेॅज्जदिभागो। अणुक्क० संखेॅज्जा भागा।

१८८. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४-गोद० जह० सव्व० केव०? अणंतभागो। अज० अणंता भागा[1]। वेद०-आउ०-णामा० जह० असंखेॅज्जदिभागो। अज० असंखेॅज्जा भागा[2]। एवं तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंजद०-अचक्खुदं०—तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति। णवरि कम्मइ०-अणाहारग० आउ० णत्थि।

१८९. एइंदिएसु [सत्तण्णं कम्माणं जह० अणु० असंखेॅ०। अज० असंखेॅज्जा भागा।] गोद० ओघं[3]। एवं वणप्फदि[4]-णियोदाणं। णवरि गोदं णामभंगो। सेसाणं सव्वेसिं संखेॅज्ज०-असंखेॅज्जजीविगाणं उक्कस्सभंगो। णवरि अवगदवे०-सुहुमसंप० अज० अत्थदो विसेसो[5] जाणिदव्वो। एवं भागाभागं समत्तं[6]।

असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। शेष संख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीव संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।

१८८. जघन्यका प्रकरण है। इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मण काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें आयु कर्मका बन्ध नहीं होता।

१८९. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं तथा अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। गोत्रकर्मका भंग ओघके समान है। इसीप्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्रकर्मका भंग नामकर्मके समान है। शेष सब संख्यात और असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें आठों कर्मोंका भंग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अजघन्य अनुभाग बन्धकी अपेक्षा वास्तवमें विशेष जानना चाहिए। इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

---

१ ता० प्रतौ भागो (गा) इति पाठः। २ ता० प्रतौ अज० असंखेजा भागा अज० असंखेजाभा०(?) आ० प्रतौ अज्ज० असंखेज्जदिभागा] इति पाठः। ३ ता० प्रतौ ओघे इति पाठः। ४ ता० प्रतौ वणप्फदि इति स्थाने सर्वत्र 'वणफदि' अथवा वणफति इति पाठः। ५ ता० प्रतौ सुहुमसंज (प०) अज० अथदो विसेसा इति पाठः। ६ ता० प्रतौ एवं भागाभागं समत्तं इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८ परिमाणपरूवणा

१९०. परिमाणं दुविहं–जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०–ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४ उक्क० अणुभा० केत्ति० ? असंखेंज्जा । अणुक्क० अणंता । वेद०–आउ०–णामा–गो० उक्क० संखेंज्जा । अणुक्क० अणंता । एवं ओघभंगो कायजोगि–ओरालिय०–ओरालियमि०–णवुंस०–कोधादि०४–अचक्खु०–भवसि०–आहारग त्ति ।

१९१. णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० असंखेंज्जा । आउ० उ० संखेंज्जा० । अणु० असंखेंज्जा । अट्ठण्णं कम्मा० एवं[1] सत्तसु पुढवीसु । णवरि सत्तमाए पुढवीए[2] आउ० उक्क० अणु० असंखेंज्जा । एवं णिरयभंगो सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वदेवाणं [आणद याव]सव्वट्ठ०वज्जाणं सव्वविगलिंदि०-सव्वपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादर–सुहुम–पज्जत्तापज्जत्ता० बादर०वणप्फदिपत्ते०पज्जत्तापज्जत्ता० वेउव्विय०–सासण०–सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । आणद[3] याव सव्वट्ठ० त्ति आउ० दो वि पदा संखेंज्जा । सव्वट्ठ०वज्जाणं सेसाणं कम्माणं असंखेंज्जा ।

१९२. तिरिक्खेसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० असंखेंज्जा । अणु० अणंता । एवं

१८ परिमाणप्ररूपणा

१९०. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य, और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

१९१. नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । आठों कर्मों के आश्रयसे इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार नारकियोंके समान सब अपर्याप्त, आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सिवा सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पति कायिक प्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें आयुकर्मके दोनों ही पदवाले जीव संख्यात हैं । तथा सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर शेषमें शेष कर्मोंके दोनों ही पदवाले जीव असंख्यात हैं ।

१९२. तिर्यञ्चोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट

१ ता० प्रतौ सत्तण्णं क० उ० अणु० असंखेज्जा । आउ० उ० संखेज्जा । अणु० असंखेज्जा । सेसा अट्ठण्णं कम्मा० एवं, आ० प्रतौ सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० असंखेज्जा । एवं इति पाठः । २ ता० प्रतौ सत्तमापुढवीये० इति पाठः । ३ ता० प्रतौ अणाद (आणद) इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मइ०–तिण्णिले०–अब्भवसि०–असण्णि०–अणाहारग त्ति । [णवरि कम्मइ०-अणाहा० आउ०णत्थि ।] सव्वपंचिंदियतिरिक्खेसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० अणु० असंखेंज्जा ।

१६३. मणुसेसु अट्ठण्णं क० उक्क० संखेंज्जा । अणु० असंखेंज्जा । मणुसपज्जत्त[1]–मणुसिणीसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० अणु० संखेंज्जा[2] । एवं सव्वट्ठ–आहार०–आहारमि०-अवगदवे०–मणपज्ज०–संजद[3]–सामाइ०-छेदो०–परिहार०–सुहुमसंप० ।

१६४. एइंदि०–वणप्फदि–णियोदाणं सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० अणंता । आउ० उक्क० संखेंज्जा । अणु० अणंता । तेउ०–वाउ०[4] उक्क० अणु० असंखेंज्जा ।

१६५. पंचिंदि०[5]–तस०२ घादि०४ उक्क० अणु० असंखेंज्जा । वेद०–आउ०–णामा०–गोद० उक्क० संखेंज्जा । अणु० असंखेंज्जा । एवं पंचमण०–पंचवचि०–इत्थि–पुरिस०–आभि०–सुद०–ओधि०–चक्खुदं०–ओधिद०-तेउ०-पम्म०-सुक्कले०–सम्मादि० खइग०–वेदग०–उवसम०[6]-सण्णि त्ति । णवरि सुक्क०-खइगे आउ० दो वि पदा संखेंज्जा ।

१६६. वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० असंखेंज्जा । अथवा अघादीणं

अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, तीन लेश्यावाले, अभव्य, असंज्ञी और अनाहारक जीवों के जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता । सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं ।

१६३. मनुष्योंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

१६४. एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं । अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं ।

१६५. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मके दोनों ही पदवाले जीव संख्यात हैं ।

१६६. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके

१ ता०-आ०प्रत्योः मणुसपज्जत्ता इति पाठः । २ ता० प्रतौ क० अणु० असंखेज्जा, आ०प्रतौ कम्माणं उक्क० अणु० असंखेज्जा इति पाठः । ३ ता०आ०प्रत्योः प्रायः सर्वत्र संजदा इति पाठः । ४ ता० प्रतौ वाउ० आउ० उक्क० इति पाठ । ५ ता०प्रतौ पंचिंदि० पंचिंदि० इति पाठः । ६ ता०प्रतौ खइग० उवसम० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि उवसमपच्छागदस्स कीरदि पढमसमयदेवस्स तो उक्क०[1] संखेज्जा। अणुक्क० असंखेज्जा। एवं कम्मइ०-अणाहारएसु। मदि०-सुद० आउ० उक्क० असंखेज्जा। अणु० अणंता। सेसाणं सत्तण्णं क० उक्क० अणु० ओघं। एवं असंज०-मिच्छादिट्ठि त्ति। विभंगे घादि०४-आउ० उक्क० अणु० असंखेज्जा। अघादीणं उक्क० संखेज्जा। अणुक्क० असंखेज्जा। एवं संजदासंजदा०।

१९७. जहण्णं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ जह० संखेज्जा। अज० अणंता। वेद०-आउ०-णामा० ज० अज० अणंता। गोद० जह० असंखेज्जा। अज० अणंता। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०-अणाहारग त्ति[2]।

१९८. णेरइएसु अट्ठण्णं क० जह० अजह० केत्तिया? असंखेज्जा। एवं सत्तसु पुढवीसु। एवं णिरयभंगो सव्वपंचिंदि०तिरि०-मणुसअपज्ज० देवा याव सहस्सार त्ति सव्वविगलिंदि०-सव्वपुढवि०-आउ० तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्ते०-पंचिंदि०-तस० अपज्ज०-वेउ०-वेउव्वियमि०।

बन्धक जीव असंख्यात हैं। अथवा उपशमश्रेणीसे आया हुआ जो प्रथम समयवर्ती देव अघाति कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबंध करता है, उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें अघातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा उक्त नियम जानना चाहिये। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। शेष सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार असंयत और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। विभंगज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अघाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाण समाप्त हुआ।

१९७. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक-जीव अनन्त हैं। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बंधक जीव अनन्त हैं। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक-जीव अनन्त हैं। इस प्रकार ओघके समान काययोगी औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाय योगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

१९८. नारकियोंमें आठ कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये। इसी प्रकार नारकियोंके समान सब पंचेन्द्रियतिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, सहस्रारकल्प तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक

---

१ आ० प्रतौ –देवस्स उक्क० इति पाठः। २ ता०-आ०प्रत्योः आहारग त्ति इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९९. मणुस० घादि०४ जह० संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेज्जा। एवं पंचिंदि०-तस०२-पंचमण-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं० तेउ०-पम्म०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगदीणं जह० अज० संखेज्जा। एवं सव्वट्ठसि०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदोव०-परिहार०-सुहुमसंप०। आणदादि याव अवराजिदा त्ति[1] आउ० जह० अज० संखेज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेज्जा।

२००. तिरिक्खेसु घादि०४ गोद० जह० असंखेज्जा। अज० अणंता। सेसाणं जह० अज० अणंता।

२०१. एइंदिएसु गोद० जह० असंखेज्जा। अज० अणंता। सेसाणं जह० अज० अणंता। एवं बादरपज्जत्त-अपज्जत्ता० सुहुमपज्जत्त-अपज्जत्ता० सव्ववणप्फदि०। णियोदाणं अट्ठण्णं क० ज० अज० अणंता।

२०२. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४-आउ० जह० संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेज्जा। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०-उवसम०।

शरीर, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये।

१९९. मनुष्योंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय द्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिये। आनतकल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें आयु कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बंधक जीव संख्यात हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं।

२००. तिर्यंचोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं।

२०१. एकेन्द्रियोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बंधक जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा सब वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिये। निगोद जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं।

२०२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्म और आयुकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। संयतासंयत

१ ता० प्रतौ अणा (आण) दादि उवरिय के (गे) वेज्ज०, आ० प्रतौ आणदादि याव उवरिमगेवज्जा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजदासंजदा० घादि०४ जह० संखेॅज्जा। अज० असंखेॅज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेॅज्जा। तिण्णिले०-अब्भवसि०-असण्णि०-आहारग[1] त्ति तिरिक्खोघं। सुक्काए घादि०४ जह० संखेॅज्जा। अज० असंखेॅज्जा। आउ० जह० अज० संखेॅज्जा। सेसाणं जह० अज० असंखेॅज्जा। एवं खइगसम्मा०।

एवं परिमाणं समत्तं

१६ खेॅत्तपरूवणा

२०३. खेॅत्तं दुविहं—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० अणुभागबंधगा केवडि खेॅत्ते? लोगस्स असंखेॅज्जदिभागे। अणुक्क० सव्वलोगे। एवं तिरिक्खोघो कायजोगि—ओरालि०—ओरालियमि०—कम्मइ०—णवुंस०—कोधादि०४—मदि०—सुद०—असंज०— अचक्खुदं०—तिण्णिले० — भवसि० — अब्भवसि०—मिच्छादि०—असण्णि—आहार०—अणाहारग त्ति।

२०४. एइंदिएसु० घादि०४ उक्क० अणु० सव्वलो०। वेद०—णाम० उक्क० लोगस्स संखेॅज्ज०। अणु० सव्वलो०। आउ०—गोद० उक्क० लोग० असं०। अणु० सव्वलो०। बादर०—बादरपज्जत्त-अपज्जत्त० आउ० उक्क० लो० असं०। अणु०

जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। तीन-लेश्यावाले, अभव्य, असंज्ञी और आहारक जीवोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग हैं। शुक्ललेश्या-वाले जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं, अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये। इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

१९ क्षेत्रप्ररूपणा

२०३. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

२०४. एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का सब-लोक क्षेत्र है। वेदनीय और नामकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। आयु और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक-जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त

१ ता० प्रतौ आणाहाण इति पाठः।

लोगस्स संखेज्जदिभा० । सेसाणं एइंदियभंगो । सव्वसुहुमाणं सव्ववणप्फदि[1]-णियोदाणं सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वलो० । आउ० उक्क० लो० असंखे० । अणु० सव्वलो० । णवरि वणप्फदि-णियोदाणं वेद०-णामा-गोदाणं उक्क० लो० असंखे० । बादरवणप्फदि-णियोद० तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेसु वेद०-णामा०-गोद० उक्क० आउ० दो वि पदा लो० असंखे० । पुढ०-आउ०-तेउ० अट्ठण्णं क० ओघं । बादरपुढ०-आउ०-तेउ० सत्तण्णं क० उक्क० लो० असं० । अणु० सव्वलो० । आउ० उक्क० अणु० लो० असंखे० । बादरपुढ०-आउ०-तेउ०पज्जत्ता० मणुसअपज्जत्तभंगो । बादरपुढ०-आउ०-तेउ० अपज्जत्ता० घादि०४ उक्क० अणु० सव्वलो० । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० लो० असं० । अणु० सव्वलो० । आउ० उक्क० अणु०[2] लो० असं० । एवं वाऊणं पि । णवरि यम्हि लोगस्स असंखेज्ज० तम्हि लोगस्स संखेज्ज० । आउ० उक्क० लोग० असं० । बादरवणप्फदिपत्तेय० बादरपुढवि०भंगो । सेसाणं संखेज्ज-असंखेज्ज-जीविगाणं अट्ठण्णं क० उक्क० अणु० लो० असंखे० । एवं उक्कस्सं समत्तं ।

जीवोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। शेष कर्मोंका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। सब सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका तथा आयुके दोनों ही पदोंके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। पृथिवीकायिक, जलकायिक और अग्निकायिक जीवोंमें आठ कर्मोंका भंग ओघके समान है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर अग्निकायिक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान भंग है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त और बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहाँपर लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र कहा है, वहाँ पर लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र कहना चाहिये। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भंग है। शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है।

१ आ० प्रतौ वणप्फदि इति पाठः । २ आ० प्रतौ आउ० अणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०५. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० घादि४-गोद० जह० अणुभागबंधगा केवडि खेत्ते ? लो० असं० । अज० सव्वलो० । वेद०-आउ०-णामा०

विशेषार्थ—वर्तमान निवासकी क्षेत्र संज्ञा है। यहाँ उत्कृष्ट और जघन्य अनुभागवालोंके भेदसे इसके दो भेद किये गये हैं। चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी, पर्याप्त और साकार उपयोगवालेके उत्कृष्ट संक्लेशके होनेपर होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके होता है तथा आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयतके होता है। विचार कर देखनेपर ऐसे जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अतः यहाँ आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है। मूलमें कुछ ऐसी मार्गणाएँ गिनाई हैं जिनमें यह क्षेत्र सम्बन्धी ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है। इसका कारण यह है कि इन सब मार्गणाओंमें सामान्यतः यथासम्भव संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय अवस्था सम्भव है और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव जिन परिणामोंसे इन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, वैसी अवस्थामें क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। एकेन्द्रियोंमें आठों कर्मोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सभी एकेन्द्रिय करते हैं, इसलिए इस अपेक्षासे सब कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धकी अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र कहा है। मात्र आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा कुछ विशेषता है जो इस प्रकार है—एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध यद्यपि बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त ही करते हैं, परन्तु इस योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव हैं और मारणान्तिक समुद्घातके समय इन जीवोंका सर्व लोक क्षेत्र पाया जाता है। अतः चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध की अपेक्षा सब लोक क्षेत्र कहा है। अब रहे चार अघातिकर्म सो उनमेंसे वेदनीय और नामकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध यद्यपि बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त ही करते हैं, परन्तु इन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामोंसे होता है और ऐसे जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण उपलब्ध होता है। अतः इन दोनों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध बादर एकेन्द्रिय जीव करते हुए भी एक तो आयुकर्मका बन्धकाल थोड़ा है, दूसरे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध बहुत ही स्वल्प जीव करते हैं, इसलिए इन जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव ही करते हैं और सर्वविशुद्ध अवस्थामें इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। अतः गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा यह क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्ममें एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा जो विशेषता कही है उसका कारण यह है कि आयुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता और उपपाद पद व मारणान्तिक पदको छोड़कर इन जीवोंका क्षेत्र अधिकसे अधिक लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए इनमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा वह लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इस प्रकार यहाँ जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट क्षेत्रका विचार कर वह घटित करके बतलाया गया है, उसी प्रकार आगे जिन मार्गणाओंमें उस क्षेत्रका निर्देश किया है, उसका विचार कर लेना चाहिए। सब विशेषताएँ बुद्धिगम्य होनेसे यहाँ हमने उनका विचार नहीं किया है।

२०५. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। वेदनीय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० अज० सव्वलो० । एवं ओघभंगो कायजोगि-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि० ४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-किण्णले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-आहार०-अणाहारग त्ति ।

२०६. तिरिक्खेसु घादि०४-वेद०-आउ०-णाम० मूलोघं । गोद० जह० लो० संखें० । अज० सव्वलो० । एवं ओरालि०-ओरालियमि०-णील०-काउ०-असण्णि त्ति ।

२०७. एइंदिएसु घादि०४-गोद० जह० लो० संखें० । अज० सव्वलो० । सेसाणं मूलोघं । एवं बादर-पज्जत्त-अपज्जत्त० । णवरि आउ० ज० अज० लो० संखेंज्ज० । सव्वसुहुमाणं अट्ठण्णं कम्माणं जह० अज० सव्वलो० । पुढवि०-आउ० घादि०४ ओघभंगो । सेसाणं सव्व० दो पदा सव्वलो० । एवं वणप्फदि-णियोद० । बादरपुढ०-आउ० तेसिं अपज्ज० घादि०४ ज० लो० असंखें० । अज० सव्वलो० । आउ० जह० अज० लो० असं० । सेसाणं दो[1] पदा सव्वलो० । तेउ० घादि० ४-गोद० जह० लो० असं० । अज० सव्वलो० । सेसाणं पि दो पदा सव्वलो० । बादरतेउ० तस्सेव अपज्ज०

आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

२०६. तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्म, वेदनीय, आयु और नामकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

२०७. एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। शेष कर्मोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इसी प्रकार बादरएकेन्द्रिय, बादरएकेन्द्रियपर्याप्त और बादर-एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। सब सूक्ष्म जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष कर्मोंके दो पदोंका सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और इनके अपर्याप्त जीवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। आयु कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। शेष कर्मोंके दो पदवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। अग्निकायिक जीवोंमें चार घाति कर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। शेष कर्मोंके दोनों ही पदवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। बादर अग्निकायिक और उनके अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य

---

[1] ता० प्रतौ सेसाणं पि दो इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

आउ० जह० अज० लो० असं०। सेसाणं तं चेव। एवं वाऊणं पि। णवरि जम्हि लोग० असंखेंज्जदि० तम्हि लोग० संखेज्जदि०। सव्वसुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो। सव्ववणप्फदि-णियोदाणं सव्वपुढविभंगो। सेसाणं संखेज्ज-असंखेज्जजीविगाणं अट्ठण्णं क० जह० अज० लो० असं०। णवरि बादरवाउ०पज्जत्ते अट्ठण्णं क० जह० अज० लो० संखे०। एवं खेत्तं समत्तं।

२० फोसणपरूवणा

२०८. फोसणं दुविधं—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे०-आदे०। ओघे०

अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। शेष कर्मोंका वही भङ्ग है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र कहा है, वहाँ पर लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र जानना चाहिये। सब सूक्ष्म जीवोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। सब वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सब पृथिवी-कायिक जीवोंके समान भङ्ग है। शेष संख्यात और असंख्यात जीववाली मार्गणाओंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है।

विशेषार्थ—तीन घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके होता है। मोहनीयका जघन्य अनुभागबन्ध अनिवृत्तिकरण क्षपक जीवके होता है। तथा गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है। इसलिए इन पाँच कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। अब रहे शेष तीन कर्म सो उनके जघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र कहने का कारण यह है कि इन तीन कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध अपनी-अपनी विशेषता के रहने पर अन्यतर जीवोंके हो सकता है। आठों कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ ओघके समान जिन मार्गणाओंमें क्षेत्र सम्भव है, उनके नाम मूलमें गिनाए हैं सो अपनी-अपनी विशेषताको ध्यानमें रखकर उन मार्गणाओंमें ओघके समान क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तिर्यंचोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा क्षेत्र तो ओघके समान ही बन जाता है। मात्र गोत्रकर्ममें जघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा कुछ विशेषता है। बात यह है कि तिर्यंचोंमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव करते हैं और ऐसी अवस्थामें इनका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। अतः तिर्यंचोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है। यहाँ मूलमें औदारिककाययोग आदि अन्य पाँच मार्गणाओंमें क्षेत्रप्ररूपणाको सामान्य तिर्यंचोंके समान जाननेकी सूचना की है सो इसका कारण यह है इनमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र बन जाता है। यहाँ तक हमने कुछ मार्ग-णाओंमें क्षेत्रको घटित करके बतलाया है। आगे मूलमें जिन मार्गणाओंमें क्षेत्र सम्बन्धी विशेषता कही है, उसे उन-उन मार्गणाओंमें स्वामित्वको जानकर घटित कर लेनी चाहिए। विस्तारभयसे यहाँ हमने सबका अलग-अलग विचार नहीं किया है। इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ।

२० स्पर्शनप्ररूपणा

२०८. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घादि०४ उक्क० अणुभागबंधगेहि केवडि खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असं० अट्ठ-तेरह० । अणु० सव्वलो० । चदुण्णं उक्कस्सं खेत्तभंगो । अणुक्कस्सं सव्वलोगे । एवं ओघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-भवसि०-मिच्छा० आहारग त्ति ।

२०६. णेरइएसु घादि०४ उक्क० अणुक्क० छच्चोंद्द० । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० छच्चों० । आउ० खेत्तभंगो । एवं सत्तसु पुढवीसु अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं ।

जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, आठ बटे चौदह राजू और तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार अघाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्यसे चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन तीन प्रकारका बतलाया है। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन वर्तमान कालकी अपेक्षा कहा है। कुछ कम आठबटे चौदह राजू स्पर्शन विहारवत्स्वस्थान आदि की अपेक्षा कहा है और कुछ कम तेरहबटे चौदह राजू स्पर्शन मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कहा है। इन चार कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वलोक है,यह स्पष्ट ही है। चार अघाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहनेका कारण यह है कि इनमें से तीन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामोंमें क्षपकसूक्ष्मसाम्परायिक और आयुकर्मका अप्रमत्तसंयत मनुष्योंके ही होता है और इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं बनता। यदि इनके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो सब मिलाकर वह भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। इन चार कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोक है। यहाँ मूलमें काययोगी आदि अन्य कुछ मार्गणाओंका कथन ओघके समान कहा है सो अपनी-अपनी विशेषताको समझकर इसे घटित कर लेना चाहिए। अभिप्राय इतना है कि ओघसे आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा जो स्पर्शन बतलाया है,वह इन मार्गणाओंमें भी बन जाता है।

२०६. नारकियोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नरकमें वेदनीय नाम और गोत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि जीवके तथा आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध सम्यग्दृष्टि जीवके होता है, इसलिए इनका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि ऐसी अवस्थामें इससे अधिक स्पर्शन सम्भव नहीं है। तथा आयुकर्मका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके जीवोंके हो सकता है,परन्तु ऐसी अवस्थामें न तो मारणान्तिक समुद्घात होता है और न ही उपपादपद होता है। अतः आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष स्पर्शन स्पष्ट ही है। यहाँ एक बातकी ओर संकेत कर देना आवश्यक है कि यहाँ चार घाति आदि कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा स्पर्शनका निर्देश करते समय वर्तमानकालीन स्पर्शनका उल्लेख नहीं किया है सो उसका यही कारण प्रतीत होता है कि इस दृष्टिसे क्षेत्रकी अपेक्षा स्पर्शनमें कोई विशेषता नहीं है,यह जानकर उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१०. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० उक्क० छच्चो०, अणु० सव्वलो० । आउ० खेत्त० । पंचिंदि०तिरिक्ख३ सत्तण्णं क० उक्क० छच्चो०, अणु० लो० असंखे० वा सव्वलोगो वा । आउ० खेत्त० । पंचिंदि०तिरिक्खअपज्ज० घादि०४ उक्क० अणु० लोग० असं० सव्वलोगो वा । वेद०णामा-गोदा० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० लो० असंखे०भागो वा सव्वलोगो वा । आउ० खेत्त० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-पंचिंदि०-तस० अपज्ज०-बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-बादरवणप्फदिपत्ते०पज्जत्ताणं च । बादरवाउ०पज्जत्ता० तं चेव । णवरि जम्हि लो० असं० तम्हि लो० संखे० ।

२१०. तिर्यंचोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन सब लोक है । आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच त्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है, अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक है । आयु कर्मका भंग क्षेत्रके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन कहा है, वहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण स्पर्शन कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें चार घाति कर्मोंकी अपेक्षा नीचे सातवीं पृथिवी तक और वेदनीय, नाम व गोत्र कर्मकी अपेक्षा ऊपर अच्युत कल्प तक उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन सम्भव है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है । इन कर्मोंकी अपेक्षा यही बात पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जाननी चाहिए, क्योंकि सामान्य तिर्यञ्चोंमें इन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी अपेक्षा ही कहा है । पञ्चेन्द्रिय तियञ्चोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत कालीन स्पर्शन मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदकी अपेक्षा सब लोक है।इसलिए इनमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंका वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत कालीन स्पर्शन अपेक्षा विशेषसे सर्वलोक है । यतः इनमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इनमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है । परन्तु वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके समय सम्भव नहीं है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । आयुकर्मका विचार इन सब मार्गणाओंमें क्षेत्रके समान ही है । कारण कि मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदके समय आयुकर्मका बन्ध नहीं होता । मूलमें मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान ही स्पर्शन उपलब्ध होता है, इसलिए इनके कथनको पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान कहा है । मात्र वायुकायिक पर्याप्तकोंमें जो विशेषता है वह मूलमें कही ही है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२११. मणुस०३ सत्तण्णं क० उक्क० खेत्तभंगो। अणुक्क० लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। आउ० खेत्तभंगो। देवेसु' घादि०४ उक्क० अणु० अट्ठ-णवचों०। वेद०-णामा-गो० उक्क० अट्ठचों०। अणु० अट्ठ-णवचों०। आउ० उक्क० अणु० अट्ठचों०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

२१२. एइंदिएसु घादि०४ उक्क० अणुक्क० सव्वलो०। वेद०-णामा० उक्क० लो० संखे०। अणु० सव्वलो०। आउ०-गोद० उक्क० लो० असंखे०। अणु० सव्वलो०। एवं बादरपज्जत्तापज्ज०। णवरि आउ० उक्क० लोग० असं०। अणु० लो० संखेज्ज०। सव्व-

२११. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक है। आयु कर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। देवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश युक्त मिथ्यादृष्टिके और वेदनीय, नाम व गोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। यतः यह स्पर्शन क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है, इसलिए इसे क्षेत्रके समान कहा है। इनमें इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्पर्शन तथा आयुकर्मका दोनों प्रकारका स्पर्शन स्पष्ट ही है। देवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। इन सातों कर्मोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध किसी भी अवस्थामें सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू कहा है। आयुकर्मका उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इसके उक्त दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। यह तो सामान्य देवोंकी अपेक्षा स्पर्शन हुआ। इसी प्रकार सर्वत्र देवोंमें अपने-अपने स्पर्शनका विचार कर वह जिस कर्मकी अपेक्षा जहाँ जो सम्भव हो, ले आना चाहिए।

२१२. एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें

१ आ० प्रतौ सव्वएणं क० उक्क० खेत्तभंगो। देवेसु इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमाणं सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वलो० । आउ० उक्क० लो० असंखें० सव्वलोगो वा । अणु० सव्वलो० ।

२१३. पंचिंदि०-तस०२ घादि०४ उक्क० अट्ठ-तेरह० । अणु० अट्ठ० सव्वलो० । वेद०-णामा-गोदा० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० अट्ठ० सव्वलो० । आउ० उक्क० खेत्त० । अणु० अट्ठचो० । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति ।

२१४. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० घादि०४ उक्क० लो० असंखें० सव्वलो० ।

भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूक्ष्म जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें वेदनीय और नाम कर्मका सर्वविशुद्ध बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं। अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। आयु कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य अवस्थामें और गोत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध पृथिवी, जल और प्रत्येक वनस्पति ये तीनों बादर पर्याप्त सर्व विशुद्धि अवस्थामें करते हैं। यतः इन जीवोंके ऐसी अवस्थामें स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें जिस अवस्थामें सर्वलोक स्पर्शन होता है, उस अवस्थामें आयु कर्मका बन्ध सम्भव नहीं। अतः इनमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२१३. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन पञ्चेन्द्रिय आदि चारों प्रकारके जीवोंमें यद्यपि मरणान्तिक समुद्घातके समय भी चार घाति कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, पर ये जीव जब अपने उत्कृष्ट बन्धके योग्य जीवोंमें ही मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हों, तभी यह सम्भव है। इसलिए इनमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्वलोक न कहकर कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू कहा है। इनमें आयु कर्मका बन्ध मरणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, इसलिए इनमें इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह स्पर्शन सम्भव होनेसे उनके कथनको इन पंचेन्द्रियादि चारों मार्गणाओंके स्पर्शनके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

२१४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें चार घाति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० सव्वलो०। सेसाणं उक्क० अणु० खेत्तभंगो। बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० सत्तण्णं क० पुढविभंगो। आउ० उक्क० अणु० लो० असं०। बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०अपज्ज० घादि०४ उक्क० अणु० सव्वलो०। वेद०-णामा-गोदा० उक्क० लो० असंखें०। अणु० सव्वलो०। आउ० उक्क० अणु० लो० असं०। णवरि वाउ० जम्हि लोग० असंखें० तम्हि लोग० संखें०। वणप्फदि-णियोद० घादि०४ उक्क० अणु० सव्वलो०। सेसाणं उक्क० लोग० असंखें०। अणु० सव्वलो०। बादरवणप्फदि०-बादर-वण०-बादरणियोद-पज्जत्ताअपज्जत्ता० बादरपुढविअपज्जत्तभंगो। बादरवणप्फदिपत्ते० बादरपुढविभंगो। सव्वसुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो।

२१५. ओरालि० घादि०४ उक्क० छच्चोद्द०। अणु० सव्वलो०। सेसाणं खेत्तभंगो। ओरालियमि० अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०।

कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र कहा है, वहाँ पर वायुकायिक जीवोंमें लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र कहना चाहिये। वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवोंके समान भंग है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भंग है। सब सूक्ष्म जीवोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—पहले हम एकेन्द्रियों और उनके अवान्तर भेदोंमें स्पर्शनको घटित करके बतला आये हैं। उसे ध्यानमें लेकर और इन पृथिवीकायिक आदि जीवोंकी अवान्तर विशेषता जानकर यह स्पर्शन ले आना चाहिए।

२१५. औदारिक काययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंका भंग क्षेत्रके समान है। औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१६. वेउव्वि० घादि०४ उक० अणु० अट्ठ-तेरह०। वेद०-णामा-गो० उक० अट्ठ०। अणु० अट्ठ-तेरह०। आउ० उक्क० अणु० अट्ठ०। वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०-असण्णि त्ति खेत्तभंगो।

२१७. कम्मइ० घादि०४ उक० ऍक्कारस०। अणु० सव्वलो०। वेद०-णामा-गोद० उक० छच्चों०। अणु० सव्वलो०। एवं अणाहार०[1]।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त दो गतिके जीवोंके ही हो सकता है और ऐसे जीवोंका उत्कृष्ट स्पर्शन नीचे कुछ कम छह राजूसे अधिक सम्भव नहीं, इसलिए औदारिक काययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२१६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, और असंज्ञी जीवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, पर ऐसी अवस्थामें वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव नहीं है; इसलिए इनमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू कहा है तथा वेदनीय आदि तीन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन एक मात्र कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। यहाँ इन सात कर्मोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सब अवस्थाओंमें सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू कहा है। किन्तु आयुकर्मके बन्धकी स्थिति इससे भिन्न है। मारणान्तिक समुद्घातके समय तो उसका बन्ध सम्भव ही नहीं, इसलिए उसके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। शेष कथन सुगम है।

२१७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगी जीव नीचे कुछ कम छह राजू और ऊपर कुछ कम पाँच राजू स्पर्श करते हुए चार घाति कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, अतः चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजू स्पर्श कहा है। वेदनीय, नाम और

[1] ता० प्रतौ अणाहार०इत्यस्य पाठस्याग्रे पूर्णविरामो नास्ति। अन्यत्रापि एवंविधो व्यत्ययो दृश्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१८. णवुंस० घादि०४ उक्क० छच्चोद्द० । अणु० सव्वलो० । सेसं खेत्त० ।

२१९. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४ उक्क० अणु० अट्ठ० । सेसाणं उक्क० खेत्त० । अणु० अट्ठ० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम० ।

२२०. संजदासंजद० सत्तण्णं क० उक्क० खेत्त० । अणु० छच्चो० । आउ० खेत्तभंगो ।

गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्ध कार्मणकाययोगी जीवोंके होगा, और ऐसे जीव ऊपर कुछ कम छह राजूका स्पर्श करेंगे, अतः इन तीन कर्मोंकी अपेक्षा यहाँ उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है। कार्मणकाययोगमें सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब लोक क्षेत्रका स्पर्श करते हैं,यह स्पष्ट ही है। कार्मणकाययोगके समय जीव अनाहारक होता है, अतः अनाहारकोंमें यह स्पर्शन कार्मणकाययोगके समान प्राप्त होता है, यह स्पष्ट ही है।

२१८. नपुंसकवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंका भंग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक नपुंसकवेदी जीव नीचे कुछ कम छह बटे चौदह राजूका स्पर्श करते हैं, इसलिए इनका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष स्पर्शन सुगम है।

२१९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—असंयतसम्यग्दृष्टियोंका जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है, वह आभिनिबोधिकज्ञानी आदि तीन ज्ञानवालोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी अपेक्षा बन जाता है, अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है। यहाँ सम्यग्दृष्टि आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं,उनमें भी इसी प्रकार स्पर्शन प्राप्त होता है, अतः उनके कथनको आभिनिबोधिक ज्ञानी आदिके समान कहा है।

२२०. संयतासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मका भंग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंमें चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है और वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है। यतः यह स्पर्शन क्षेत्रके समान ही उपलब्ध होता है,अतः उसे क्षेत्रके समान कहा। परन्तु इन सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक संयतासंयतों का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू उपलब्ध होनेमें कोई बाधा नहीं है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२१. किण्ण०-णील०-काउ०-घादि०४ उक्क० छ-चत्तारि-बेचोद्द०। सेसं खेत्त०। तेउ० घादि०४ उक्क अणु० अट्ठ-णव०। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० खेत्त०। अणु० अट्ठ-णव०। आउ० उक्क० खेत्त०। अणु०-अट्ठ०। एवं पम्म-सुक्काणं। णवरि अट्ठछ-चोद्द०।

२२२. अब्भव०-घादि०४ उक्क० अट्ठ-तेरह०। अणु० सव्वलो०। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० अट्ठ०। अथवा लोगस्स असंखे०। अणुक्क० सव्वलो०। आउ० उक्क० खेत्त०। अणु० सव्वलो०।

---

२२१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भंग क्षेत्रके समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पद्म और शुक्ल लेश्यावाले जीवों के जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें क्रमसे कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम छह बटे चौदह राजू स्पर्शन कहना चाहिये।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंमें कृष्ण लेश्यावालोंके नीचे सातवीं पृथिवी तक कुछ कम छह बटे चौदह राजू, नील लेश्यावालोंके नीचे पाँचवीं पृथिवी तक कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कापोत लेश्यावालोंके नीचे तीसरी पृथिवी तक कुछ कम दो बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन सम्भव है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। पीतलेश्यावालोंके अतीत कालकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू कहा है। वह यहाँ चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके सम्भव है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। परन्तु वेदनीय आदि तीन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके और आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके कुछ कम नौ बटे चौदह राजू स्पर्शन सम्भव नहीं है, क्योंकि यह स्पर्शन इस लेश्यामें मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके समय ही सम्भव है, इसलिए यह स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। पद्मलेश्यावाले और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें अतीत कालकी अपेक्षा क्रमसे कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम छह बटे चौदह राजू स्पर्शन होता है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंको छोड़कर और सब जीवोंके यह स्पर्शन सम्भव होनेसे इनमें यह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२२२. अभव्य जीवोंमें चार कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू अथवा लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२३. सासणे घादि०४ उक्क० अणु० अट्ठ-बारह० । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० अट्ठ० । अणु० अट्ठ-बारह० । आउ० उक्क० खेत्त० । अणु० अट्ठ० । सम्मामि० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणुक्क० अट्ठ० ।

२२४. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४-गोद० जह० लो० असं० । अज० सव्वलो० । वेद०-आउ०-णाम० जह० अज० सव्वलो० । एवं ओघभंगो कायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-किण्णले०-भवसि०-मिच्छा०-आहारग त्ति ।

विशेषार्थ—पहले हम पंचेन्द्रियोंमें स्पर्शनका विचार कर आये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहाँ भी सब स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। यहाँ वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन विकल्प रूपसे लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण भी कहा है सो इसका कारण यह है कि स्वामित्वका विचार करते समय इन कर्मोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व दो प्रकारसे कहा है। अतः तदनुसार स्पर्शन भी दो प्रकारसे जानना चाहिए। जब चारों गतिके सर्वविशुद्ध संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंको उत्कृष्ट स्वामित्व दिया जाता है, तब कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्शन प्राप्त होता है और जब द्रव्यसंयत मनुष्यको उत्कृष्ट स्वामित्व दिया जाता है, तब लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्वामित्व प्राप्त है। शेष कथन सुगम है।

२२३. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टियोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू स्पर्शन कहा है। इनमेंसे कुछ कम बारह बटे चौदह राजू स्पर्शन वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके तथा आयुकर्मके बन्धक जीवोंके सम्भव नहीं है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातके समय यह बन्ध नहीं होता। अतः यहाँ इस अपेक्षासे कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्शन और शेष अपेक्षासे कुछ कम आठ बटे चौदह राजू तथा कुछ कम बारह बटे चौदह राजू स्पर्शन कहा है। मात्र आयु कर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान ही जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें न तो मारणान्तिक समुद्घात होता है और न ही आयुबन्ध होता है, अतः यहाँ सातों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके कुछ कम आठ बटे चौदह राजू एकमात्र यही स्पर्शन कहा है।

२२४. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी कृष्णलेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२५. णिरएसु घादि०४-गोद० जह० खेत्त० । अज० छच्चोद्द० । वेद०-णाम० जह०[1] अज० छ० । आउ० खेत्त० । पढमपुढ० खेत्त० । विदियादि याव छट्ठि त्ति वेद०-णाम ०-गोद० जह० अज० एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-चोद्दस० । घादि०४ जह० खेत्त० । अज० वेदणीयभंगो । आउ० खेत्त० । सत्तमाए णिरयोघं ।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख सातवीं पृथिवीके नारकी जीव करते हैं। यतः इस अपेक्षा से स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है, यह स्पष्ट ही है। वेदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि सभी जीवोंके सम्भव है तथा आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध जघन्य अपर्याप्त निर्वृत्तिसे निर्वृतमान मध्यम परिणामवाले सभी जीवोंके अपने त्रिभागमें सम्भव है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन सब लोक है, अतः इन तीन कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक स्पर्शन कहा है। इन कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक स्पर्शन है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ कहीं हैं, उनमें ओघके समान स्पर्शन घटित होनेसे वह ओघके समान कहा है। मात्र इन मार्गणाओंमें इस स्पर्शनको अपने-अपने स्वामित्वका विचार करके लाना चाहिए। कारण कि ओघके समान स्वामित्वके गुणस्थान इन सब मार्गणाओंमें सम्भव नहीं हैं। इन मार्गणाओंमें स्वामित्वकी अपेक्षा गुणस्थान-भेद रहते हुए भी स्पर्शन ओघके समान प्राप्त होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

२२५. नारकियोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, और नाम कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने क्रमसे कुछ कम एक बटे चौदह राजू, कुछ कम दो बटे चौदह राजू, कुछ कम तीन बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम पाँच बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन वेदनीय कर्मके समान है। आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारकियोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—यहाँ इन बातों पर ध्यान देकर उक्त स्पर्शन प्राप्त करना चाहिए—१. सामान्य नारकियोंमें और सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनमें गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। २. शेष नरकोंमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामीके समान है, इसलिए इन नरकोंमें गोत्रकर्मकी परिगणना वेदनीय और नामकर्मके साथ की है। ३. सर्वत्र चार घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध असंयतसम्यग्दृष्टि सर्वविशुद्ध जीवके होता है, इसलिए सर्वत्र चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है और ४. प्रथमादि छह नरकोंमें गोत्र कर्मका तथा सर्वत्र वेदनीय और नाम कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि जघन्य पर्याप्त निर्वृत्तिसे निर्वृत्तिमान

१ ता० प्रतौ वेउ (द०) इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२६. तिरिक्खेसु घादि०४ जह० छ०। अज० सव्वलो०। गोद० जह० लोग० संखेंज्ज०। अज० सव्वलो०। वेद०-आउ०-णाम० जह० अज० सव्वलो०। पंचिंदि०-तिरिक्ख० ३ घादि० ४ जह० छ०। अज० लो० असं० सव्वलोगो वा। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० लो० असं० सव्वलोगो वा। आउ० खेंत्त०। पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० घादि०४ जह० खेंत्त०। अज० लो० असं० सव्वलो०। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० लो० असं० सव्वलो०। आउ० खेंत्त०। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-पंचिंदि०-तस०अपज्ज०-बादरपुढ०-आउ०-बादरपत्ते०पज्जत्त त्ति।

मध्यम परिणामवालेके होता है, अतः यहाँ इन कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन अपने अपने अतीत स्पर्शनके समान कहा है। यहाँ इन कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका यही स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है।

२२६. तिर्यंचोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्तकोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब-विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ तिर्यञ्च सामान्य आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उन सबमें आयुकर्मके सिवा शेष सात कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है, यह स्पष्ट ही है। क्योंकि इन सब मार्गणाओंमें सब लोक प्रमाण स्पर्शन उपलब्ध होता है, अतः उसके यहाँ उक्त प्रमाण उपलब्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती। मात्र इन कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन अलग-अलग है। यथा—तिर्यञ्चोंमें चार घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध संयतासंयत जीव करते हैं और ये जीव ऊपर १६ वें कल्प तक समुद्घात करते हुए पाये जाते हैं, अतः इनका स्पर्शन कुछ कम छहबटे चौदह राजू कहा है। इनमें गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव करते हैं। यतः बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है, अतः इनमें गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनमें वेदनीय आयु और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध ओघके समान सब लोक बन जाता है, अतः यहाँ इन तीनों कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है। यहाँ आयु कर्मके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन भी इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२७. मणुस०३ घादि०४ जह० खेत्त०। अज० लो० असं० सव्वलो०। वेद०-आउ०-णाम०-गोद० सव्वप०[1] अपज्जत्तभंगो।

२२८. देवाणं घादि० ४ जह० अट्ठ०। अज० अट्ठ-णव०। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० अट्ठ-णव०। आउ० जह० अज० अट्ठ०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

सर्व लोक घटित कर लेना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान ही है, क्योंकि वहाँ यह स्पर्शन पंचेन्द्रिय तिर्यंच-त्रिककी अपेक्षासे ही कहा है। इनमें चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण भी कहा है। सो इसका कारण इनका वर्तमान स्पर्शन मात्र दिखाना ही मुख्य प्रयोजन प्रतीत होता है। इनमें वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले जीवके यथायोग्य होता है। यतः ऐसे जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीतकालीन स्पर्शन सर्व लोक है। अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इन तीनों प्रकारके तिर्यञ्चोंमें आयुकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। अब रहे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव सो इनमें चार घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध जीवके होता है। यतः यह स्पर्शन क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक है, अतः इनमें चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इनमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध मध्यम परिणामोंसे होता है। यतः ऐसे जीवोंका वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक सम्भव है, अतः इनका यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्य अपर्याप्त आदि कुछ मार्गणाओंमें इसी प्रकार स्पर्शनके जाननेकी सूचना की है सो इन मार्गणाओंमें सब स्पर्शन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

२२७. मनुष्यत्रिकमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्वामित्व ओघके समान है, अतः स्वामित्व और इनके स्पर्शनका विचार कर वह यहाँ घटित कर लेना चाहिए जो मूलमें कहा ही है। मात्र वेदनीय आदि चार कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन अपर्याप्तकोंके समान कहा है सो यहाँ अपर्याप्तकोंसे मनुष्य अपर्याप्तकोंका ग्रहण करना चाहिए।

२२८. देवोंमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू क्षेत्र का स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू और कुछ कम नौबटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू और कुछ कम नौबटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम

---

१ आ० प्रतौ सव्वलो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२९. एइंदिएसु घादि० ४-गोद० जह० लो० संखे० । अज० सव्वलो० । सेसाणं ओघं । एवं बादरपज्जत्तापज्ज० । णवरि आउ० जह० अज० लो० संखे० । सव्वसुहुमाणं अट्ठण्णं क० जह० अज० सव्वलो० ।

२३०. पंचिंदि०-तस० २ पंचण्णं जह० खेत्त० । अज० अट्ठ० सव्वलो० । वेद०-णाम० जह० अज० अट्ठ० सव्वलो० । आउ० जह० खेत्त० । अज० अट्ठ० । एवं पंचमण०-पंचवचि०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति ।

आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिये।

विशेषार्थ—देवोंमें चार घाति कर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध अविरतसम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है और इनका परप्रत्ययसे स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण है, अतः इनमें चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता। अतः इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन भी उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२२९. एकेन्द्रियोंमें चार घाति कर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय बादरएकेन्द्रिय पर्याप्त और बादरएकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूक्ष्म जीवोंमें आठ कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके होता है। तथा गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध बादर अग्निकायिक और वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके होता है। वायुकायिक जीवोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः इनका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धके लिए मध्यम परिणाम लगते हैं। अतः बादर एकेन्द्रियोंमें आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३०. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच कर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजु और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकका स्पर्शन किया है। आयु कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जो स्पर्शन कहा है, वह पञ्चेन्द्रिय आदि चारों मार्गणाओंमें सम्भव है, इसलिए यहाँ इसे ओघके समान कहा है। इन चारों मार्गणाओंका अतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक है। अतः यहाँ उक्त पाँचों कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३१. पुढवि०-आउ०-वणप्फदि-णियोद० घादि०४ जह० लोग० असं० । अज० सव्वलो० । वेद०-आउ०-णाम०-गोद० जह० अज० सव्वलो० । बादरपुढ०-आउ० तेसिं चेव अपज्ज० बादरवणप्फदि०—बादरणियोद-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदि०पत्ते० तस्सेव अपज्ज० घादि०४ जह० खेत्तभंगो । अज० सव्वलो० । वेद०-णामा-गोद० जह० अज० सव्वलो० । आउ० जह० अज० लो० असं० । तेऊणं घादि०४—गोद० जह० लो० असं० । अज० सव्वलो० । सेसाणं जह० अज० सव्वलो० । बादरतेउ—बादरतेउ० अपज्ज०[1] तं चेव । णवरि आउ० जह० अज० लो० असं० । बादरतेउ०पज्जत्ता० घादि० ४—गोद० जह० लो० असं० । अज० लो० असं० सव्वलो० । वेद०-णामा० जह०

कहा है, क्योंकि इन जीवोंके अजघन्य अनुभागबन्ध प्रत्येक अवस्थामें सम्भव होनेसे यह स्पर्शन बन जाता है । इन मार्गणाओंमें वेदनीय और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व ओघके समान है तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध सर्वत्र सम्भव है ही, अतः वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन भी कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक कहा है । मात्र आयुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके समय नहीं होता, इस लिए तो इसके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ काम आठ बटे चौदह राजु कहा है । तथा इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है । पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें उसी प्रकार स्पर्शन प्राप्त होता है, इसलिए वह पञ्चेन्द्रिय आदिके समान कहा है ।

२३१. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और इनके अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक व इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर निगोद व इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके अपर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अग्निकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्र कर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादर अग्निकायिक और बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें यही भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग

१ आ० प्रतौ सव्वलो० । बादरतेउअपज्ज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० लो० असं० सव्वलो० । आउ० खेत्त० । एवं वाउ० । णवरि जम्हि लो० असं० तम्हि लो० संखेंज्ज० ।

२३२. ओरालि०-ओरालियमि० ओघं । णवरि गोद० तिरिक्खोघं । वेउव्वि०[1] घादि०४ जह० अट्ठचो०[2] । अज० अट्ठ-तेरह० । गोद० जह० खेत्त० । अज० अट्ठ-तेरह० । वेद०-णाम० जह० अज० अट्ठ-तेरह० । आउ० जह० अज० अट्ठ-चो० । वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंपराइग त्ति खेत्तभंगो ।

प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र कहा है, वहाँ पर लोकका संख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र कहना चाहिये।

२३२. औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ओघके समान स्पर्शन है। इतनी विशेषता है कि गोत्र कर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगमें सात कर्मोंका स्वामित्व ओघके समान होनेसे स्पर्शन भी ओघके समान बन जाता है। मात्र गोत्रकर्मके स्वामित्वमें ओघसे कुछ विशेषता है जिसका उल्लेख मूलमें किया ही है। औदारिकमिश्रकाययोगमें यद्यपि चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वमें कुछ विशेषता है, पर उससे ओघस्पर्शनमें अन्तर नहीं आता। इसलिए यहाँ भी आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उसी प्रकार कहा है। वैक्रियिककाययोगमें सम्यग्दृष्टि सर्वविशुद्ध देव और नारकी चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध करता है और वैक्रियिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है, अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा। इनके तथा अन्य तीन कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू है, यह स्पष्ट ही है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख सातवीं पृथिवीका सर्वविशुद्ध नारकी करता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है और इनका क्षेत्र भी इतना ही है, अतः यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। वेदनीय और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे

१. आ० प्रतौ ओघं वेउव्वि० इति पाठः। २. आ० प्रतौ जह० अज० अट्ठचो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३३. कम्मइ० घादि०४–गोद० जह० छचों० । अज० सव्वलो० । सेसाणं ओघं । एवं अणाहारग त्ति ।

२३४. इत्थि०-पुरिस० घादि०४ जह० खेत्तभंगो । अज० अट्ठ० सव्वलो० । वेद०-णाम०-गोद० जह० अज० अट्ठचों० सव्वलो० । आउ० जह० खेत्त० । अज० अट्ठ० । विभंग० पंचिंदियभंगो ।

२३५. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४ जह० खेत्तभंगो । अज० अट्ठचों० । सेसाणं जह० अज० अट्ठ० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम० ।

चौदह राजू प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती। आयुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। यहाँ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनका क्षेत्र भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और स्पर्शन भी उतना ही है। अतः इनमें यथासम्भव कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

२३३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध चार गतिके असंयत सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं और गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि नारकी करते हैं। यतः इन दोनोंका उपपाद पदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक और शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। कार्मणकाययोगके कालमें जीव अनाहारक ही होते हैं, अतः इनका कथन कार्मणकाययोगियोंके समान कहा है।

२३४. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। विभंगज्ञानी जीवोंमें पंचेन्द्रियोंके समान स्पर्शन है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक कहा है। यतः यहाँ यह स्पर्शन आयुके सिवा सभी कर्मोंके अजघन्य अनुभागबन्धके समय तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धके समय सम्भव है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव न होनेसे वह कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३५. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३६. संजदासंजदे घादि०४-गोद० जह० खेंत्तभं०। अज० छच्चों०। सेसाणं जह० अज० छ०। आउ० खेत्त०।

२३७. णील०-काउ० घादि०४ जह० खेत्त०। अज० सव्वलो०। सेसं खेत्त-भंगो। तेऊए धादि०४ जह० खेत्त०। अज० अट्ठ-णवचों०। वेद०-णामा०-गोद० जह० अज० अट्ठ-णवचों०। आउ० जह० अज० अट्ठचों०। एवं पम्माए वि। णवरि अट्ठ०। सुक्काए घादि०४ जह० खेंत्तभंगो। अज०छच्चों०। सेसाणं जह० अज० छच्चों०।

२३८. अब्भवसि० घादि०४ जह० अट्ठ० अथवा लोग० असं०। अज०

जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन तीन ज्ञानोंमें अतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है, अतः चार घातिकर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका और शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम ही है।

२३६. संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भंग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—संयतासंयत जीवोंका अतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है, अतः इनमें चार घातिकर्म और गोत्रके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका तथा वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका और आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है।

२३७. नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंका भंग क्षेत्रके समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंमें भी जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्शन कहना चाहिये। शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—किस लेश्यावाले जीवका क्या स्पर्शन है और स्वामित्व क्या है, इसका विचार कर यहाँ स्पर्शन ले आना चाहिए। विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ हमने अलग-अलग विचार नहीं किया।

२३८. अभव्य जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वलो० । गोद० जह० छच्चो०[1] । अज० सव्वलो० । वेद०-णामा० जह० अज० केवडि खेत्तं फोसिदं ? सव्वलो० । आउ० जह० अज० खेत्तभंगो ।

२३९. सासणे घादि०४ जह० अट्ठ० । अज० अट्ठ-बारह० । वेद०-णाम० जह० अज० अट्ठ-बारह० । गोद० जह० खेत्त० । अज० अट्ठ-बारह० । आउ० जह० अज० अट्ठ० । सम्मामि०[2] सत्तण्णं क० जह० अज० अट्ठचोॅद्दस० । एवं फोसणं समत्तं ।

कालपरूवणा

२४०. कालं दुविधं—जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे०

बटे चौदह राजू अथवा लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—अभव्योंमें द्रव्यसंयत मनुष्योंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन वह भी कहा है। शेष कथन सुगम है ।

२३९. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वेदनीय और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध चार गतिके जीव करते हैं और ऐसी अवस्थामें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू उपलब्ध होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है । इनमें गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीके सर्वविशुद्ध नारकी करते हैं और इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और इनका क्षेत्र भी इतना ही है,अतः यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । शेष कथन सुगम है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सातों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन इनके स्वामित्वको देखते हुए कुछ कम आठ बटे चौदह राजू बन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है ।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ ।

कालप्ररूपणा

२४०. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा

१ ता० प्रतौ गोद० छच्चो० इति पाठः । २ आ० प्रतौ अट्ठबारह० । सम्मामि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलियाए असंखे० । अणुक्क० सव्वद्धा । वेद०-आउ०-णामा०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम० । अणु० सव्वद्धा । एवं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि ४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

२४१. णिरएसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे० । अणुक्क० सव्वद्धा । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असं० । एवं छसु पुढवीसु पंचिंदि०तिरि०-मणुस-पंचिंदि०-तस० अपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-बादरपुढवि०-आउ०पज्ज०-बादरवण०पत्ते०पज्ज०-वेउव्वि०-वेउव्वियमि० । णवरि मणुसअप०-वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० [अणुक्क०] जह० एग०,

---

निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है । ऐसे संक्लेश परिणाम एक समय होकर दूसरे समय नहीं भी होते, और होते रहते हैं तो आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर होते रहते हैं । यही कारण है कि चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणीमें होता है । और आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयत जीवके होता है । एक तो क्षपकश्रेणीके जीव निरन्तर नहीं होते, दूसरे यदि होते हैं, तो वे कमसे कम एक समय तक क्षपकश्रेणि पर आरोहण करते हैं या संख्यात समय तक निरन्तर आरोहण करते हैं । अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आयुकर्मके बन्ध योग्य-परिणामोंकी यही विशेषता है । यही कारण है कि ओघसे इन कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा है । इन कर्मोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध नाना जीवोंके सर्वदा होता रहता है, इसलिए इसका काल सर्वदा कहा है । यहाँ जो अन्य मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह ओघ-प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनका कथन ओघके समान किया है ।

२४१. नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यात भागप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल सर्वदा है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार छह पृथिवियोंमें तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्त और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० पलिदो० असंखे० । सत्तमाए सत्तण्णं क० [उक्क०] जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे० । अणु० सव्वद्धा । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असं० । अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असं० । एवं बादरतेउ०-वाउ०पज्जत्ता० । पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-पत्तेगाणं सत्तण्णं कम्माणं[1] तिरिक्खोघं । आउ० ओघं । णवरि तेउ०-वाउ० आउ० तिरिक्खोघं ।

२४२. तिरिक्खेसु अट्ठण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे० । अणु० सव्वद्धा । एवं कम्मइ०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-असण्णि-अणाहारग त्ति । सव्वपंचिंदि०तिरि० सव्वपदा सत्तमपुढविभंगो ।

है । सातवीं पृथिवीमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल सर्वदा है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके सात कर्मोंका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है । आयुकर्मका भंग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें आयुकर्मका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें चार घातिकर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान घटित कर लेना चाहिए । तथा यहाँ वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म बन्धकालमें चार घातिकर्मोंके बन्धकालसे कोई विशेषता न होनेसे यह भी इसी प्रकार जानना चाहिए । अब रहा आयुकर्म सो इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण इसलिए कहा है, क्योंकि एक नारकीके बाद दूसरे नारकीके यदि निरन्तर आयुकर्मका बन्ध होता रहे, तो उस सब कालका योग पल्यका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण ही होता है । प्रथमादि छह पृथिवियोंमें यह व्यवस्था अविकल बन जाती है, इसलिए उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा है । यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । मात्र उनमेंसे मनुष्य अपर्याप्त और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । कारण यह है कि ये सान्तर मार्गणाएँ हैं, इनके निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इसलिए इनमें सदा कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल भी पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । सातवीं पृथिवीमें और सब काल तो सामान्य नारकियोंके समान ही है । मात्र आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि यहाँ आयुकर्मका बन्ध मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है और ऐसे जीव आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाले एकके बाद दूसरे असंख्यात हो सकते हैं, अतः यहाँ आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है ।

२४२. तिर्यंचोंमें आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल सर्वदा है । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य,

1 ता० आ० प्रत्योः सत्तण्णं कम्माणं इति स्थाने ओघपदाणं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४३. मणुस० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेंज्ज० । अणु० सव्वद्धा । आउ० णिरयोघं । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जस० । अणु० सव्वद्धा । आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं सव्वट्ठ०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार० । देव० णिरयभंगो याव सहस्सार त्ति । आणद[1] याव अवराजिदा त्ति णिरयोघं । णवरि आउ० सव्वट्ठभंगो ।

२४४. एइंदिएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० सव्वद्धा । आउ० ओघं । एवं

असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । सब पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें सब पदोंका भंग सातवीं पृथिवीके समान है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंका प्रमाण अनन्त है, इसलिए इनमें अन्य सात कर्मोंके समान आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव निरन्तर सम्भव हैं । यही कारण है कि इनमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका सर्वकाल कहा है । यहाँ कार्मणकाययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनके कथनको सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है । परन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकका प्रमाण असंख्यात है और इनमें आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं, अतः इनके कथनको सातवीं पृथिवीके समान कहा है । शेष सुगम है ।

२४३. सामान्य मनुष्योंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । आयुकर्मका भंग सामान्य नारकियोंके समान है । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । आयुकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापना संयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये । सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें नारकियोंके समान भंग है । आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें नारकियोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि आयुकर्मका भंग सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें चार घाति कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि पर्याप्त मनुष्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे करते हैं और आयुके सिवा शेष तीन कर्मोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है । यतः ये जीव संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते, अतः इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है, यह स्पष्ट ही है । यतः मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं, अतः इनमें उक्त सातों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल सर्वदा कहा है । आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल जिस प्रकार नारकियोंमें घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए । आगे भी अन्य मार्गणाओंमें जो काल कहा है, वह उन मार्गणाओंकी स्वामित्व सम्बन्धी विशेषताको जान कर ले आना चाहिए । पुनः-पुनः उन्हीं युक्तियोंके आधारसे स्पष्टीकरण करनेसे पुनरुक्ति दोष आता है, इसलिए हमने प्रत्येक मार्गणामें कालका अलग-अलग स्पष्टीकरण नहीं किया ।

२४४. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल

[1] ता० प्रतौ अणाद (आणद) इति पाठः । ता० प्रतौ अन्यत्रापि एवमेव पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वबादर-सुहुम०-सव्ववणप्फ०-सव्ववणप्फदि-णियोद० ।

२४५. पंचिंदि०-तस०२ सत्तण्णं क० ओघं । आउ० णिरयोघं । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-[संजदासंजद]चक्खुदं०-ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०-सण्णि त्ति ।

२४६. आहार०-आहारमिस्स० आउ० मणुसि०भंगो । सेसाणं सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क संखेंज्जसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं अवगदवे० सत्तण्णं क० सुहुमसंप० छण्णं क० ।

२४७. मदि०-सुद० सत्तण्णं क० ओघं । आउ० तिरिक्खोघं । एवं विभंग०-असंज०-मिच्छादि० । णवरि विभंगे० आउ० पंचिं०तिरि०भंगो ।

२४८. तेउ०-पम्मा० ओधिभंगो । सुक्काए सत्तण्णं क० ओधिभंगो । आउ० मणुसि०भंगो । एवं खइग० ।

२४९. उवसम० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखेंज्जदि० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखेंज्ज० । वेद०-णाम०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असं० । सासणे

सर्वदा है । आयुकर्मका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार सब बादर, सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, सब वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये ।

२४५. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सात कर्मोंका भंग ओघके समान है । आयुकर्मका भंग सामान्य नारकियोंके समान है । इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

२४६. आहारक काययोगी, और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुकर्मका भंग मनुष्यिनियोंके समान है । शेष सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें छह कर्मोंका काल जानना चाहिये ।

२४७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग ओघके समान है । आयुकर्मका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है । इसी प्रकार विभंगज्ञानी, असंयत और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि विभंगज्ञानमें आयुकर्मका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है ।

२४८. पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भंग है । शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । आयुकर्मका भंग मनुष्यिनियोंके समान है । इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

२४९. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखेंज०। आउ० णिरयोघं। सम्मामि० सत्तण्णं क० उवसमघादीणं भंगो।

एवं उक्कस्सकालं समत्तं[1]।

२५०. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० संखेंज०। अज० सव्वद्धा। वेद०-आउ०-णाम० जह० अज० सव्वद्धा। गोद० जह० जह० एग०[2], उक्क० आवलि० असं०। अज० सव्वद्धा। एवं ओघभंगो कायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-आहारग त्ति।

अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। आयुकर्मका भंग सामान्य नारकियोंके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भंग उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके चार घातिकर्मोंके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

२५०. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। वेदनीय, आयु और नाम कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—चार घातिकर्मोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है। यह हो सकता है कि यह बन्ध एक समय तक ही हो और क्रमसे यदि एकके बाद दूसरा जीव यह जघन्य बन्ध करे, तो संख्यात समय तक भी यह बन्ध हो सकता है, इसलिए यहाँ इन कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। अजघन्य अनुभागबन्ध सर्वदा होता है, यह स्पष्ट ही है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वको देखनेसे विदित होता है कि इनका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा सम्भव है, इसलिए इन तीन कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल सर्वदा कहा है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख सातवें नरकके नारकीके होता है। यदि एक या नाना जीव एक साथ सम्यक्त्वके अभिमुख हुए, तो एक समयके लिए जघन्य अनुभागबन्ध होगा और क्रमसे अनेक जीव निरन्तर सम्यक्त्वके अभिमुख हुए तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक जघन्य अनुभागबन्ध होगा। यही कारण है कि यहाँ गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अजघन्य अनुभागबन्धका

१ ता० प्रतौ एवं उक्कस्सकालं समत्तं इति पाठो नास्ति। २. ता० प्रतौ गोद० जह० एग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५१. णिरएसु सत्तण्णं क० उक्कस्सभंगो। आउ० ज० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अज० ज० एग०, उक्क० पलिदो० असं०। एवं सव्वणिरय०—सव्वपंचिंदि०तिरि०—मणुस०अपज्ज० देवा याव सहस्सार त्ति सव्वविगलिंदिय—बादर-पुढवि०—आउ०पज्जत्ता—बादरवणप्फदिपत्ते०पज्ज०—वेउव्विय०—वेउव्वियमि०—उवसम०-सासण०—सम्मामि०। णवरि मणुसअपज्ज०—वेउव्वियमि०—सासण०—सम्मामि० अज० पगदिबंधकालो[1] कादव्वो। णवरि सम्मामि० पंचण्णं कम्माणं अज० ज० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो।

काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें काल सम्बन्धी यह ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है। मात्र इन मार्गणाओंमें यह काल अपने-अपने स्वामित्वको ध्यानमें रखकर ले आना चाहिए।

२५१. नारकियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। आयुकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, सहस्रार कल्प तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल प्रकृति बन्धके कालके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच कर्मोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

विशेषार्थ—नरकमें आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है। अब यदि कुछ नारकियोंने आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध एक समय किया और दूसरे समयमें दूसरे नारकी जघन्य अनुभागबन्ध करने लगे, तो इस प्रकार निरन्तर आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक ही होगा। यही कारण है कि यहाँ आयुकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध एक समयके लिए होकर दूसरे समयमें जघन्य अनुभागबन्ध यदि हो, तो आयुकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है और यदि कुछ जीवोंने आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक किया। इसके बाद अन्य जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक आयुकर्मका अजघन्य अनुभागबन्ध करते रहे। इस प्रकार यदि निरन्तर आयुकर्मका बन्ध हो, तो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक वह सम्भव है। यही कारण है कि यहाँ आयु कर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें काल सम्बन्धी यह प्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा है। मात्र सान्तर मार्गणाओंमें जो विशेषता है, वह अलगसे कही है। आगे भी अन्य मार्गणाओंमें अपने-अपने स्वामित्वको ध्यानमें लेकर काल घटित करनेमें सुगमता होगी, इसलिए हम उसका अलगसे ऊहापोह नहीं करेंगे।

१. ता० प्रतौ बंधकाले इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५२. तिरिक्खेसु घादि०४–गोद० जह० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अज० सव्वद्धा। सेसाणं ज० अज० सव्वद्धा। एवं किण्ण०–णील०–काउ०–अब्भव०–असण्णि०–अणाहारग० त्ति। मणुसेसु घादि०४ जह० अज० [ओघं]। सेसाणं णिरयोघं। एवं पंचिंदि०–तस०२–पंचमण०–पंचवचि०–इत्थि०–पुरिस०–विभंग०–चक्खु०–तेउ०–पम्मले०–सण्णि त्ति।

२५३. ओरालि०–ओरालियमि० ओघं। णवरि गोद० तिरिक्खोघं। आभि०–सुद०–ओधि० सत्तण्णं क० इत्थि०भंगो। आउ० उक्कस्सभंगो। एवं ओधिदंस०–सम्मादि०[1]–खइग०–वेदग०। णवरि खइग० आउ० मणुसि०भंगो। सेसाणं संखेज्जरासीणं उक्कस्सभंगो। अण्णेसु पदाणं उक्कस्स–जहण्णएसु अभणिदाणं परिमाणेण कालो साधेदव्वो।

एवं कालो समत्तो[2]।

अंतरपरूवणा

२५४. अंतरं दुविधं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०–ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४-आउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

२५२. तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य-काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। शेष कर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्योंमें चार घातिकर्मोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल ओघके समान है। शेष कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

२५३. औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ओघके समान काल है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग मनुष्यनियोंके समान है। शेष संख्यात संख्यावाली राशियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। अन्य मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और जघन्य काल रूपसे स्वीकृत सब पदोंका काल जो नहीं कहा है, वह परिमाणके अनुसार साध लेना चाहिये।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

२५४. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्म और आयुकर्मके उत्कृष्ट अनु-

१. ता० आ० प्रत्योः सम्मामि० इति पाठः। २ ता० प्रतौ एवं कालो समत्तो इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० णत्थि अंतरं । वेद०-णाम०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० छम्मासं० । अणु० णत्थि अंतरं । एवं मणुस०३-पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोभ०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-सण्णि०-आहारग त्ति । एदेसिं आउ० अणुकस्से० अत्थि अंतरं तेसिं अप्पप्पणो पगदिअंतरं कादव्वं । णवरि मणुसि०-ओधिणा०-मणपज्ज०-ओधिदं० वेद०-णामा०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं० ।

२५५. णिरएसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणु० णत्थि अंतरं । णवरि आउ० अणु० अप्पप्पणो पगदिअंतरं ।

भागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । फिर भी इनके आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तरकाल है, उनका वह अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ।

विशेषार्थ—चार घाति व चार अघाति कर्मोंका एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है । क्षपकश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होनेसे वेदनीय, नाम और गोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है और शेष कर्मोंका यदि उत्कृष्ट अनुभागबन्ध न हो, तो वह असंख्यातलोक प्रमाण काल तक नहीं होता। इसलिए शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है । ओघसे आठों कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह ओघ-प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गणाओंमें अन्तरकाल ओघके समान कहा है । मात्र इनमें बहुत-सी ऐसी मार्गणाएँ हैं, जिनमें आयुकर्मका निरन्तर बन्ध सम्भव नहीं है, अतः उनमें आयुकर्मके प्रकृतिबन्धका जो अन्तर कह आये हैं, वही यहाँ आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर जानना चाहिए । तथा मनुष्यिनी आदि चार मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है, अतएव इन मार्गणाओंमें वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा है ।

२५५. नारकियोंमें आठ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है । इतनी विशेषता है कि आयुके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल अपने-अपने प्रकृतिबंधके अन्तर कालके समान कहना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५६. एवं संखेंज्ज-असंखेंज्ज-अणंतरासीणं पि। [णवरि] इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-तिण्णिकसा० वेद०-णाम०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं० वासं सादिरेयं०। अणु० णत्थि अंतरं। अवगदवे० सुहुमसंप० घादि०४ उक्क० जह० एग०, उक्क० वासपुध०। अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं०। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं०। उवसमसम्मा० घादि०४ उक्क० ओघं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० जह० एग०, उक्क० वासपुध० सव्वेसिं। अणु० जह० एग०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि। एवं णेदव्वं याव अणाहारग त्ति।

एवं उक्कस्संतरं समत्तं[1]।

२५६. इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात और अनन्त राशिवाले जीवोंका भी अन्तर काल जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और तीन कषायवाले जीवोंमें वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीनोंके उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्षपृथक्त्व तथा कुछ अधिक एक वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। तथा अपगतवेदी और सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घातिया कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्ष पृथक्त्व है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल छह मास है। तथा वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिया कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका अन्तर ओघके समान है; वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्षपृथक्त्व है और इन सबके अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल सात रात-दिन है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नारकियोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सदा नहीं होते, अतः उनमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक काल प्रमाण कहा है। सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीव सदा रहते हैं, अतः उनका अन्तर नहीं होता है। आयु कर्मका बंध केवल आयुके अन्तके छह मासमें आठ अपकर्षोंमें होना संभव होनेसे उसके बन्धक जीव नारकियोंमें सदा नहीं रहते, अतः आयुकर्मके अनुत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका अन्तर काल प्रकृति बंध अनुयोगद्वारमें कहे गये प्रकृति बंधके अन्तरकालके समान कहा है। नारकियोंके अन्तर कालके समान ही अन्य सब मार्गणाओंमें भी अन्तर काल जानना चाहिये। किन्तु इसमें तीन विशेषताएँ हैं। प्रथम तीनों वेदी व तीन कषायवाले जीवोंमें वेदनीय नाम और गोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बंधक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण काल न होकर स्त्री वेदी, नपुंसक वेदी, तीन कषायवाले और पुरुषवेदी जीवोंमें वर्षपृथक्त्व और साधिक एक वर्ष है, क्योंकि इनमें क्षपकश्रेणी चढ़नेका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त काल प्रमाण है। दूसरी विशेषता अपगतवेदी व सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घाति कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालकी है। इन दोनों मार्गणाओंमें चार घाति कर्मोंका उत्कृष्ट बन्ध उपशमश्रेणिसे गिरनेवाले जीवके उस मार्गणाके अन्तिम समयमें होता है। इस प्रकारका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण होनेसे इनमें चार घाति कर्मों के

1. ता० प्रतौ एवं उक्कस्संतरं समत्तं इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५७. जह० पगदं। दुवि०[1]-ओघे० आदे०। ओघे० घादि०४ जह० जह० एग०, उक्क० छम्मासं०। अज० णत्थि अंतरं। वेद०-आउ०-णाम० जह० अज० णत्थि अंतरं। गोद० जह० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। अज० णत्थि अंतरं। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

२५८. तिरिक्खेसु घादि०४-गोद० ज० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। अज० णत्थि अंतरं। वेद०-आउ०—णामा० जह० अज० णत्थि अंतरं०। एवं ओरालियमि०-

उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा है। तथा अपगतवेद और सूक्ष्मसाम्परायका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होनेसे इनमें चार घाति कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण होनेसे इसमें वेदनीय, नाम और गोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल सात दिन-रात होनेसे इसमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल सात दिन-रात कहा है। शेष कथन सुगम है।

२५७. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार घातिकर्मोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है। गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होनेसे यहाँ ओघसे चार घाति कर्मोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना कहा है। वेदनीय, आयु और नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ही संभव नहीं है। गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सातवें नरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए नारकीके होता है। फिर भी ऐसी अवस्थामें जघन्य अनुभागबन्ध होना ही चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है। यह यदि अन्तरसे हो तो कम से कम एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और अधिक से अधिक असंख्यात लोक प्रमाण कालके अन्तरसे भी हो सकता है। यही कारण है कि ओघसे गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है, यह स्पष्ट ही है। मूलमें काययोगी आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है।

२५८. तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक

1 ता० प्रतौ जह० दुवि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारग त्ति। सेसाणं संखेंज-असंखेंजरासीणं उक्कस्सभंगो। णवरि किंचि विसेसो अत्थेण साधेदव्वो। सव्वपदा अणंतरासीणं बंधगाणं ओघेण तिरिक्खोघेण च साधेदव्वो।

एवं अंतरं समत्तं।

भावपरूवणा

२५९. भावं दुविधं—जह० उक्कस्सयं च। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं कम्माणं दोण्णं पदाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं। एवं जहण्णगं पि णादव्वं।

एवं भावं समत्तं[1]।

अप्पाबहुअपरूवणा

२६०. अप्पाबहुगं दुविहं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सव्वतिव्वाणुभागं वेद०। णाम०-गोद० दो वि तुल्लाणि

जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। वेदनीय, आयु और नामकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली राशियोंका भंग उत्कृष्टके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें जो कुछ विशेषता है, वह अर्थके अनुसार साध लेनी चाहिये। तथा अनन्त संख्यावाली मार्गणाओंमें बन्धक जीवोंके सब पदोंका भंग ओघ और सामान्य तिर्यञ्चोंके अनुसार साध लेना चाहिये।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणाओंके स्वामित्वका विचार कर अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए। जिस मार्गणामें जो विशेषता है, वह घटित की जा सकती है, इसलिए सबके विषयमें यहाँ अलग-अलग नहीं लिखा है।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ।

भावप्ररूपणा

२५९. भाव दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंके दोनों पदोंके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है? औदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार जघन्य अनुभागबन्धकी अपेक्षा भी जानना चाहिये।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वप्ररूपणा

२६०. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे वेदनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सबसे तीव्र

---

१. ता० प्रतौ एवं भावं समत्तं इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतगुणहीणं । मोह० अणंतगुणहीणं० । णाणा०-दंसणा०-अंतरा० तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणं । आउ० अणंतगुणहीणं । एवं याव अणाहारग त्ति । णवरि सव्वअपज्ज०-सव्वएइंदि०-सव्वविगलिंदि०-सव्वपंचकायाणं च सव्वतिव्वाणुभागं मोह० । वेद० अणंतगुणहीणं । सेसं मूलोघं ।

२६१. जहण्णए पगदं । दुवि०¹-ओघे०आदे० । ओघे० सव्वमंदाणुभागं० मोह० । अंतरा० अणंतगुणब्भहियं । णाणा०-दंसणा० दो वि तु० अणंतगुणब्भ० । आउ० अणंतगुणब्भ० । गोद० अणंतगुणब्भ० । णाम० अणंतगुणब्भ० । वेदणी० अणंतगुणब्भहि० । एवं ओघभंगो पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि कोधादि०४-चक्खु०-अचक्खुदं०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति ।

२६२. णिरएसु सव्वमंदाणुभागं मोह० । णाणा०-दंस०-अंतरा० तिण्णि वि तु० अणंतगुणब्भ० । गोद० अणंतगुणब्भ० । णाम० अणंतगुणब्भ० । वेद० अणंतगुणब्भ० । आउ० अणंतगुणब्भ० । एवं सत्तमाए । पढमाए याव छट्टि त्ति एवं चेव । णवरि णाम०-गोद० दो वि तु० अणंतगु० ।

है । इससे नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध दोनों ही समान होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इससे मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय-कर्मके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तीनों ही समान होकर अनन्तगुणे हीन हैं । इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और सब पाँचों स्थावरकायिक जीवोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सबसे तीव्र है । इससे वेदनीयका अनुभागबन्ध अनन्त-गुणा हीन है । शेष भंग मूलोघके समान है ।

२६१. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयका जघन्य अनुभागबन्ध सबसे मन्द है । इससे अन्तराय कर्मका जघन्य अनुभाग-बन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इससे ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मके जघन्य अनुभागबन्ध दोनों ही समान होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । इनसे आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इससे गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इससे नामकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इससे वेदनीयकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इसी प्रकार ओघके समान पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

२६२. नारकियोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सबसे मन्द है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके जघन्य अनुभागबन्ध तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं । इससे गोत्रकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इससे नामकर्मका जघन्य अनुभाग-बन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इससे वेदनीय कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इससे आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये । पहली पृथिवीसे लेकर छठी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्ध दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं ।

१. ता० प्रतौ जह० दुव० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६३. तिरिक्खेसु ओघं। णवरि णाणा०-दंसणा०-अंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अणंतगु०। सव्वपंचिंदि०तिरि०-मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-तिण्णिकाय-पंचिंदि०-तसअपज्ज० सव्वमंदाणुभागं मोह०। णाणा-दंसणा०-अंतरा० तिण्णि वि तु० अणंतगुणब्भ०। [आउ० अणंतगुण०।] णामा०-गोद० दो वि[1] तु० अणंतगुणब्भ०। वेद० अणंतगु०।

२६४. मणुस०३ ओघं। णवरि णामा-गोदा० दो वि तुल्ला० अणंतगु०। देवाणं याव उवरिमगेवज्जा[2] त्ति पढमपुढविभंगो। अणुदिस याव सव्वट्ठ० त्ति णिरयोघं। एवं [एइंदि०—] तेउ-वाऊणं वि।

२६५. ओरालिय० ओघं। ओरालियमि०-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि० तिरिक्खोघं। वेउव्वियका०-सत्तमपु० भंगो। एवं वेउव्वियमि०। णवरि आउ० णत्थि। आहार०-आहारमि०-परिहार[3]०-संजदासंजद०-वेदग०-सासण०-सम्मामि० सव्वट्ठभंगो। कम्मइ०-अणाहार० तिरिक्खोघं। णवरि आउ० णत्थि।

२६३. तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके जघन्य अनुभागबन्ध तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। सब पञ्चेन्द्रियतिर्यँच, मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पृथ्वी, जल व वनस्पति तीनों स्थावरकाय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध सबसे मन्द है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मके जघन्य अनुभागबन्ध तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे आयु कर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है। इससे नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्ध दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है।

२६४. मनुष्यत्रिकमें ओघके समान अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि नाम और गोत्रकर्मके जघन्य अनुभागबन्ध दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। सामान्य देवोंमें और उपरिमग्रैवेयक तकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान अल्पबहुत्व है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी जानना चाहिये।

२६५. औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान अल्पबहुत्व है। औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कपोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान अल्पबहुत्व है। वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें सातवीं पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान अल्पबहुत्व है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मका बन्ध नहीं है।

१. ता० प्रतौ गोद० उ० दो वि इति पाठः। २. ता० प्रतौ णवके (गेव) ज्जा इति पाठ०। ३. ता० प्रतौ परिहार० ? इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६६. इत्थि०-पुरिस० मणुसि०भंगो। णवुंस०-अवगद०-सुहुमसं० ओघं। आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-उवसम० ओघं। णवरि सव्वुवरि आउ० अणंतगु०। तेउ-पम्मा० देवोघं। सुक्काए मणुसि०भंगो। णवरि आउ० सव्वुवरि भाणिदव्वं।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं चदुवीसमणियोगद्दाराणि समत्ताणि।

२६६. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान अल्पबहुत्व है। नपुंसकवेदी, अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें ओघके समान अल्पबहुत्व है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ओघके समान अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें सबके अन्तमें आयुकर्मका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा अधिक है। पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान अल्पबहुत्व है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मका अल्पबहुत्व सबके अन्तमें कहना चाहिये।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुजगारबंधो

२६७. भुजगारबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—याणि अस्सिं समए अणुभागफद्दगाणं बंधदि अणंतरओसक्काविदविदिक्कंते[1] समए अप्पदरादो बहुदरं बंधदि त्ति एस भुजगारबंधो णाम । अप्पदरबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—याणि अस्सिं समए अणुभागफद्दयाणि बंधदि अणंतर-उस्सक्काविद[2] विदिक्कंते समए बहुदरादो अप्पदरं बंधदि त्ति एस अप्पदरबंधो णाम । अवट्ठिदबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—याणि अस्सिं समए अणुभागफद्दगाणं बंधदि अणंतरओसक्काविदविदिक्कंते समए तत्तियाणि तत्तियाणि चेव बंधदि त्ति एस अवट्ठिदबंधो णाम । अवत्तव्वबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—अबंधादो बंधदि त्ति एसो अवत्तव्वबंधो णाम । एदेण अट्ठपदेण तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तं एवं याव अप्पाबहुगे त्ति १३ ।

समुक्कित्तणाणुगमो

२६८. समुक्कित्तणदाए दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० अट्ठण्णं कम्माणं अत्थि भुज० अप्पद० अवट्ठिद अवत्तव्वबंधगा य । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदि०-तस० २-पंचमण०-पंचवचि०—कायजोगि—ओरालि०-आभि०—सुद०—ओधि०—मणपज्ज०—संजद०—चक्खुदं०-अचक्खुदं०—ओधिदं०-सुक्कले०—भवसि०—सम्मादि०—खइग०—उवसम०—सण्णि-आहारग त्ति ।

भुजगारबन्धप्ररूपणा

२६७. भुजगारबन्धका प्रकरण है। उसके विषयमें यह अर्थपद है—जो इस समयमें अनुभागके स्पर्धक बाँधता है, वह अनन्तर अपकर्षको प्राप्त हुए पिछले समयसे अल्पतरसे बहुतर स्पर्धक बाँधता है, यह भुजगार बन्ध है। अल्पतर बन्धके विषयमें यह अर्थपद है—जो इस समय अनुभागके स्पर्धक बाँधता है, वह अनन्तर उत्कर्षको प्राप्त हुए पिछले समयसे बहुतरसे अल्पतर बाँधता है—यह अल्पतरबन्ध है। अवस्थितबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—जो इस समय अनुभागके स्पर्धक बाँधता है, वह अनन्तर अपकर्षको प्राप्त हुए या उत्कर्षको प्राप्त हुए पिछले समयसे उतने ही, उतने ही स्पर्धक बाँधता है, यह अवस्थितबन्ध है। अवक्तव्यबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—जो पहले नहीं बाँधता था और अब बाँधता है, यह अवक्तव्यबन्ध है। इस अर्थपदके अनुसार तेरह अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना और स्वामित्वसे लेकर अल्पबहुत्व तक १३ ।

समुत्कीर्तनानुगम

२६८. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठों कर्मोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

---

१. ता० प्रतौ विओक्कंते इति पाठः । २. ता० प्रतौ अणंतरं उस्सक्काविदं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६९. णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं अत्थि भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० । आउ० ओघं । एवं सव्वणिरयाणि । वेउव्वियमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहारग त्ति सत्तण्णं कम्माणं अत्थि भुज०-अप्पद०-अवट्ठिद० । अवग० ओघभंगो । अवट्ठि० णत्थि । सुहुमसंप० अत्थि भुज०-अप्पद० । सेसाणं सव्वेसिं णिरयभंगो । णवरि लोभे मोह० ओघं ।

एवं समुकित्तणा समत्ता[1] ।

सामित्ताणुगमो

२७०. सामित्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स । अवत्त० कस्स० ? अण्ण उवसामणादो परिवद-माणस्स मणुसस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमयदेवस्स वा । एवं ओघभंगो पंचिंदि०-तस०२-कायजोगि-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति । एवं मणुस०३-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-मणपज्ज०-संजदा० । णवरि अवत्तव्व० देवो त्ति ण भाणिदव्वं । एदेसिं सव्वेसिं आउग० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० कस्स ? अण्ण० । अवत्त० कस्स० ? अण्णद० पढम-समयआउगबंधमाणगस्स । एवं आउग याव अणाहारग त्ति भाणिदव्वं ।

२६९. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धवाले जीव हैं । आयु-कर्मका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार सब नारकी जीवोंके जानना चाहिए । वैक्रियिकमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्धवाले जीव हैं । अवगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपदवाले जीव नहीं हैं । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें भुजगार और अल्पतर पदवाले जीव हैं । शेष सब मार्गणाओंका भंग नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि लोभ-कषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मका भंग ओघके समान है ।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

स्वामित्वानुगम

२७०. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात-कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है । अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है ? उपशमश्रेणीसे गिरनेवाला अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी या प्रथम समयवर्ती देव उक्त पदका स्वामी है । इसी प्रकार ओघके समान पंचेन्द्रियद्विक त्रसद्विक, काययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, औदारिककाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें अवक्तव्यपदका स्वामी देव होता है, यह नहीं कहना चाहिये । इन सब मार्गणाओंमें आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है । इसके अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है ? प्रथम समयमें आयुकर्मका बन्ध करनेवाला अन्यतर जीव अवक्तव्य पदका स्वामी है । आयुकर्मका भंग इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक कहना चाहिये ।

१. ता० प्रतौ एवं समुकित्तणा समत्ता इति पाठो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७१. णिरएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० कस्स० ? अण्ण० । वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० कस्स० ? अण्ण० । एवं कम्मइ०-सम्मामिच्छा०-अणाहारग त्ति । सेसाणं सव्वेसिं णिरयभंगो । णवरि अवगद० घादि०४ भुज० कस्स० ? अण्ण० उवसमणादो परिवदमाणस्स । एवं अवत्त० । अप्पद० क० ? अण्ण० उवसा० खइग० । अघादीणं भुज० उवरि चढमाण० । अप्प० कस्स० ? ओदरमाण०[1] । एवं अवत्त० । एवं सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं० ।

एवं सामित्तं समत्तं[2] ।

कालाणुगमो

२७२. कालाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सत्तट्ठ सम० । अवत्त० एग० । आउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सत्तसम० । अवत्त० एग० । एवं ओघभंगो एसिं अट्ठण्णं वि अवत्तव्वगा अत्थि ।

२७१. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। शेष सब मार्गणाओंका भंग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके भुजगारपदका स्वामी कौन है ? उपशमश्रेणिसे गिरनेवाला अन्यतर जीव उक्त पदका स्वामी है। इसी प्रकार अवक्तव्य पदका स्वामी कहना चाहिये। अल्पतरपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर उपशामक और क्षपक जीव अल्पतरपदका स्वामी है। अघाति कर्मोंके भुजगारपदका स्वामी ऊपर चढ़नेवाला जीव कहना चाहिये। अल्पतरपदका स्वामी कौन है ? नीचे गिरनेवाला जीव अल्पतर पदका स्वामी है। इसी प्रकार अवक्तव्य पदका स्वामी कहना चाहिए। तथा इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें छह कर्मोंके पदोंका स्वामित्व कहना चाहिए।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

कालानुगम

२७२. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात-आठ समय है। अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इस प्रकार जिन मार्गणाओंमें आठों कर्मोंके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं, उनमें ओघके समान जानना चाहिये। शेष मार्गणाओंमें भी सात कर्मोंके अवक्तव्यपदको छोड़कर ओघके समान जानना

१. आ० प्रतौ कस्स० बादरमा० इति पाठः । २. ता० प्रतौ एवं सामित्तं समत्तं इति पाठो नास्ति । अग्रेऽप्येवंविधो व्यत्ययो दृश्यते बहुलतया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसाणं पि सत्तण्णं क० अवत्तव्वगा वज्ज ओघं। णवरि कम्मइ०-अणाहार० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० बे सम०। अवट्ठि० जह० ए०, उक्क० तिण्णि सम०। अवगद० भुज०-अप्पद० जह एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० एग०। एवं सुहुमसंप० अवत्तव्वं वज्ज।

अंतराणुगमो

२७३. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं० क० भुज०-अप्प० बंधंतरं केव० ? जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल०। आउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं[1] साग० सादिरे०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। [एवं अचक्खु० भवसि०।]

२७४. णिरएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं साग० देसू०। आउ० तिण्णि प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसू०। एवं सव्वणिरएसु अप्पप्पणो ट्ठिदी कादव्वा।

चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। अपगतवेदी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अवक्तव्यपदको छोड़कर काल जानना चाहिये।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

अन्तरानुगम

२७३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर बन्धका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमाण है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए।

२७४. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। आयुकर्मके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें अपनी-अपनी स्थितिका विचारकर अन्तरकाल कहना चाहिये।

---

१. ता० प्रतौ अंतो० तेत्तीसं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७५. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० ओघं० । आउ० अवट्टि० ओघं। सेसाणं पदाणं जह० ओघं, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । पंचिंदियतिरि०३ सत्तण्णं क० अवट्टि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी । आउ० अवट्टि० णाणा०भंगो । सेसं तिरिक्खोघं । पंचिं०तिरि०अप० सत्तण्णं क० भुज० अप्प०-अवट्टि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आउ० तिण्णि पदा० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० उक्क० अंतो० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं सुहुमपज्जत्ताणं च ।

२७६. मणुस०३ सत्तण्णं क० अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुध० । सेसं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । देवाणं णिरयभंगो । णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी कादव्वा ।

२७७. एइंदिएसु सत्तण्णं क० ओघं । आउ० अवट्टि० ओघं० । सेसाणं जह० एग० अंतो०, उक्क० बावीसं वाससह० सादि० । बादरे अट्ठण्णं क० अवट्टि० उक्क० अंगुल० असं[1] । पज्जत्ते संखेंज्जाणि वाससह० । सुहुमे असंखेंज्जा लोगा । विगलिंदिय०२ अट्ठण्णं क० अवट्टिद० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जाणि वाससह० । सेसपदा ओघं । णवरि आउ० उक्क० अप्पप्पणो पगदिअंतरं कादव्वं । पंचकायाणं एइंदियभंगादो साधेदव्वो[2] ।

२७५. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका अन्तर काल ओघके समान है। आयु कर्मके अवस्थित पदका अन्तरकाल ओघके समान है । शेष पदोंका जघन्य अन्तरकाल ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । आयुकर्मके अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरण के समान है । शेष भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आयुकर्मके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, और सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

२७६. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है । शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है । देवोंमें नारकियों के समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिये ।

२७७. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । आयुकर्मके अवस्थित पदका भङ्ग ओघके समान है । शेष पदोंका अर्थात् भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्यका अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है । बादर एकेन्द्रियोंमें आठ कर्मोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें असंख्यात लोक है । विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रियपर्याप्तकोंमें आठ कर्मोंके अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है । शेष पदोंका अन्तर ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि आयुकर्ममें उत्कृष्ट अन्तर अपने अपने प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान कहना चाहिये । पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके भङ्गके अनुसार साध लेना चाहिये ।

---

१ ता० आ० प्रत्योः अंगुल सं० इति पाठः । २. ता० प्रतौ भंगो (गा) दो सावे (धे) दव्वो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७८. पंचिं०-तस०२ सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि०-अवत्त० जह० ओघं, उक्क० कायट्ठिदी०। आउ० ओघं। णवरि अवट्ठि० णाणा०भंगो।

२७९. पंचमण०-पंचवचि० अट्ठण्णं क० अवत्त० णत्थि अंतरं। सेसं जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगि० सत्तण्णं क० ओघं। अवत्त० णत्थि अंतरं। आउ० एइंदिय-भंगो। ओरालि० सत्तण्णं क० मणजोगिभंगो। णवरि अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० बावीसं० सह० देसू०। आउ० तिण्णि प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवाससह० सादि०। ओरालियमि० अपज्जत्तभंगो। वेउव्वि० मणजोगिभंगो। वेउव्वियमि०-आहार० मणजोगिभंगो। आहारमि० ओरालियमिस्स०भंगो। णवरि आउ० अवत्त० णत्थि अंतरं। कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० एय०।

२८०. इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। आउ० अवट्ठि० णाणा०भंगो। भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि० तेत्तीसं० सादि०। णवुंस० अट्ठण्णं क०

---

२७८. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका भंग ओघके समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित पदका भंग ज्ञानावरणके समान है।

२७९. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके अवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है। शेष पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग ओघके समान है। अवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। औदारिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। आयुकर्मके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपर्याप्तकोंके समान भंग है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भंग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भंग है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

२८०. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका भंग ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। आयुकर्मके अवस्थित पदका भंग ज्ञानावरणके समान है। भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य और साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेदी जीवोंमें आठ कर्मोंका भंग ओघके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं । अवगद० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवत्त० णत्थि[1] अंतरं । एवं सुहुमसंप० ।

२८१. कोधादि०४ मणजोगिभंगो । मदि०-सुद०-असंज०-अब्भवसि०-मिच्छा० णवुंसगभंगो । विभंगे सत्तण्णं क० आउ० णिरयभंगो । आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० छावट्ठिसाग० सादि० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसा० सादि० । आउ० अवट्ठि० णाणा०भंगो । सेसपदा ओघं । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग० । णवरि खइग० उक्क० तेत्तीसं० सादि० । वेदगे छावट्ठि० देसू० । मणपज्ज० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं । अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी० देसू० । आउ० तिण्णिप० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू० । एवं संजदा० । एवं चेव सामाइ०-छेदो० । णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि । परिहार० आउ० मणपज्जव०-भंगो । सेसं सामाइ०भंगो । एवं संजदासंजद० । चक्खुदं०-सण्णि० तसपज्जत्तभंगो ।

२८२. किण्ण०-णील०-काउ० सत्तण्णं क० अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरो० सादिरे० । सेसं ओघं । आउ० णिरयभंगो[2] । तेउ० सोधम्मभंगो ।

अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

२८१. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भंग है । मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें नपुंसकवेदी जीवोंके समान भंग है । विभंगज्ञानी जीवोंमें सात कर्म और आयुकर्मका भंग नारकियोंके समान है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका भंग ओघके समान है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है । आयुकर्मके अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है । शेष पदोंका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें कुछ कम छियासठ सागर है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका भंग ओघके समान है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । आयुकर्मके तीनों पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है । इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिये । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें आयुकर्मका भंग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है । शेष कर्मोंका भंग सामायिकसंयत जीवोंके समान है । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए । चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भंग है ।

२८२. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर, सत्तरह सागर और साधिक सात सागर है । शेष

१. ता० प्रतौ अत्थि इति पाठः । २ ता० प्रतौ णिरओभंगो इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पम्म० सहस्सारभंगो। सुक्काए सत्तण्णं क० अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। अवत्त० णत्थि अंतरं। सेसं देवोघं।

२८३. उवसम० सत्तण्णं क० तिण्णिप० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं। सासणे आउ० अवत्त० णत्थि अंतरं। सेसपदा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सम्मामि० सत्तण्णं क० सासण०भंगो।

२८४. असण्णी० सत्तण्णं क० आउ० अवट्ठि० तिरिक्खोघं। आउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादि०। आहारएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद० ओघं। अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अंगुल० असंखे०। आउ० अवट्ठि० णाणा०भंगो। सेसपदा ओघं।

एवं अंतरं समत्तं।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो

२८५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णियमा अत्थि। सिया एदे य अवत्तगे य। सिया एदे य अवत्तगा य। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि० लोभ० मोह० अवत्त० अचक्खु०-

पदोंका भंग ओघके समान है। आयुकर्मका भंग नारकियोंके समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें सौधर्म कल्पके समान भंग है। पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सहस्रारकल्पके समान भंग है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। शेष भंग सामान्य देवोंके समान है।

२८३. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मके अवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है। शेष पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भंग सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है।

२८४. असंज्ञी जीवोंमें सात कर्म और आयुकर्मके अवस्थित पदका भंग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। आहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका भंग ओघके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। आयुकर्मके अवस्थितपदका भंग ज्ञानावरणके समान है। तथा शेष पदोंका भंग ओघके समान है।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम

२८५. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित् इन पदोंके बन्धक जीव हैं और अवक्तव्य पदका बन्धक एक जीव है। कदाचित् इन पदोंके बन्धक जीव हैं और अवक्तव्य पदके बन्धक नाना जीव हैं। इसी प्रकार ओघके समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवसि०-आहारग त्ति। आयु० सव्वपदा णियमा अत्थि। एवं अणंतरासीणं याव अणाहारग त्ति। णिरएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० णियमा अत्थि। सिया एदे य अवट्ठिदे य। सिया एदे य अवट्ठिदा य। आउग० सव्वपदा भयणिज्जा। एवं असंखेंज-संखेंजरासीणं एदेण बीजेण णेदव्वं याव अणाहारग त्ति।

भागाभागाणुगमो

२८६, भागाभागं दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज० दुभागो सादि०। अप्पद० दुभागो देसू०। अवट्ठि० असंखें०भागो। अवत्त० अणंतभागो। आउ० णाणा०भंगो। णवरि अवट्ठि०-अवत्त० असंखेंज्जदिभागो। एवं ओघभंगो काय-जोगि-ओरालि०-कोधादि० ४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति। णिरएसु सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि। सेसं ओघं। एवं णिरयभंगो असंखेंज-अणंतरासीणं। संखेंजरासीणं पि तं चेव। णवरि यम्हि असंखेंज्जदिभागो तम्हि संखेंज्जदिभागो कादव्वो। णवरि सव्व-सम्मादिट्ठीसु गोदं विवरीदं। सेढीए कम्माणं विसेसो जाणिदव्वो।

कायोगी, औदारिककायोगी, लोभ कषायवाले जीवोंमें मोहके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवकी अपेक्षा, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। आयुकर्मके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार अनन्त संख्यावाली मार्गणाओंमें अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीव नियमसे हैं। कदाचित् इन पदवाले जीव हैं और अवस्थित पदवाला एक जीव है। कदाचित् इन पदवाले जीव हैं और नाना जीव अवस्थित पदवाले हैं। आयुकर्मके सब पदवाले जीव भजनीय हैं। इसी प्रकार असंख्यात और संख्यात संख्यावाली राशियोंका इसी बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक भंगविचय जानना चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

२८६. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है--ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके भुजगारपदके बन्धक जीव साधिक द्वितीयभाग प्रमाण हैं। अल्पतर पदके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीयभाग प्रमाण हैं। अवस्थित पदके बन्धक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवक्तव्य पदके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आयुकर्मका भंग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। नारकियोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव नहीं हैं। शेष पदोंका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार नारकियोंके समान असंख्यात और अनन्त राशिवाली मार्गणाओंमें जानना चाहिए। संख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें भी वही भंग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है, वहाँ पर संख्यातवें भाग प्रमाण कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सब सम्यग्दृष्टि जीवोंमें गोत्रकर्मको विपरीत क्रमसे कहना चाहिए। तथा श्रेणियोंमें कर्मोंकी जो विशेषता हो, वह जान लेनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिमाणाणुगमो

२८७. परिमाणाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त० केंत्तिया ? संखेंज्जा । भुज०-अप्प०-अवट्ठि० आउ० सव्वपदा केंत्तिया ? अणंता । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं एइंदि०-वणप्फदि-णियोद०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति ।

२८८. णिरएसु सव्वेसिं अट्ठण्णं क० सव्वपदा केंत्तिया[1] ? असंखेंज्जा । एवं सव्वणिरय-मणुसअपज्ज०-देवा याव सहस्सार त्ति । मणुस० सत्तण्णं क० अवत्त० संखेंज्जा । सेसपदा आउ० सव्वपदा असंखेंज्जा । एस भंगो पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०-उवसम०-सण्णि त्ति । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्ठण्णं क० सव्वपदा संखेंज्जा । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० । आणदादि याव उवरिमगेवज्जा[2] त्ति आउ० सव्वपदा संखेंज्जा[3] । सेसाण सव्वपदा असंखेंज्जा । एवं सुक्क०-खइग० । सेसाणं णिरयभंगो ।

परिमाणानुगम

२८७. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदवाले जीव तथा आयुकर्मके सब पदवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यंच, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

२८८. नारकियोंमें सब आठों कर्मोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रारकल्प तकके देवोंके जानना चाहिए । मनुष्योंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं । तथा सब पदोंके और आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं । यह भंग पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें आठों कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिए । आनतसे लेकर उपरिमग्रैवेयकतकके देवोंमें आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं । शेष कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले और क्षायिक सम्यग्दृष्टिजीवोंके जानना चाहिये । शेष मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भंग है । इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

---

१ ता० प्रतौ केवडि० इति पाठः । २ ता० प्रतौ अणा (आण) दादि याव उवरिम के (गे) वे० इति पाठः । ३ ता० प्रतौ असंखेज्जा इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेत्ताणुगमो

२८९. खेत्तं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त०बंधगा केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्ज०भागे । भुज०-अप्प०-अवट्ठि० आउ० सव्वपदा केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं सव्वएइंदिय-सव्वपंचकायाणं बादरवज्जाणं[1] कायजोगि-ओरालि—ओरालियमि०[2]—कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि० ४—मदि०-सुद०-असंज० अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०[3]-आहार०-अणाहारग त्ति । सेसाणं संखेज्ज-असंखेज्ज-अणंतरासीणं सव्वपदा केवडि० ? लो० असं० । णवरि बादर-एइंदि० तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता[4] आउ० सव्वप० लोग० संखेज्जदिभा० । एवं बादर-वाउ० तस्सेव अपज्जत्ता० । सेसबादरकायाणं पज्जत्तअपज्जत्ता लो०[5] असंखेज्जदिभा० । सेसं एइंदियभंगो । बादरवाउपज्जत्ता आउ० लो० संखेज्ज० । [सेसं सव्वलो०]

फोसणाणुगमो

२९०. फोसणाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त० लो० असंखेज्ज० । सेसपदा आउ० सव्वपदा० बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । एवं

क्षेत्रानुगम

२८९. क्षेत्र दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण क्षेत्र है । भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका तथा आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यंच, बादरोंको छोड़कर सब एकेन्द्रिय व सब पाँचों स्थावर कायिक, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। शेष संख्यात, असंख्यात और अनन्त राशिवाली मार्गणाओंमें सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। शेष बादरकाय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है । शेष भंग एकेन्द्रियोंके समान है । बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है । शेष सब लोक क्षेत्र है ।

स्पर्शनानुगम

२९०. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

---

१ ता० आ० प्रत्योः बादरपज्जत्तं इति पाठः । २ ता० प्रतौ काजोगिओरालियमि० इति पाठः । ३ ता० प्रतौ अब्भवअसण्णि० इति पाठः । ४ ता० प्रतौ पज्जत्ताअपज्जत्ता । अपज्जत्ता इति पाठः । ५ ता० आ० प्रत्योः पज्जत्तवज्जाणं लो० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघभंगो तिरिक्खोघं एइंदि०सुहुम०-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-सुहुमपुढवि-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोद० तेसिं सुहुमा० कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि० ४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति ।

२६१. णिरएसु सत्तण्णं क० सव्वपदा छचोंद्दस० । आउ० सव्वपदा खेत्तभंगो । एवं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं । पंचिंदियतिरि०३-पंचि०तिरि०अप०[1] सत्तण्णं क० सव्वपदा लोग० असं० सव्वलोगो । आउ० सव्वपदा खेत्तभंगो । एवं सव्वअपज्जत्ताणं-सव्वविगलिंदि०-बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-बादरवणप्फ०पत्तेय०पज्जत्ताणं च । मणुस०३-एवं चेव भंगो[2] ।

२६२. देवाणं सत्तण्णं क० सव्वप० अट्ठ-णव० । आउ० सव्वपदा अट्ठचोंद्द० । एवं सव्वाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं ।

२६३. बादरएइंदि०-पज्जत्तापज्ज० सत्तण्णं क० सव्वपदा सव्वलोगो । आउ० सव्वपदा लोगस्स संखेंज्जदि० । एवं बादरवाउ०-बादरवाउ०अप० । बादरपुढ०-आउ०-

शेष पदोंके तथा आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यंच, एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय सूक्ष्म, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद और इन दोनोंके सूक्ष्म, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

२६१. नारकियोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इस प्रकार अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिक और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यत्रिकमें इसी प्रकार भंग है ।

२६२. देवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए ।

२६३. बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार बादर वायुकायिक तथा उनके अपर्याप्त

१ ता० प्रतौ णेदव्वं । पंचिंदियतिरि०अप० इति पाठः । २ ता० प्रतौ एवं (सेव) भंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेउ०-बादरवण०पत्ते० तेसिं अप० बादरवणप्फदि-णियोद० पज्जत्तापज्ज० आउ० सव्वपदा लोग० असंखे० । सेसाणं सव्वप० सव्वलो० । बादरवाउ०पज्जत्ता सत्तण्णं क० सव्वप० लो० संखें० सव्वलो० । आउ० बादरएइंदियभंगो ।

२६४. पंचिंदिय-तस०२ सत्तण्णं[1] क० तिण्णिप० अट्ठचो० सव्वलो० । अवत्त० खेत्त० । आउ० सव्वप० अट्ठचो० । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति ।

२६५. वेउव्विय० सत्तण्णं क० सव्वप० अट्ठ-तेरह० । आउ० देवोघं । वेउव्वियमि०-आहार०२-अवगद०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० खेत्तभंगो ।

२६६. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० अवत्त० खेत्तभंगो । सेसपदा आउ० सव्वप० अट्ठचो० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि० । [संजदासंजद० आउ० सव्वपदा खेत्तभंगो । सेसं लोग० असंखे० छचो० ।]

२६७. तेउले० देवोघं । पम्माए सहस्सारभंगो । सुक्काए सत्तण्णं क० अवत्त०

जीवोंके जानना चाहिए। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक और निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भंग बादर एकेन्द्रियोंके समान है।

२६४. पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

२६५. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भंग सामान्य देवोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्षेत्रके समान भंग है।

२६६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष पदोंके तथा आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और सात कर्मोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

२६७. पीतलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है। पद्मलेश्यावाले जीवोंमें

१ ता० प्रतौ तस० २ सत्तण्णं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेत्तभंगो। सेसपदा आउ० सव्वपदा छच्चों०। सासणे सत्तण्णं क० सव्वप० अट्ठ-बारह०। आउ० सव्वप० अट्ठचों०[1]।

कालाणुगमो

२९८. कालाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जस०। सेसपदा आउ० सव्वपदा सव्वद्धा। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं सव्वएइंदि०-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादरअपज्ज० बादरपत्तेय० तस्सेव अप० वणप्फदि-णियोदा तेसिं बादर पज्जत्तापज्जत्त-सुहुम-कायजोगि–ओरालि०-ओरालिमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४–मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०–तिण्णिले०-भवसि०-अब्भ-वसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति।

२९९. णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। आउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखें०। अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। एवं असंखेंज्जरासीणं।

सहस्रारकल्पके समान भंग है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष पदोंके तथा आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

कालानुगम

२९८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। शेष पदोंके और आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यंच, सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इनके बादर तथा अपर्याप्त, बादर प्रत्येक वनस्पति तथा उनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद तथा इनके बादर तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

२९९. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। आयुकर्मके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार असंख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें भी काल जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार संख्यात राशिवाली

1 ता० आ० प्रत्योः अव० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[संखेज्जरासीणं] पि एवं [चेव]। णवरि[1] यम्हि आवलि० असंखें० तम्हि संखेज्जसम०। यम्हि पलिदो० असंखें० तम्हि अंतोमुहु०। णवरि सांतररासीणं[2] सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखेज्ज० अंतोमु०।

अंतराणुगमो

३००. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुध०। सेसाणं णत्थि अंतरं। आउ० सव्वपदा णत्थि अंतरं। एवं कायजोगि-ओरालि०-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग त्ति।

३०१. णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। एवं आउ० अवट्ठि०। आउ० भुज०-अप्प०-अवत्त० सत्तसु वि [पुढवीसु] जस्स यं पगदिअंतरं तस्स तं कादव्वं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। णवरि मणुसअप०—वेउव्वियमि०—आहार०२—सुहुमसंप०—उवसम०—सासण०-सम्मामि० पगदिअंतरं कादव्वं। अवगद०-सुहुमसंप० सेढीए साधेदव्वं।

मार्गणाओंमें भी काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल कहा है, वहाँ पर संख्यात समय काल कहना चाहिये और जहाँ पर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल कहा है, वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल कहना चाहिए। उसमें भी दोनों राशियोंमें इतनी विशेषता है कि सान्तरमार्गणाओंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य-काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

अन्तरानुगम

३००. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है। शेष पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३०१. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। इसी प्रकार आयुकर्मके अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। आयुकर्मके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका तथा सातों ही पृथिवियोंमें जिसका जो प्रकृतिबन्धका अन्तरकाल हो, उसका वह कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहार-कद्विक, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें प्रकृतिबन्धका अन्तरकाल कहना चाहिए। अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें श्रेणीके अनुसार अन्तरकाल साध लेना चाहिए।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

---

१ ता० प्रतौ एवं असंखेज्जरासीणं पि एव (?) णवरि, आ० प्रतौ एवं असंखेज्जरासीणं पि णवरि इति पाठः। २ ता० प्रतौ सांतरा (र) रासीणं, आ० प्रतौ सांतरासीणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावाणुगमो

३०२. भावाणुगमेण दुवि०---ओघे०-आदे० । अट्ठण्णं कम्माणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

अप्पाबहुगाणुगमो

३०३. अप्पाबहुगं दुवि०---ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्तव्वबंधगा। अवट्ठि० अणंतगु० । अप्प० असंखेंज्जगु० । भुज० विसे० । आउ० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० असंखेंज्जगु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । एवं कायजोगि-ओरालि० लोभ० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ।

३०४. णिरएसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । आउ० ओघं । एवं सव्वणिरयाणं ।

३०५. मणुसेसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । आउ० ओघं । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तं चेव । णवरि संखेंज्जं कादव्वं ।

भावानुगम

३०२. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आठों कर्मोंके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारकमार्गणा तक जानना चाहिये ।

अल्पबहुत्वानुगम

३०३. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवस्थित पदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आयु कर्मके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयका बन्ध करनेवाले जीव, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । लोभकषायवाले जीवोंमें केवल एक मोहनीयका ही अवक्तव्यपद होता है,शेष छह कर्मोंका नहीं होता है । इसी कारण इनमें मोहनीयका बंध करनेवाले जीव यह पद दिया है ।

३०४. नारकियोंमें सात कर्मोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आयुकर्मका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिये ।

३०५. मनुष्योंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। आयुकर्मका भंग ओघके समान है । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें यही भंग है । इतनी विशेषता है कि असंख्यातके स्थानमें संख्यात कहना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०६. मणुसोघभंगो पंचिं०-तस० २-पंचमण०[1]-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदंस०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि त्ति। णवरि इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि। सुक्काए खइग० आउ० मणुसि०भंगो।

३०७. अवगद० घादि०४ सव्वत्थोवा अवत्त०। भुज० संखेँज्जगु०। अप्प० संखेँज्जगु०। वेद०-णामा०-गोद० सव्वत्थोवा अवत्त०। अप्पद० संखेँज्जगु०। भुज० संखेँज्जगु०। एवं सुहुमसंप०। णवरि अवत्त० णत्थि।

३०८. मणपज्ज०-संजद० मणुसि०भंगो। सेसाणं संखेँज्जजीविगाणं असंखेँज्जजीविगाणं अणंतजीविगाणं च णेरइगभंगो। णवरि संखेँज्जजीविगाणं संखेँज्जं कादव्वं। सव्वसम्मादिट्ठीसु गोदस्स भुजगारादो अप्पद० विसे०।

एवं भुजगारबंधो समत्तो

३०६. पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें सामान्य मनुष्योंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव नहीं हैं तथा शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है।

३०७. अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक संख्यातगुणे हैं। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायसंयत जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपद नहीं हैं।

३०८. मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंमें मनुष्यनियोंके समान भङ्ग है। शेष संख्यात राशिवाली, असंख्यात राशिवाली और अनन्तराशिवाली मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि संख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें संख्यात कहना चाहिये। तथा सब सम्यग्दृष्टि जीवोंमें गोत्रकर्मके भुजगारपदके बन्धक जीवोंसे अल्पतरपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार भुजगारबन्ध समाप्त हुआ।

१ ता० प्रतौ तस० पंचमण० इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पदणिक्खेवो

३०९. एत्तो पदणिक्खेओ त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि---समुक्कित्तणा सामित्तं अप्पाबहुगे त्ति।

समुक्कित्तणा

३१०. समुक्कित्तणा दुवि०--जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं क० अत्थि उक्क० वड्ढी उक्क० हाणी उक्क० अवट्ठाणं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। णवरि अवगद० सुहुमसंप० सत्तण्णं क० छण्णं क० अत्थि उक्क० वड्ढी उक्क० हाणी। अवट्ठाणं णत्थि।

३११. जह० पगदं। दुवि०---ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं क० अत्थि जह० वड्ढी जह० हाणी जह० अवट्ठाणं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। अवगद०-सुहुम-संप० सत्तण्णं क० छण्णं क० अत्थि जह० वड्ढी जह० हाणी। अवट्ठाणं णत्थि।

सामित्तं

३१२. सामित्तं दुवि०---जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०---ओघे० आदे०। ओघे० णाणा० उक्क० वड्ढी कस्स होदि? यो चदुट्ठाणिययवमज्झस्स उवरि अंतो-

पदनिक्षेप

३०९. इसके आगे पदनिक्षेपका प्रकरण है। उसके ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तना

३१०. समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें क्रमसे सात कर्मोंकी और छह कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट हानि है। अवस्थान नहीं है।

३११. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें क्रमसे सात कर्मोंकी और छह कर्मोंकी जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि है। अवस्थान नहीं है।

स्वामित्व

३१२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोडाकोडिट्ठिदिबंधमाणो अंतोमुहुत्तं अणंतगुणाए वड्ढीए वड्ढिदूण उकस्सयं दाहं गदो तदो उकस्सयं अणुभागं पबंधो तस्स उकस्सिया वड्ढी। उकस्सिया हाणी कस्स० ? यो उकस्सयं अणुभागं बंधमाणो मदो एइंदियो[1] जादो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उकस्सिया हाणी। उकस्सयमवट्ठाणं कस्स० ? यो उकस्सअणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उकस्सयं अवट्ठाणं। एवं घादीणं।

३१३. वेद०[2] उक० वड्ढी कस्स० ? खवग० सुहुमसंप० चरिमे अणुभागबंधे वट्ट० तस्स उक० वड्ढी। उक० हाणी कस्स० ? यो उवसामगो से काले अकसाई होहिदि त्ति मदो देवो जादो तस्स तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक० हाणी। उक० अवट्ठाणं कस्स० ? अप्पमत्तसंज० अखवग० अणुवसामयस्स[3] सव्वविसुद्धस्स अणंतगुणेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स उकस्सगमवट्ठाणं। एवं णामा०-गोद०। आउ० [उक०] वड्ढी कस्स होदि ? तप्पाओग्गजहण्णगादो विसोधीदो[4] तप्पाओग्गं उकस्सगं विसोधिं गदो तदो उकस्सयं अणुभागं पबंधो तस्स उक० वड्ढी। उक० हाणी कस्स० ? यो उकस्सयं अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए

जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ि प्रमाण स्थितिको बांधता हुआ अन्तर्मुहूर्तकाल तक अनन्तगुणी वृद्धिके साथ वृद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुआ और उसके बाद उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध किया वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता हुआ मरा और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता हुआ साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार तीन घातिकर्मोंके विषयमें जानना चाहिये।

३१३. वेदनीयकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो क्षपक सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक तदनन्तर समयमें अकषायी होगा और मरकर देव हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो अप्रमत्तसंयत अक्षपक और अनुपशामक सर्वविशुद्ध जीव अनन्तगुणी वृद्धिको प्राप्त होकर अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार नाम और गोत्रकर्मके विषयमें जानना चाहिये। आयुकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त हुआ और तदनन्तर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करने लगा

१ आ० प्रतौ एइंदिए इति पाठः। २ ता० आ० प्रत्योः तिण्णिवेद० इति पाठः। ३ ता० प्रतौ अणुवसामा (म) यस्स इति पाठः। ४ ता० प्रतौ विसोधि (धी) दो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। एवं ओघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

३१४. णेरइएसु घादि०४ उक्क० वड्ढी ओघो। उक्क० हाणी कस्स०? उक्कस्सयं अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स०? यो जहण्णियादो विसोधीदो उक्कस्सयं विसोधिं गदो तप्पाओग्गउक्कस्सयं अणुभागं बंधमाणो[1] तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स०? यो उक्क० अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। आउ० ओघं। एवं सव्वणेरइगाणं सव्वदेवाणं च।

३१५. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० णिरयभंगो। आउ० उक्क० वड्ढी कस्स०? यो जहण्णियादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभागं पबंधो[2] तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स०? यो तप्पाओग्गउक्कस्सयं अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। एवं पंचिंदि०३। पंचिंदि०तिरि०अप० घादि०४ उक्क० वड्ढी कस्स०? यो जहण्णिगादो संकिलेसादो उक्कस्सयं संकिलेसं गदो तस्स उक्कस्सयं अणु-

---

वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

३१४. नारकियोंमें चार घाति कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो उत्कृष्ट अनुभागका बंध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होने से प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यका बन्ध करने लगा, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त हुआ और उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करने लगा, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करने लगा, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकियों और सब देवोंके जानना चाहिये।

३१५. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो जघन्य संक्लेशासे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? जो जघन्य संक्लेशासे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका

---

१ ता० प्रतौ बंधो इति पाठः। २ ता० प्रतौ अणुभाग पबंधो आ० प्रतौ अणुभागबंधो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागं पबंधो तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्डी कस्स० ? यो जहण्णगादो विसोधीदो० तदो उक्क० अणुभा० पबंधो तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो० तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । आउ० ओघं । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं आणदादि याव सव्वट्ठ त्ति सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदि०-सव्वपंचकायाणं ।

३१६. मणुस०३ घादि०४ णिरयभंगो । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्डी अवट्ठाणं च ओघं । उक्क० हाणी कस्स० ? उवसामगस्स परिवदमाणयस्स दुसमयबंधगस्स तस्स उक्क० हाणी । आउ० ओघं । पंचिंदि०-तस०२-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि० घादि०४ णिरयभंगो । सेसाणं ओघं । पंचमण०-पंचवचि०-ओरालिय० घादि० ४ णिरयभंगो । सेसाणं मणुसि०भंगो ।

३१७. ओरालियमि० घादि०४ उक्क० वड्डी कस्स० ? यो उक्क० अणु० बंधमाणो उक्कस्सयं संकिलेसेण से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो [उक्क०] अणुभा० बंधमाणो दुसमयसरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति [सागार-

---

बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगके क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तक, आनतकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और सब पाँचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

३१६. मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामित्व ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उपशान्तमोहसे गिरनेवाला जो उपशामक द्विसमयबन्धक है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है। पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें चार घाति कर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। शेष कर्मोंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है।

३१७. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट संक्लेशके साथ तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा और साकार उपयोगके क्षय होनेसे प्रति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खएण पडिभग्गो] तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो उक्क० अणु० बंधमाणो से काले सरीरपज्जत्तिं जाहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी उक्क० अवट्ठाणं[1] णाणा०भंगो। आउ० अपज्जत्तभंगो। एवं वेउव्वियमि० । णवरि आउ० णत्थि। वेउव्वियका०-आहार० णिरयभंगो । आहार-[मि०] सव्वट्ठ०भंगो ।

३१८. कम्मइ० घादि०४ उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो जहण्णियादो संकिलेसादो उक्कस्सयं संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० बंधो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० अणुभागं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवट्ठाणं० कस्स ० ? बादरेइंदियस्स उक्कस्सिया हाणी कादूण अवट्ठिदस्स तस्स उक्क० अवट्ठाणं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी हाणी-सम्मादि० । उक्क० अवट्ठाणं बादरेइंदिए हाणी० । [एवं अणाहार० ।]

३१९. इत्थिवे० घादि०४ णिरयभंगो । वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० खवगस्स चरिमे उक्क० अणु० वड्ढी तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी अवट्ठाणं आऊ वि मणुसि०भंगो । एवं णवुंसग० । अवगद० घादि०४ उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० उवसामयस्स चरिमे अणुभा०[2] बंधे वड्ढ० से काले सवेदो होहिदि त्ति

भग्न होता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है, तथा इसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट-हानि और उत्कृष्ट अवस्थानका भंग ज्ञानावरणके समान है। आयु कर्मका भंग अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें सामान्य नारकियोंके समान भंग है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान भंग है।

३१८. कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो बादर एकेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट हानि करके अवस्थित है, वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट हानिका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी हानिवाला बादर एकेन्द्रिय जीव है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३१९. स्त्रीवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक सवेदी अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागकी वृद्धि कर रहा है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट अवस्थान और आयु कर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। अपगतवेदी

१ ता० प्रतौ अवट्ठि० इति पाठः । २ ता० प्रतौ अणु० क०, आ० प्रतौ अणुक० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० खवग० [अणिय० पढमादो अणुभाग-बंधादो] विदिए अणु०बंधे वट्ट० तस्स उक्क० हाणी। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्डी हाणी मणुसि०भंगो। अवट्ठाणं णत्थि। एवं सुहुमसंप०।

३२०. मदि०-सुद० घादि०४ ओघं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स संजमाभिमुहस्स सव्वविसुद्धस्स चरिमे उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० संजमादो परिवदमाणस्स दुसमयमिच्छा० तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? यो तप्पाओग्गउक्कस्सिगादो विसोधीदो पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। आउ० तिरिक्खोघं। एवं मिच्छा०। विभंगे घादि०४ णिरयभंगो। सेसं मदि०भंगो।

३२१. आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४ उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्ण० सागा० जो णियमा उक्कस्ससंकिले० मिच्छत्ताभिमुहस्स चरिमे उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० यो तप्पा० उक्क० अणु० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। सेसं ओघभंगो। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०।

जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर उपशामक जीव अन्तिम अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धमें विद्यमान है और तदनन्तर समयमें सवेदी होगा, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक पहिले अनुभागबंधसे दूसरे अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मकी उत्कृष्टवृद्धि और उत्कृष्ट हानिका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। इनके अवस्थानपद नहीं होता। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

३२०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमके अभिमुख और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर मनुष्य अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिरनेवाला जो अन्यतर मनुष्य द्विसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे मुड़कर तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है, वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। आयुकर्मका भंग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। विभंगज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग सामान्य नारकियोंके समान है। शेष कर्मोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

३२१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो साकार उपयोगवाला और उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त अन्यतर जीव मिथ्यात्वके उन्मुख होकर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। शेष भंग ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि खइगे घादि०४ वड्डी सत्थाणे कादव्वं। मणपज्जवे घादि०४ ओधि०भंगो। णवरि असंजमाभिमुहस्स। सेसं मणुसि०भंगो। एवं संजद-सामाइ०-छेदोवट्ठावणा०। णवरि मिच्छाभिमुहस्स कादव्वं।

३२२. परिहार० घादि०४ उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्ण० सागा० उक्क० संकिले० सामाइ०-छेदो०भिमुहस्स चरिमे उक्क० अणु०बंधे वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० पमत्त० सागा० जो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सव्वविसुद्ध० चरिमे उक्क०अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० यो उक्कस्सिगादो विसोधीदो पडिभग्गो सागारक्खएण तप्पाओग्गजह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। आउ० ओघं।

३२३. संजदासंजदे घादि०४ वड्डी आभिणि०भंगो। उक्क० हाणी कस्स० ? यो तप्पाओग्गउक्क० अणु० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पडिदो [तस्स] उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्ण० सागार-जागा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० चरिमे उक्क० अणु० वट्ट०

घातिकर्मोंकी वृद्धि स्वस्थानमें कहना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह असंयमके अभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए। शेष भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए।

३२२. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो साकार उपयोगवाला उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर जीव सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके अभिमुख होकर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? साकार उपयोगवाला जो अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य अनुभागबन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर जो अप्रमत्तसंयत जीव अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर साकार उपयोगका क्षय होनेसे तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है।

३२३. संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका भंग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर साकार जागृत सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख हुआ जीव अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? अण्ण० यो तप्पाओग्गउक्क० अणु० बंध० सागारक्खएण पडिभग्गो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। आउ० ओघं। असंजद० घादि०४ ओघं। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स सम्मादि० सागार० सव्वविसुद्ध० संजमाभिमुह० उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी अवट्ठाणं च मदि०भंगो। आउ० णवुंसगभंगो।

३२४. किण्ण-णील-काऊ० णिरयभंगो। आउ० ओघभंगो। तेउ०[1] घादि०४ देवभंगो। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सागार० सव्वविसु० उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० अणु० बंधमाणो मदो देवो जादो तस्स उक्क० हाणी अवट्ठाणं च। आउगं च ओघं। एवं पम्माए। सुक्काए घादि०४ आणदभंगो। सेसं ओघभंगो।

३२५. अब्भव० घादि०४ ओघं। वेद०--णामा०--गोद० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो जहण्णादो विसोधीदो उक्कस्सयं विसोधिं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क० अणु० बंधमाणो सागारक्खएण पडि० तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। आउ० मदि०भंगो।

साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न हो, तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। असंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सम्यग्दृष्टि साकार जागृत सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि और अवस्थानका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। आयुकर्मका भंग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है।

३२४. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें नारकियोंके समान भंग है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। पीत लेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग देवोंके समान है। वेदनीय नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अप्रमत्त साकार जागृत और सर्वविशुद्ध जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मरा और देव हो गया, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है, तथा इसीके उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग आनत कल्पके समान है। शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है।

३२५. अभव्य जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है, तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। आयुकर्मका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

---

1 ता० आ० प्रत्योः आउ० पज्जत्तभंगो। उक्क० घादि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२६. वेदगे घादि०४ ओधिभंगो। सेसं तेउ०भंगो। सासणे घादीणं उक्क० आणदभंगो। वेद०-णामा०-गोद० आऊ वि तप्पाओग्गविसुद्धं कादव्वं। सम्मामि० घादि०४ उक्क० वड्ढी मिच्छत्ताभिमु०। हाणी अवट्ठाणं ओधिभंगो। वेद०-णामा०-गोद० उक्क० वड्ढी सम्मत्ताभिमुह०। हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे। असण्णि० पंचि०-तिरि०अपज्जत्तभंगो। आउ० मदि०भंगो।

३२७. जहण्णपदणिक्खेवे[1] सामित्तस्स साधणट्ठं अट्ठपदभूदसमासस्स लक्खणं[2] वत्तइस्सामो। तं जहा—मिच्छादिट्ठिस्स जा अणंतभागफद्दयपरिवड्ढी संजदस्स जा अणंतभागफद्दयपरिवड्ढी मिच्छादिट्ठिस्स जा अणंतभागफद्दयपरिवड्ढी सा अणंतगुणा। एदेण अट्ठपदभूदसमासलक्खणेण[3]—

३२८. जहण्णपदणिक्खेवे सामित्ते पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० णाणा०-दंस०-अंतरा०[4] जह० वड्ढी कस्स०? अण्ण० उवसामयस्स परिवदमाणयस्स दुसमय-सुहुमसंपराइयस्स तस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स०? अण्ण० सुहुमसंपराइयस्स खवगस्स चरिमे अणु० वट्ट० तस्स जह० हाणी। जह० अवट्ठाणं कस्स०? अण्ण० अप्पमत्त० अखवग-अणुवसामयस्स सव्वविसुद्धस्स अणंतभागे वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स तस्स

३२६. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। शेष कर्मोंका भंग पीतलेश्यावाले जीवोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग आनतकल्पके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका तथा आयुकर्मका भी स्वामित्व तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीवके कहना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्व मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए। हानि और अवस्थानका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्व सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके कहना चाहिए। तथा हानि और अवस्थानका स्वामित्व स्वस्थानमें कहना चाहिए। असंज्ञी जीवोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है। आयुकर्मका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

३२७. जघन्य पदनिक्षेपमें स्वामित्वका साधन करनेके लिए अर्थपदभूत समासका लक्षण बतलाते हैं। यथा—मिथ्यादृष्टिके जो अनन्तभाग स्पर्द्धककी वृद्धि होती है, संयतके जो अनन्तभाग स्पर्द्धककी वृद्धि होती है और मिथ्यादृष्टिके जो अनन्तभाग स्पर्द्धककी वृद्धि होती है, वह अनन्तगुणी होती है। इस अर्थपदभूत समास लक्षणके अनुसार—

३२८. जघन्य पदनिक्षेपमें स्वामित्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जो गिरनेवाला अन्यतर उपशामक द्विसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक जीव है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह जघन्यहानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है?

१ ता० प्रतौ जहण्णं पद इति पाठः। २ ता० प्रतौ अट्ठपदभूदसमास तस्स समसलक्खणं इति पाठः। ३ ता० प्रतौ अट्ठपदेणभूद (पदभूदेण) समासलक्खणेण इति पाठः। ४ ता० आ० प्रत्योः णाणा० दंस० अवरा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० अवट्ठाणं । मोह० एसेव भंगो । णवरि अणियट्टिस्स कादव्वं वड्ढि-हाणी । अवट्ठाणं अप्पमत्तस्स । वेद०[1]-णाम० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्णद० सम्मादि० मिच्छादि० परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं । गोद० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए अब्भवसिद्धियपाओग्गादो उक्कस्सियादो विसोधीदो पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो अणंतभागे वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स तस्स जह०[2] वड्ढी । तस्सेव से काले जह० अवट्ठाणं । जह० हाणी कस्स०? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सव्वविसुद्धस्स सम्मत्ताभिमुहस्स तस्स जह० हाणी । आउ० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० जहण्णियाए अपज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मज्झिमपरिणामस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं । एवं ओघभंगो पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधादि०४-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति ।

३२६. णिरएसु घादि० ४-जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० सम्मा० साग० सव्वविसुद्ध० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाणिदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं । आउ० जह०

जो अन्यतर अप्रमत्तसंयत अक्षपक और अनुपशामक सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धि करके अवस्थित है, वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है । मोहनीयकर्मका यही भंग है । इतनी विशेषता है कि इसकी वृद्धि और हानि अनिवृत्तिकरण जीवके कहना चाहिए तथा अवस्थान अप्रमत्तसंयत जीवके कहना चाहिए । वेदनीय और नामकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभाग वृद्धिको प्राप्त होता है, वह वृद्धिका स्वामी है और अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है, वह हानिका स्वामी है तथा इन दोनोंमेंसे कोई एक स्थानपर जघन्य अवस्थान होता है । गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका जीव अभव्यप्रायोग्य उत्कृष्टविशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है और अनन्तभाग बढ़ाकर वृद्धि करता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है और उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें जो अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर सर्वविशुद्धिको प्राप्त हो, सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ है, वह जघन्य हानिका स्वामी है । आयुकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जघन्य अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभाग वृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है । इसीप्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

३२६. नारकियोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि साकार-जागृत सर्वविशुद्ध जीव अनन्त भागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी

---

1 ता० आ० प्रत्योः अप्पमत्त० सवेद० इति पाठः । 2 ता० प्रतौ अणंतभागे पडि······ [भंगो तस्स जह० वड्ढि] तस्सेव आ० अणंतभागे प्रतौ पडि······तस्स जह० वड्ढी । तस्सेव इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वड्ढी कस्स० ? अण्ण० जहण्णियाए पज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मज्झिम-परिणामयस्स अणंतभागेण वड्डिदूण वड्ढी हाणिदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं। वेद०-णामा०-गोद० ओघं। एवं सत्तमाए पुढवीए। सेसाणं पुढवीणं तं चेव। णवरि गोद० भंगो[1] मिच्छादिट्ठिस्स कादव्वं।

३३०. तिरिक्खेसु घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० ? अण्णद० संजदासंजदस्स सागार०सव्वविसुद्धस्स अणंतभागेण वड्डिदूण वड्ढी हाणिदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं। गोद० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० जीव० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागा० सव्वविसु० अणंतभागेण वड्डिदूण वड्ढी हाणिदूण हाणी एक्कदरत्थ-मवट्ठाणं। सेसं ओघं। [एवं] पंचिंदि०तिरि०३। णवरि गोद० पढमपुढविभंगो। पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० ? सण्णिस्स सागार-जा० सव्वविसुद्ध० अणंतभागेण वड्डिदूण वड्ढी हाणिदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं। सेसाणं जोणिणिभंगो। एवं सव्वअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पुढवि०-आउ०-वणप्फदि-णियोद०-सव्वसुहुमाणं ति।

३३१. मणुसेसु ओघं। णवरि गोद० अपज्जत्तभंगो। देवाणं पढमपुढविभंगो।

है। जो अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। आयुकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभाग वृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। शेष पृथिवियोंमें यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भङ्ग मिथ्यादृष्टिके कहना चाहिए।

३३०. तिर्यञ्चोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर संयतासंयत साकार-जागृत सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभाग वृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तिको प्राप्त हुआ साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भंग पहली पृथिवीके समान है। पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंमें चार घाति कर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो संज्ञी साकार जागृत सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भंग योनिनियोंके समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद और सब सूक्ष्म जीवोंके जानना चाहिए।

३३१. मनुष्योंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भंग अपर्याप्तकोंके समान है। देवोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है। इसी प्रकार उपरिम ग्रैवेयकतक जानना

---

[1] ता० आ० प्रत्योः गोद-वेदभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं याव उवरिमगेवज्जा त्ति । अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति देवोघं । णवरि गोद० अण्ण० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं।

३३२. एइंदिएसु घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० बादर० सव्वविसुद्ध० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं । सेसं तिरिक्खोघं । तेउ०-वाउ० घादि०४-गोद० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० बादर० सव्वविसु० अणंतभागेण वड्ढिदूण वड्ढी हाइदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं । सेसं अपज्जत्तभंगो । पत्तेय० पुढविभंगो ।

३३३. ओरालि० गोद० तिरिक्खोघं । सेसं मणुसि०भंगो । ओरालियमि०घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० असंजदस० सागार० सव्वविसु० दुचरिमसमए सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति पडिभग्गो तस्स जह० वड्ढी । तस्सेव से काले जह० अवट्ठाणं । ज० हाणी कस्स० ? तस्सेव सव्वविसु० से काले पज्जत्ती गाहिदि त्ति तस्स ज० हाणी । *गोद० जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० बादरतेउका०-वाउ० जीव० दुचरिमसमए सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति तस्स जह० वड्ढी । तस्सेव से काले जह० अवट्ठाणं । जह० हाणी कस्स० ? तस्सेव से काले पज्जत्ती होहिदि त्ति । सेसमपज्जत्तभंगो ।*

चाहिए । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लिष्टपरिणामवाला जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है । जो अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है ।

३३२. एकेन्द्रियोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर बादर एकेन्द्रिय सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है । शेष कर्मोंका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है । अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें चार घातिकर्म और गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है और वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है । शेष कर्मोंका भंग अपर्याप्तकोंके समान है । प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें पृथिवीकायिक जीवोंके समान भंग है ।

३३३. औदारिककाययोगी जीवोंमें गोत्रकर्मका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है । शेष कर्मोंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्यवृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि साकार जागृत और सर्वविशुद्ध जीव द्विचरम समयमें शरीर पर्याप्तिको ग्रहण करेगा, अतएव प्रतिभग्न होकर जघन्य वृद्धि कर रहा है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । जघन्यहानिका स्वामी कौन है ? वही सर्वविशुद्ध जीव तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा, वह जघन्य हानिका स्वामी है । गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव द्विचरम समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है । उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? वही जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा, वह जघन्य हानिका स्वामी है । शेष कर्म-भंग अपर्याप्तकोंके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३४. वेउव्वियका० णिरयोघं। वेउव्वियमि० घादि०४–वेद०–णाम० ओरालियमिस्सभंगो। गोद० सत्तमाए पुढवीए मिच्छादि० तप्पाओग्गजहण्णिगादो[1] विसोधीदो पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्स जहण्णिया वड्ढी। तस्सेव से काले जह० अवट्ठाणं। जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति। आहार० सव्वट्ठ०भंगो। णवरि पमत्तो त्ति भाणिदव्वं। आहारमि० ओरालियमिस्सभंगो। कम्मइग० घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० अणंतभागेण वड्ढी हाणी अवट्ठा०। एइंदिय० अणंतभागेण वड्ढीए वा हाणीए वा अवट्ठिदस्स। गोद० सत्तमाए० मिच्छा० जह० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं। एइंदि० वेद०-णाम० वड्ढी हाणी ओघं। अवट्ठाणं एइंदियस्स।

३३५. इत्थिवेदे घादि०४ जह० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० दुसमयबंधगस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० खवग० चरिमे अणु०

३३४. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य नारकियोंके समान भंग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्म, वेदनीय और नामकर्मका भंग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध कर रहा है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा, वह जघन्य हानिका स्वामी है। आहारककाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें प्रमत्तसंयत जीवको स्वामी कहना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भंग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव अनन्त भागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है और जो सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है वह जघन्यहानिका स्वामी है, तथा इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। अथवा जो एकेन्द्रिय जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्यवृद्धिका स्वामी है, जो एकेन्द्रिय जीव अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। गोत्रकर्मकी जघन्यवृद्धिका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादृष्टि सातवीं पृथिवीका नारकी अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है, जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। अथवा जो एकेन्द्रिय अनन्तभाग वृद्धिको प्राप्त होता है वह जघन्यवृद्धिका स्वामी है, जो अनन्तभाग हानिको प्राप्त होता है वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। वेदनीय और नामकर्मके जघन्य वृद्धि और हानिका स्वामित्व ओघके समान है। जघन्य अवस्थानका स्वामी एकेन्द्रिय जीव है।

३३५. स्त्रीवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर गिरनेवाला उपशामक द्विसमयका बन्ध करनेवाला है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह जघन्य

1 ता० प्रतौ–जहण्णिगो (ण्णगा) दो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्ढ० तस्स जह० हाणी। अवट्ठाणं अप्पमत्तस्स। सेसं मणुसि०भंगो। एवं पुरिस०। एवं चेव णवुंसग०। णवरि गोद० ओघभंगो। अवगदे घादि०४ ओघं। वेद०-णामा०-गोदा० जह० वड्ढी कस्स०? अण्ण० उवसामय० बिदियसमयअवगदवेदस्स तस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स०? अण्ण० उवसाम० परिवदमा० दुसमय-सुहुमसं० जह० हाणी। एवं सुहुमसंप०।

३३६. मदि०-सुद० घादि०४ जह० वड्ढी कस्स०? अण्ण० मणुस० मणुसिणीए वा संजमादो परिवद०गस्स दुसमयमिच्छा० तस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स०? अण्ण० मणुस० सागार० सव्वविसु० संजमाभिमुह० चरिमे जह० अणु० वट्ट० तस्स जह० हाणी। जह० अवट्ठाणं कस्स०? अण्ण० यो तप्पाओग्गउक्कस्सियादो विसोधीदो पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पदिदो अणंतभागेण वड्ढिदूण अवट्ठिदस्स तस्स जह० अवट्ठाणं। सेसं णिरयोघं। आउ० ओघं। एवं विभंगे [अभवसि०] मिच्छा०।

३३७. आभि०-सुद०-ओधि० [ओघं। णवरि गोद० जह०] वड्ढी कस्स०? अण्ण० यो तप्पा०उक्कस्सगादो संकिलेसादो पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पदिदो तस्स जह० वड्ढी। तस्सेव से काले जह० अवट्ठाणं। जह० हाणी कस्स०? अण्ण० चदुग० असंजद०

हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी अप्रमत्तसंयत जीव है। शेष कर्मोंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी जीवोंमें गोत्रकर्मका भंग ओघके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भंग ओघके समान है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर उपशामक द्वितीय समयवर्ती अपगतवेदी जीव है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर गिरनेवाला उपशामक द्विसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीव है, वह जघन्य हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

३३६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें चार घाति कर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनी संयमसे गिरकर द्विसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? जो साकार जागृत सर्वविशुद्ध संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनी जीव अन्तिम जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित है, वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है? जो अन्यतर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है और अनन्तभाग वृद्धि करके अवस्थित है, वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। शेष कर्मोंका भंग सामान्य नारकियोंके समान है। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार विभंगज्ञानी, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

३३७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागा० उक्क० संकिले० मिच्छत्ताभिमुह० चरिमे अणु० वट्ट० तस्स जह० हाणी। आउ० देवभंगो। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०। णवरि खइगे गोद० हाणी सत्थाणे उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स कादव्वं। मणपज्ज० ओघं। णवरि गोद० वड्डी अवट्ठाणं ओधिभंगो। जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० उक्क० संकिले० असंजमाभिमुह० चरिमे अणु० वट्ट० तस्स जह० हाणी। आउ० ओधिभंगो। एवं[1] संजद-सामाइ०-छेदो०। णवरि गोद० ओधिभंगो।

३३८. परिहार० घादि०४ जह० वड्डी कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सव्व-विसुद्धस्स अणंतभागेण वड्डिदूण वड्डी हाइदूण हाणी एक्कदरत्थमवट्ठाणं। अथवा हाणी० ? दंसणमोहणीयस्स खवगस्स से काले कदकरणिज्जो होहिदि त्ति तस्स जह० हाणी। सेसं मणपज्जवभंगो। णवरि गोद० जह० हाणी० ? सामाइय-च्छेदोवट्ठावणाभिमुह० तस्स जह० हाणी। संजदासंजदे घादि०४ जह० वड्डी कस्स० ? अण्ण० यो तप्पाओग्गउक्क०दो विसोधीदो पडिभग्गो तप्पा० जह० पदिदो तस्स जह० वड्डी। तस्सेव से काले जह० अवट्ठाणं। जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० संजमाभिमुह० सव्वविसु०। सेसं ओधिभंगो।

जो अन्यतर चार गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव है, वह जघन्य हानिका स्वामी है। आयुकर्मका भङ्ग देवोंके समान है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें गोत्रकर्मकी जघन्य हानिका स्वामित्व स्वस्थानमें उत्कृष्ट संक्लिष्ट जीवके करना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मकी वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। गोत्रकर्मकी जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव उत्कृष्ट संक्लेशके साथ असंयमके अभिमुख और अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह जघन्य हानिका स्वामी है। आयुकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें गोत्रकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

३३८. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अप्रमत्तसंयत सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभागहानिको प्राप्त होता है,वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। अथवा जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो दर्शनमोहनीयका क्षपक जीव तदनन्तर समयमें कृतकृत्य होगा,वह जघन्य हानिका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मकी जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो जीव सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके अभिमुख है, वह जघन्य हानिका स्वामी है। संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। उसीके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर संयमके अभिमुख सर्वविशुद्ध जीव है,वह जघन्य हानिका स्वामी है। शेष कर्मोंका

1 ता० आ० प्रत्योः ओधिभंगो। सेसं मणुसिभंगो। एवं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंजदे घादि०४ जह० वड्डी अवट्ठाणं देवभंगो। जह० हाणी कस्स० ? अण्ण० असंजदसं० संजमाभिमुह० सव्वविसु० जह० हाणी। सेसाणं मदि०भंगो।

३३९. किण्ण० णिरयभंगो। णील-काऊणं गोद० तिरिक्खोघं। सेसं णिरयभंगो। तेउ०-पम्म० घादि०४ जह० वड्डी कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सव्वविसु० अणंतभागेण वड्डिदूण वड्डी हाइदूण हाणी एक० अवट्ठाणं। सेसाणं देवभंगो। सुक्काए घादि०४ ओघं। सेसाणं आणदभंगो।

३४०. वेदगे घादि० परिहार०भंगो। सेसाणं ओधिभंगो। सासणे घादि०४ जह० वड्डी कस्स० ? अण्ण० सव्वविसु० जह० वड्डिदूण वड्डी हाइ० हा० एक० अवट्ठाणं। सेसं देवभंगो। सम्मामि० घादि०४ जह० वड्डी सत्थाणे। तस्सेव अवट्ठाणं। जह० हाणी० ? सम्मत्ताभिमुह० जह० हाणी। सेसाणं वेदगसम्मादिट्ठिभंगो।

३४१. असण्णी० घादि०४ जह० वड्डी कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सव्वाहि पज्ज० सव्वविसु०। सेसाणं तिरिक्खोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं सामित्तं समत्तं

भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। असंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थानका भङ्ग देवोंके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि सर्वविशुद्ध संयमके अभिमुख जीव है, वह जघन्य हानिका स्वामी है ? शेष कर्मोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

३३९. कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें गोत्रकर्मका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अप्रमत्तसंयत सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिको प्राप्त होता है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो अनन्तभाग जघन्य हानिको प्राप्त होता है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भङ्ग देवोंके समान है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग देवोंके समान है। शेष कर्मोंका भङ्ग आनतकल्पके समान है।

३४०. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। शेष कर्मोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सर्वविशुद्ध जीव जघन्य वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त है, वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जो जघन्य हानिसे हानिको प्राप्त है, वह जघन्य हानिका स्वामी है और इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। शेष कर्मोंका भङ्ग देवोंके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें चार घाति कर्मोंकी जघन्यवृद्धि स्वस्थानमें होती है। तथा उसीके जघन्य अवस्थान होता है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ अन्यतर जीव जघन्य हानिका स्वामी है। शेष कर्मोंका भङ्ग वेदकसम्यग्दृष्टिके समान है।

३४१. असंज्ञी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर पञ्चेन्द्रिय सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ सर्वविशुद्ध जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। शेष भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाबहुअं

३४२. अप्पाबहुगं दुविहं—जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४ सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी । अवट्ठाणं विसे० । हाणी विसे० । तिण्णं क० सव्वत्थोवा उक्क० अवट्ठाणं । उक्क० हाणी अणंतगु० । उक्क० वड्ढी अणंतगु० । आउ० सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी अवट्ठाणं दो वि तुल्लाणि विसे० । एवं ओघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारगे त्ति ।

३४३. णिरएसु अट्ठण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी अवट्ठाणं दो वि तुल्लाणि विसे० । मणुस०३ घादि०४ णिरयभंगो । वेद०-णाम०-गोद०-आउ० ओघं । एवं पंचिंदि०—तस०२—पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० चक्खु०-सुक्क०-खइग०-सण्णि त्ति ।

३४४. ओरालियमि० सत्तण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा उक्क० हाणी अवट्ठाणं । वड्ढी अणंतगु० । आउ० णिरयभंगो । एवं वेउव्वियमि०-आहारमि० । कम्मइ० सत्तण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा उक्क० अवट्ठाणं । वड्ढी अणंतगु० । हाणी विसे० । एवं अणाहार० ।

३४५. अवगद० घादि०४ सव्वत्थोवा उक्क० हाणी । वड्ढी अणंतगु० । वेद०-

---

अल्पबहुत्व

३४२. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे चार घाति कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है । तीन कर्मोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि अनन्तगुणी है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

३४३. नारकियोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं । मनुष्यत्रिकमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है । इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, चक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

३४४. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक हैं । इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिये । कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

३४५. अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णामा०-गोदा० सव्वत्थोवा उक्क० [वड्ढी । उक्क० हाणी] अणंतगु[1] । एवं सुहुमसंप० ।

३४६. मदि०-सुद०-असंज०-मिच्छा० ओघं । विभंगे ओघं । णवरि[2] घादि०४ णिरयभंगो । आभि०-सुद०-ओधि० घादि०४ सव्वत्थोवा उक्क० हाणी अवट्ठाणं । वड्ढी अणंतगु० । सेसाणं ओघं । एवं मणपज्जव०-संजद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं०-सम्मादि०-उवसम०-परिहार०-संजदासंज० । वेदग० घादि०४ ओधिभंगो । सेसाणं णिरयभंगो । सम्मामि० सत्तण्णं क० सव्वत्थो० हाणी अवट्ठाणं । वड्ढी अणंतगु० । सेसाणं णिरयभंगो ।

एवं उक्कस्सं समत्तं ।

३४७. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० घादि०४ सव्वत्थो० जह० हाणी । वड्ढी अणंतगु० । अवट्ठाणं अणंतगु० । गोद० सव्वत्थो० जह० हाणी । वड्ढी अवट्ठाणं दो वि तु० अणंतगु० । सेसाणि तिण्णि वि तुल्लाणि ।

३४८. णिरएसु गोद० ओघं । सेसाणं[3] तिण्णि वि तुल्लाणि । एवं सत्तमाए । पढमादि याव छट्ठि त्ति सव्वाणि तुल्लाणि । मणुस०३ ओघं । णवरि गोद० वेद०भंगो ।

वृद्धि अनन्तगुणी है । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि अनन्तगुणी है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

३४६. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । विभङ्गज्ञानी जीवोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि चार घातिकर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान सबसे स्तोक हैं । इनसे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार घातिकर्मोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । शेष कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक हैं । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । शेष सब मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भंग है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

३४७. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे चार घातिकर्मोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है । इससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है । इससे जघन्य अवस्थान अनन्तगुणा है । गोत्रकर्मकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है । इससे जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हैं । शेष कर्मोंके तीनों ही तुल्य हैं ।

३४८. नारकियोंमें गोत्रकर्मका भंग ओघके समान है । शेष कर्मोंके तीनों ही तुल्य हैं । इस प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये । पहली पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें सब पद तुल्य हैं । मनुष्यत्रिकमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि गोत्रकर्मका भंग वेदनीयके समान है । पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी

---

१ ता० प्रतौ सव्वत्थो० उक्क० हा० । उक्क० अणंतगुणा इति पाठः ।

२ ता० प्रतौ मिच्छा० ओघं । णवरि इति पाठः । ३ आ० प्रतौ सेसाणि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-भवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारग त्ति ओघं ।

३४९. ओरालिय० मणुसि०भंगो। ओरालियमि० घादि०४ सव्वत्थोवा जह० वड्डी अवट्ठाणं । जह० हाणी अणंतगु० । सेसाणि तिण्णि वि तु० । एवं वेउव्वियमि० । आहार०-आहारमि० देवभंगो। कम्मइ० घादि०४-गोद० सव्वत्थोवा जह० वड्डी। जह० हाणी अवट्ठाणं अणंतगु० । सेसाणं ओघं । एवं अणाहार० ।

३५०. इत्थि०-पुरिस०-णवुंसग० मणुसि०भंगो । णवरि णवुंस० गोद० णिरयभंगो। अवगद० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा जह० हाणी । वड्डी अणंतगु० । एवं सुहुमसंप० ।

३५१. आभि०-सुद०-ओधि० गोद० सव्वत्थो० जह० हाणी। वड्डी अवट्ठाणं अणंतगु० । सेसाणं ओघं । एवं मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-ओधिदं०-सम्मादि०-उवसमसम्मादिट्ठि त्ति । परिहार० गोद० ओधिभंगो। घादि०४ सव्वत्थोवा जह० हाणी। सेसाणं अणंतगु० । सेसं ओघं । संजदासंजद० घादि०४ सव्वत्थोवा जह० हाणी । वड्डी अवट्ठाणं अणंतगु० । सेसं ओधिभंगो ।

क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान अल्पबहुत्व है ।

३४९. औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यनियोंके समान भंग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य वृद्धि और अवस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य हानि अनन्तगुणी है। शेष कर्मोंके तीनों ही पद तुल्य हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग हैं। कार्मणकाययोगी जीवोंमें चार घाति कर्म और गोत्र कर्मकी जघन्य वृद्धि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान अनन्तगुणे हैं। शेष कर्मोंका भङ्ग ओघ के समान है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

३५०. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें मनुष्यनियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी जीवोंमें गोत्र कर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

३५१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें गोत्रकर्मकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान अनन्तगुणे हैं। शेष कर्मोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें गोत्रकर्मका अल्पबहुत्व अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। चार घातिकर्मोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। शेष वृद्धि और अवस्थान अनन्तगुणे हैं। शेष कर्मोंका भंग ओघके समान है। संयतासंयत जीवोंमें चार घातिकर्मोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान अनन्तगुणे हैं। शेष कर्मोंका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५२. सुक्काए खइग० मणुसि०भंगो। वेदगे गोद० ओधिभंगो। सेसं णिरयभंगो। सम्मामि० गोद० वेद०भंगो। सेसाणं णिरयभंगो। सेसाणं सव्वेसिं पढमपुढविभंगो। एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं पदणिक्खेवो[1] समत्तो।

३५२. शुक्ललेश्या और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भंग है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें गोत्रकर्मका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। शेष कर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें गोत्रकर्मका भंग वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। शेष कर्मोंका भंग नारकियोंके समान है। शेष सब मार्गणाओंमें पहली पृथिवीके समान भंग है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ।

१ आ० प्रतौ पदिणिक्खेवो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्ढिबंधो

३५३. वड्ढिबंधे त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा याव अप्पाबहुगे त्ति १३।

समुक्कित्तणा

३५४. समुक्कित्तणाए अट्ठण्णं बं० अत्थि छवड्ढी छहाणी। अवट्ठि०[1] अवत्तव्व०। एवं मणुस०-३-पंचिंदि०[2]-तस० २-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोभ० मोह० आभि०-सुद०-ओधि०-मणप०-संजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं-सुक०-भवसि०-सम्मादि०[3]-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति।

३५५. अवगद०-सुहुमसंप० सत्तण्णं क० छण्णं० अत्थि अणंतगु०वड्ढि-हाणि-अवत्त०। सुहुमसंप० अवत्त० णत्थि। सेसाणं अत्थि छवड्ढी छहाणी अवट्ठाणं। आउ० ओघं। एवं समुक्कित्तणा समत्ता।

सामित्तं

३५६. सामित्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं पि अवत्त० भुज०

वृद्धिबन्ध

३५३. वृद्धिबन्धका प्रकरण है। उसमें ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक १३।

समुत्कीर्तना

३५४. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा आठों कर्मोंके बन्धक जीवोंकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपद होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच-मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मके, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३५५. अपगतवेदी और सूक्ष्मसांपरायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात कर्मों और छह कर्मोंके बन्धक जीवोंकी अनन्तगुणवृद्धि, अनन्त गुणहानि और अवक्तव्यपद होते हैं। इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अवक्तव्यपद नहीं है। शेष सब मार्गणाओंमें छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थान पद होते हैं। आयुकर्मका भंग ओघके समान है। इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

३५६. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों ही कर्मोंके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारपदके अवक्तव्यपदके समान करना चाहिए। छह

---

१ ता० प्रतौ अवट्ठ० इति पाठः। २ ता० प्रतौ मणुस० १२ (३) पचि० इति पाठः। ३ ता० आ० प्रत्योः सम्ममि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्तभंगो कादव्वो। छवड्डी छहाणी अवट्ठि० कस्स० ? अण्ण०। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-लोभ० मोह० आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति। णेरइगेसु सत्तण्णं क० एवं चेव। णवरि अवत्त० णत्थि। कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० छवड्ढी छहाणी अवट्ठि० कस्स० ? अण्ण०। एवं वेउव्वियमि०-सम्मामि०। अवगद०सत्तण्णं क०अणंतगुणवड्डि-हाणी कस्स०? अण्ण०। एवं सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं। सेसाणं णिरयभंगो। एवं सामित्तं समत्तं।

कालो

३५७. कालाणुगमेण अट्ठण्णं कम्माणं पंचवड्डी पंचहाणी केवचिरं० ? जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखेंज्ज०[1]। अणंतगुणवड्डि-हाणी जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क सत्तट्ठसम०। आउ० अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सत्तसमया। अवत्त० एग०। एवं अट्ठण्णं कम्माणं चोदसण्णं पदा जम्हि अत्थि तम्हि एस कालो०।

३५८. णिरएसु सत्तण्णं एवं चेव। णवरि सत्तण्णं क० अवत्तव्वं णत्थि। अवट्ठि०

वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव इनका स्वामी है। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्म, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। नारकियोंमें सात कर्मोंका भंग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपद नहीं है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव उक्त पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंकी अपेक्षा जानना चाहिए। शेष मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भंग है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

काल

३५७. कालानुगमकी अपेक्षा आठ कर्मोंकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात-आठ समय है। आयुकर्मके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल सात समय है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार आठों कर्मोंके चौदह पद जिन मार्गणाओंमें हैं, उनमें यही काल जानना चाहिए।

३५८. नारकियोंमें सातों कर्मोंका इसी प्रकार काल है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंका

1 ता० प्रतौ आवड्डि० असंखेज्जदि (?) आ० प्रतौ अवट्ठि० असंखेज्ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एगस०, उक्क० सत्त० अट्ठसम० । कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० छवड्ढी छहाणी जह० एगस०, उक्क० बेसम० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णिसम० । अवगद० सत्तण्णं क० अणंतगुणवड्ढि-हाणी जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं सुहुमसंप० छण्णं क० । सेसाणं णिरयभंगो । एवं कालं समत्तं ।

अंतरं

३५९. अंतराणुगमेण अट्ठण्णं क० अवत्त० भुज० अवत्त०भंगो । अट्ठण्णं कम्माणं अवट्ठि० पंचवड्ढी पंचहाणी भुज० अवट्ठि०भंगो । अणंतगुणवड्ढि-हाणी सव्वत्थ भुजगारबंधगे भुज०-अप्पदराणं अंतरं कादव्वं । एवं याव अणाहारग त्ति । एवं अंतरं समत्तं ।

णाणाजीवेहि भंगविचयो

३६०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठिदबंधगा णियमा अत्थि । सिया एदे य अवत्तगे य । सिया एदे य अवत्तव्वगा य । आउ० सव्वपदा णियमा अत्थि । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं सव्वसुहुमाणं एइंदिय-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोद०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०

अवक्तव्यपद नहीं है । अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात आठ समय है । कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी छह वृद्धि और छह हानियोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल तीन समय है । अपगतवेदी जीवोंमें सातकर्मोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें छह कर्मोंकी अपेक्षा काल जानना चाहिए । शेष मार्गणाओंका भंग नारकियोंके समान है । इस प्रकार काल समाप्त हुआ ।

अन्तर

३५९. अन्तरानुगमकी अपेक्षा आठ कर्मोंके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारबन्धके अवक्तव्यपदके समान है । आठ कर्मोंके अवस्थितपद, पाँच वृद्धि और पाँच हानियोंका अन्तर भुजगारबन्धके अवस्थितपदके समान है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल सर्वत्र भुजगारपदका बन्ध करनेवाले जीवोंमें भुजगारबन्धके व अल्पतरपदके अन्तरकालके समान करना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय

३६०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव नियमसे हैं । कदाचित् ये जीव हैं और एक अवक्तव्य पदका बन्धक जीव है । कदाचित् ये जीव हैं और नाना अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीव नियम से हैं । इसी प्रकार ओघ के समान सामान्य तिर्यंच, सब सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४–मदि०-सुद०–असंज०-अचक्खु०–तिण्णिले०–भवसि०–अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति।

३६१. णिरएसु सत्तण्णं क० अणंतगुणवड्डि-हाणी णियमा अत्थि। सेसाणि पदाणि भयणिज्जाणि। आउ० सव्वपदाणि भयणिज्जाणि। मणुसअपज्ज०-वेउव्वियमि०–आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसंप०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० सव्वपदाणि भयणिज्जाणि। बादरएइंदि०-बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोद०-पत्तेय० तेसिं च अपज्ज० सत्तण्णं क० छवड्डि-छहाणि-अवट्ठि० आउ० सव्वपदा णियमा अत्थि। सेसाणं णिरयभंगो।

एवं भंगविचयं समत्तं।

भागाभागो

३६२. भागाभागाणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं पंचवड्डि-हाणि-अवट्ठि० सव्व० केव० भागो? असंखे०भागो। अणंतगुणवड्डी दुभागो सादिरे०। अणंतगुणहाणी दुभागं देसू०। अवत्त० अणंतभा०। आउ० एवं चेव। णवरि अवत्त० असंखेज्जा भा०। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-लोभ० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति। सेसाणं पि भुजगारेण साधेदव्वं। एवं भागाभागं समत्तं।

ज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३६१. नारकियोंमें सात कर्मोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। आयुकर्मके सब पद भजनीय हैं। मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायिक संयत, उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब पद भजनीय हैं। बादर एकेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और इनके अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थित पदवाले जीव तथा आयुकर्मके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। शेष मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इस प्रकार भङ्गविचय समाप्त हुआ।

भागाभाग

३६२. भागाभागानुगमकी अपेक्षा सात कर्मोंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थित पदके बंधक जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव सब जीवोंके साधिक द्वितीयभाग प्रमाण हैं। अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव कुछ कम द्वितीयभाग प्रमाण हैं। अवक्तव्य पदके बन्धक जीव अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। आयुकर्मका भङ्ग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिक काययोगी, लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्म, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। शेष सब मार्गणाओंका भङ्ग भुजगार पदके अनुसार साध लेना चाहिए। इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिमाणं खेत्तं च

३६३. परिमाणाणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं अवत्त० केत्ति० ? संखेज्जा । सेसपदा केत्तिया ? अणंता । आउ० सव्वपदा केत्तिया ? अणंता । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं एइंदि०–वणप्फदि–णियोद ०–कायजोगि–ओरालि०–ओरालियमि ०- कम्मइ ०–णवुंस०- कोधादि० ४–मदि०-सुद०-असंज०–अचक्खु०–तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०- असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति[1] । णवरि केसिं च सत्तण्णं कम्माणं अवत्त० णत्थि केसिं च अत्थि । णिरएसु सत्तण्णं कम्माणं तेरसपदा केत्तिया ? असंखेज्जा । आउ० चोद्दसपदा केत्तिया ? असंखेज्जा । सेसं भुजगारेण साधेदव्वं । खेत्तं पि परिमाणेण साधेदव्वं भवदि ।

फोसणं

३६४. फोसणाणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं तेरसपदा सव्वलोगो । अवत्तव्वबं० लोगस्स असंखे० । आउ० सव्वपदा सव्वलोगो । एवं अट्ठण्णं कम्माणं अवट्ठिदबं०- अवत्त० भुजगारभंगो । छवड्ढी छहाणी० अप्पप्पणो भुज०-अप्पद०भंगो । एदेण बीजेण णेदव्वं याव अणाहारग त्ति । णवरि अवगदे सुहुमसंप० अणंतगुणवड्ढि-हाणी खेत्तभंगो कादव्वो ।

परिमाण और क्षेत्र

३६३. परिमाणानुगमकी अपेक्षा सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । शेष पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यंच, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमेंसे किन्हीं जीवोंके सात कर्मोंका अवक्तव्यपद नहीं है और किन्हीं जीवोंका अवक्तव्यपद है । नारकियोंमें सात कर्मोंके तेरह पदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आयुकर्मके चौदह पदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । शेष मार्गणाओंमें भुजगारबन्धके अनुसार साध लेना चाहिए । क्षेत्र भी परिमाणके अनुसार साध लेना चाहिए ।

स्पर्शन

३६४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा सात कर्मोंके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार आठों कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका भंग भुजगारबन्धके समान है तथा छह वृद्धि और छह हानियोंके बन्धक जीवोंका भंग अपने-अपने भुजगारपदके और अल्पतर पदके समान है । इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इतनी

१ ता० प्रतौ असण्णि अणाहारगंत्ति इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालो

३६५. कालाणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं अवत्त० जह० एग०[1], उक्क० संखेंजसम० । सेसा तेरसपदा आउ० सव्वपदा सव्वद्धा । अट्ठण्णं कम्माणं अवट्ठि० अवत्त० भुज०भंगो । एवं पंचवड्ढी-पंचहाणी अप्पप्पणो अवट्ठि०भंगो । अणंतगुणवड्ढि-हाणी भुज०-अप्प०भंगो । एदेण बीजेण याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

अंतरं

३६६. अंतराणुगमेण सत्तण्णं कम्माणं अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं । सेसपदा० णत्थि अंतरं । आउ० सव्वपदा० णत्थि अंतरं । एवं अट्ठण्णं कम्माणं अवट्ठि० अवत्त० भुज० अवट्ठि०-अवत्त०भंगो । पंचवड्ढी पंचहाणी अप्पप्पणो अवट्ठि०भंगो । अणंतगुणवड्ढि-हाणी भुज०-अप्पद०भंगो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

भावो

३६७. भावाणुगमेण अट्ठण्णं कम्माणं चोद्दसपदाणं को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

विशेषता है कि अपगतवेद और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके अनुसार करना चाहिए । इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

काल

३६५. कालानुगमकी अपेक्षा सात कर्मोंके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । शेष तेरह पद और आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । आठ कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदका भंग भुजगारके समान है । इसी प्रकार पाँच वृद्धि और पाँच हानिके बन्धक जीवोंका भंग अपने-अपने अवस्थित पदके समान है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका भंग भुजगारबन्धके और अल्पतरपदके समान है । इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

अन्तर

३६६. *अन्तरानुगमकी अपेक्षा सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर* एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है । शेष पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । आयुकर्मके सब पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार आठों कर्मोंके अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल भुजगारबन्धके अवस्थित और अवक्तव्य पदके अन्तरकालके समान जानना चाहिए । पाँच वृद्धि और पाँच हानिके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल अपने-अपने अवस्थितपदके समान है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल भुजगारबन्धके और अल्पतरपदके अन्तरकालके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

भाव

३६७. भावानुगमकी अपेक्षा आठ कर्मोंके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है ? औदयिकभाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

---

1 ता० प्रतौ कालाणु० ज० ए० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाबहुअं

३६८. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघे० ओदे० । ओघे० सत्तण्णं सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० अणंतगु० । अणंतभागवड्ढि-हाणी दो वि तुल्ला० असंखेंज्जगु० । असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणी दो वि तु० असंखेंज्जगु० । संखेंज्जभागवड्ढि-हाणी दो वि तुल्ला० असंखेंज्जगु० । संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी दो वि तु० असंखेंज्जगु० । असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी दो वि तु० असंखेंज्जगु० । अणंतगुणहाणी असं०गु० । अणंतगुणवड्ढी विसे० । आउ० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अणंतभागवड्ढि-हाणी दो वि तु० असं०गु० । असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणी दो वि तु० असं०गु० । संखेंज्जभागवड्ढि-हाणी दो वि तु० असं०गु० । संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी । दो वि तु० असं०गु० । असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी दो वि तु० असं०गु० । अवत्त० असं०गु० । अणंतगुणहाणी असंखेंज्जगु० । अणंतगुणवड्ढी विसे० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०—लोभ० मोह० अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति । एवं० चेव मणुसोघं पंचिं०-तस०२—पंचमण०-पंचवचि०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०—ओधिदं०—सम्मादि०—उवसम०-सण्णि त्ति । णवरि अवट्ठि० असंखेंज्जगु० ।

अल्पबहुत्व

३६८. अल्पबहुत्व दो प्रकार का है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आयुकर्मके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्म, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६९. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मणपज्जव[1] संजद० ओघं। णवरि संखेंज्जगुणं कादव्वं। णिरएसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवट्ठि०। अणंतभागवड्डि-हाणी दो वि तु० असं०गु०। असंखेंज्जभागवड्डि-हाणी दो वि तु० असं०गु०। एवं उवरि ओघं०। आउ० मूलोघं। एवं णिरयभंगो सव्वाणं असंखेंज्ज-अणंतरासीणं। संखेंज्जरासीणं पि तं चेव। णवरि संखेंज्जं कादव्वं।

३७०. अवगद० घादि०४ सव्वत्थोवा अवत्तव्वबं०। अणंतगुणवड्डी संखेज्जगुणा। अणंतगुणहाणी संखेंज्जगु०। वेद०-णामा०-गोदा० सव्वत्थोवा अवत्त०। अणंतगुणहाणी संखेंज्जगु०। अणंतगुणवड्डी संखेंज्जगु०। एवं सुहुमसंप०। णवरि अवत्त० मोहणीयं च णत्थि।

एवं वड्डिबंधो समत्तो।

अज्झवसाणसमुदाहारो

३७१. अज्झवसाणसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवालस अणियोगद्दाराणि—अविभागपलिच्छेदपरूवणा ट्ठाणपरूवणा अंतरपरूवणा कंडयपरूवणा ओजजुम्मपरूवणा छट्ठाणपरूवणा हेट्ठट्ठाणपरूवणा समयपरूवणा वड्डिपरूवणा यवमज्झपरूवणा पज्जवसाणपरूवणा अप्पाबहुगे[2] त्ति।

३६९. मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंमें ओघके समान भंग है इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणे करने चाहिए। नारकियोंमें सात कर्मोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। आगे इसी प्रकार ओघके समान जानना चाहिए। आयुकर्मका भंग मूलोघके समान है। इसी प्रकार नारकियोंके समान सब असंख्यात और अनन्त राशियोंका भंग करना चाहिए। संख्यात राशियोंका भंग भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणा करना चाहिए।

३७०. अपगतवेदी जीवोंमें चार घातिकर्मोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अवक्तव्य पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्य पद और मोहनीय कर्मका बन्ध नहीं है। इस प्रकार वृद्धिबन्ध समाप्त हुआ।

अध्यवसानसमुदाहार

३७१. अध्यवसानसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये बारह अनुयोगद्वार होते हैं—अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, काण्डकप्ररूपणा, ओजयुग्मप्ररूपणा, षट्स्थानप्ररूपणा, अधस्तनस्थानप्ररूपणा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, पर्यवसानप्ररूपणा और अल्पबहुत्व।

---

१ आ० प्रतौ मणुसपज्ज० इति पाठः। २. ता० प्रतौ यवमज्झपरूवणा अप्पाबहुगे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७२. अविभागपलिच्छेदपरूवणदाए एक्केक्कम्हि कम्मपदेसे केवडिया अविभाग-पलिच्छेदा ? अणंता अविभागपलिच्छेदा[१] सव्वजीवेहि अणंतगुणा। एवडिया अविभाग-पलिच्छेदा।

विशेषार्थ—यहाँ अनुभागका प्रकरण होनेसे अध्यवसानपदसे अनुभाग अध्यवसानोंका ग्रहण किया है। अनुभागबन्धके कारणभूत ये अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं। उन्हींका यहाँ मूलमें कहे गये बारह अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर विचार किया है। षट्खण्डा-गमके वेदनाखण्डके अन्तर्गत वेदनाभावविधान अनुयोगद्वारकी दूसरी चूलिकामें भी इसका विचार किया गया है। अनुयोगद्वारोंके नाम भी वे ही हैं। विशेष जिज्ञासुओंको यह विषय वहाँसे जान लेना चाहिए।

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा

३७२. अविभागप्रतिच्छेद-प्ररूपणाकी अपेक्षा एक-एक कर्मप्रदेशमें कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं? अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते हैं जो सब जीवोंसे अनन्तगुणे होते हैं। इतने अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं।

विशेषार्थ—बुद्धिके द्वारा एक परमाणुमें स्थित शक्तिका छेद करने पर सबसे जघन्य शक्त्यंश का नाम प्रतिच्छेद है। यह शक्त्यंश अविभाज्य होता है, इसलिए इसे अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। प्रकृतमें अनुभाग शक्ति विवक्षित है। कर्मके प्रत्येक परमाणुमें इस अनुभागशक्तिको देखने पर वह सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदोंको लिए हुए होती है। यद्यपि यह अनुभागशक्ति किसी कर्मपरमाणुमें जघन्य होती है और किसी में उत्कृष्ट,पर उसमेंसे प्रत्येकका सामान्य प्रमाण उक्त प्रमाण ही है। उदाहरणार्थ—एक शुक्ल वस्त्र लीजिए। उसके किसी एक अंशमें कम शुक्लता होती है और किसीमें अधिक। अतएव जिसप्रकार उस वस्त्रमें शुक्ल गुणका तारतम्य दिखाई देता है, उसी प्रकार इन कर्मपरमाणुओंमें भी अनुभागशक्तिका तारतम्य दिखाई देता है। इससे विदित होता है कि इस तारतम्यका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। यहाँ तारतम्यका जो भी निदर्शक है, उसीका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। ऐसे अविभागप्रतिच्छेद एक-एक कर्मपरमाणुमें अनन्त होते हुए भी सब जीवोंसे अनन्तगुणे होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँ मूलमें वर्गणाप्ररूपणा और स्पर्धक-प्ररूपणाको अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाके अन्तर्गत लिया है, इसलिए आगे स्थानप्ररूपणाको उत्पन्न करनेके लिए उसका विचार करते हैं—यहाँ हमने एक-एक कर्म परमाणुमें अनन्त अविभागप्रतिच्छेद बतलाए हैं। ये सबसे जघन्य अविभाग प्रतिच्छेद हैं। इसीप्रकार दूसरे, तीसरे, आदि-अनन्त कर्मपरमाणुओंमें प्रथम कर्मपरमाणुके समान अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, इसलिए इनमेंसे प्रत्येक कर्मपरमाणुकी वर्ग और इन सब कर्मपरमाणुओंकी वर्गणा संज्ञा है। यहाँ एक वर्गणामें अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण वर्ग होते हैं। पुनः इनसे एक अधिक अविभागप्रति-च्छेदको लिए हुए अनन्त वर्गोंका समुदायरूप दूसरी वर्गणा होती है। इसी प्रकार आगे तीसरी आदि वर्गणाएँ एक-एक अविभागप्रतिच्छेदके अधिकक्रमसे उत्पन्न करनी चाहिए। ये वर्गणाएँ अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होती हैं जो मिलकर एक स्पर्धक कहलाती हैं। इन वर्गणाओंमें क्रमसे एक-एक अविभागप्रतिच्छेदकी वृद्धि देखी जाती है। अतः क्रमसे स्पर्धा करता है अर्थात् वृद्धि होती है, इसलिए इसकी स्पर्धक संज्ञा है। फिर सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभाग-प्रतिच्छेदोंका अन्तर देकर दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रथम वर्ग लाना चाहिए। अर्थात् प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गमें जितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, उनसे सब जीव राशिकी

---

१. ता० आ० प्रत्योः—पलिच्छेदो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७३. ट्ठाणपरूवणदाए केवडियाणि ट्ठाणाणि ? असंखेंज्जालोगट्ठाणाणि । एवडियाणि ट्ठाणाणि ।

३७४. अंतरपरूवणदाए एँक्कॅक्कस्स ट्ठाणस्स केवडियं अंतरं ? सव्वजीवेहि अणंतगुणं । एवडियं[1] अंतरं ।

३७५. कंडयपरूवणदाए अत्थि अणंतभागपरिवड्डिकंडयं । असंखेंज्जभागपरिवड्डिकंडयं संखेंज्जभागपरिवड्डिकंडयं संखेंज्जगुणपरिवड्डिकंडयं असंखेंज्जगुणपरिवड्डिकंडयं अणंतगुणपरिवड्डिकंडयं ।

अपेक्षा अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदोंको लाँघकर दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके एक वर्गमें प्राप्त होनेवाले अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। यह एक वर्ग है। तथा इसी प्रकार समान अविभागप्रतिच्छेदोंको लिए हुए अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवेंभागप्रमाण वर्ग उत्पन्न करने चाहिए जो सब मिलकर द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणा बनते हैं। फिर आगे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिकके क्रमसे पूर्वोक्त प्रमाण वर्गोंको लिए हुए दूसरे स्पर्धककी द्वितीयादि वर्गणाएँ उत्पन्न होती हैं। ये वर्गणाएँ भी अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होती हैं। तथा इसी प्रकार तृतीयादि स्पर्धक उत्पन्न करने चाहिए। ये सब स्पर्धक अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवेंभागप्रमाण होते हैं।

३७३. स्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा कितने स्थान होते हैं। असंख्यात लोकप्रमाण स्थान होते हैं। इतने स्थान होते हैं।

विशेषार्थ—पहले हम अविभागप्रतिच्छेदोंके निरूपणके प्रसंगसे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धकोंकी उत्पत्तिका निरूपण कर आये हैं। वे सब स्पर्धक मिलकर एक जघन्य स्थान होता है। एक जीवमें एक समयमें जो कर्मका अनुभाग दिखाई देता है, उसकी स्थान संज्ञा है। यह स्थान दो प्रकारका है—अनुभागबन्धस्थान और अनुभागसत्त्वस्थान। यहाँ बन्धका प्रकरण होनेसे अनुभागबन्धस्थानका ग्रहण होता है। इस हिसाबसे जघन्यस्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान तक सब जीवोंके अनुभागबन्धस्थानोंका योग करने पर वे असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं।

३७४. अन्तरप्ररूपणाकी अपेक्षा एक-एक स्थानका कितना अन्तर होता है? सब जीवोंसे अनन्तगुणा अन्तर होता है। इतना अन्तर होता है।

विशेषार्थ—यहाँ एक स्थानसे दूसरे स्थानके बीच कितना अन्तर होता है, इसका विचार किया गया है। बात यह है कि एक स्थानके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं, उनसे सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदोंको लाँघकर अगले स्थानके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके एक वर्गमें अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इसी प्रकार स्थान-स्थान के बीच और प्रत्येक स्थानमें स्पर्धक-स्पर्धकके बीच अन्तर जानना चाहिए।

३७५. काण्डकप्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धिकाण्डक होता है, असंख्यातभागवृद्धिकाण्डक होता है, संख्यातभागवृद्धिकाण्डक होता है, संख्यातगुणवृद्धि काण्डक होता है, असंख्यातगुणवृद्धिकाण्डक होता है और अनन्तगुणवृद्धि काण्डक होता है।

विशेषार्थ—यहाँ काण्डकसे अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण राशि ली गई है। पहले जो असंख्यात लोक प्रमाण स्थान बतला आये हैं, उनमें अगली एक वृद्धिरूप स्थानके प्राप्त होनेके

---

१. ता प्रतौ एवडिया इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

३७६. ओज-जुम्मपरूवणदा. अविभागपलिच्छेदाणि कदजुम्माणि, ट्ठाणाणि कद-जुम्माणि, कंडयाणि कदजुम्माणि।

३७७. छट्ठाणपरूवणदाए अणंतभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढी सव्वजीवेहि अणंत-भागपरिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी। असंखेज्जभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढी असंखेज्जालोगा-भागपरिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी। संखेज्जभागपरि० काए परि० जहण्णपरित्तासंखेज्जप रूवूणगस्स संखेज्जभागपरिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी। संखेज्जगुणपरिवड्ढी काए० जहण्ण-परित्तासंखेज्जरूवूण० संखेज्जगुणपरिवड्ढी एवडिया परि०। असंखेज्जगुणपरिवड्ढी काए० परि० असंखेज्जालोगागुणपरि०। एवडि० परि०। अणंतगुणपरि० काए० सव्व-जीवेहि अणंतगुणपरि०। एवडिया परिवड्ढी।

पहले काण्डक प्रमाण पूर्ववृद्धिको लिए हुए स्थान हो लेते हैं। अनन्तगुणवृद्धिरूप स्थानके प्राप्त होने तक यही क्रम जानना चाहिए। इस प्रकार सब असंख्यात लोक प्रमाण स्थानोंमें अनन्तगुणवृद्धि-रूप स्थान काण्डक प्रमाण होते हैं तथा असंख्यातगुणवृद्धि रूप स्थान काण्डकगुणित काण्डक प्रमाण होते हैं। इसी प्रकार पूर्व-पूर्व वृद्धिरूप स्थानोंका प्रमाण ले आना चाहिए।

३७६. ओजयुग्मप्ररूपणाकी अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्म होते हैं, स्थान कृतयुग्म होते हैं और काण्डक कृतयुग्म होते हैं।

विशेषार्थ—ओजयुग्मप्ररूपणामें ओजशब्दका अर्थ विषम संख्या लिया गया है और युग्म-शब्दका अर्थ सम संख्या लिया गया है। उसमें भी ओजके दो भेद हैं—कलिओज और त्रेता-ओज। इसी प्रकार युग्मके भी दो भेद हैं—द्वापरयुग्म और कृतयुग्म। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—किसी विवक्षित राशिमें ४ का भाग देनेपर यदि १ शेष रहे तो उस राशिको कलि ओज कहते हैं, यथा १३। २ शेष रहें तो उस राशिको द्वापरयुग्म कहते हैं, यथा-१४। ३ शेष रहें तो उस राशिको त्रेता ओज कहते हैं, यथा-१५ और शून्य शेष रहे तो उस राशिको कृतयुग्म कहते हैं, यथा-१६। इस हिसाबसे विचार करनेपर इन अनुभागस्थानोंमें अविभागप्रतिच्छेद, अनुभागस्थान और काण्डक ये सब राशियाँ कृतयुग्मरूप हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

३७७. षट्स्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है? सर्व जीव प्रमाण अनन्तका भाग देकर लब्धको उसमें मिलानेसे अनन्तभागवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। असंख्यात भागवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है? असंख्यात लोकका भाग देकर लब्धको उसमें मिलाने पर असंख्यातभागवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। संख्यातभागवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है? एक कम जघन्य परीतासंख्यातका भाग देकर लब्धको विवक्षित राशिमें मिलाने पर संख्यातभागवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। संख्यातगुणवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है? एक कम जघन्य परीतासंख्यातसे विवक्षित राशिको गुणित करनेपर संख्यातगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। असंख्यातगुणवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है? असंख्यात लोकोंसे विवक्षित राशिको गुणित करने पर असंख्यातगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है। अनन्तगुणवृद्धि किस संख्यासे वृद्धिरूप है? सब जीवराशिसे विवक्षित राशिके गुणित करने पर अनन्तगुणवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है।

विशेषार्थ—यहाँ षट्स्थान प्ररूपणामें उक्त छह वृद्धियों को प्राप्त करनेके लिए भागहार और गुणकार क्या है, इसके निर्देशके साथ वृद्धि कितनी होती है, यह बतलाया है। मुख्य राशियाँ तीन

---

४. ता० प्रतौ अणंतय (भा) गपरिवड्ढि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७८. हेट्ठट्ठाणपरूवणदाए अणंतभागब्भहियं कंडयं गंतूण असंखेंज्जभागब्भहियं ट्ठाणं। असंखेंज्जभागब्भहियं कंडयं गंतूण संखेंज्जभागब्भहियं ट्ठाणं। संखेंज्जभागब्भहियं कंडयं गंतूण संखेंज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं। संखेंज्जगुणब्भहियं कंडयं गंतूण असंखेंज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं। असंखेंज्जगुणब्भहियं कंडयं गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं। अणंतभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण संखेंज्जभागब्भहियं ट्ठाणं। असंखेंज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण संखेंज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं। संखेंज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण असंखेंज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं। संखेंज्जगुणब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं। संखेंज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयघणो बे कंडयवग्गा कंडयं च। असंखेंज्जगुणस्स हेट्ठदो असंखेंज्जभागब्भहियाणं कंडयघणो बे कंडयवग्गा कंडयं च। अणंतगुण० हेट्ठदो संखेंज्जभागब्भहियाणं कंडयघणो बे कंडयवग्गा कंडयं च। असंखेंज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयवग्गावग्गो तिण्णि कंडयघणा तिण्णि कंडयवग्गा कंडयं च। अणंतगुणस्स हेट्ठदो असंखेंज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गावग्गो तिण्णि कंडयघणा तिण्णि कंडयवग्गा कंडयं च। अणंतगुणस्स हेट्ठदो अणंत-

---

हैं—अनन्त जीवराशि, असंख्यात लोक और एक कम जघन्य परीतासंख्यात। इनमेंसे अनन्तभागवृद्धि लानेके लिए अनन्त जीवराशि भागहार है और अनन्तगुणवृद्धि लानेके लिए अनन्तजीव राशि गुणकार है। असंख्यात भागवृद्धि लानेके लिए असंख्यात लोक भागहार है और असंख्यातगुणवृद्धि लानेके लिए असंख्यात लोक गुणकार है। तथा संख्यातभाग वृद्धि लानेके लिए एक कम जघन्य-परीतासंख्यात भागहार है और संख्यातगुणवृद्धि लानेके लिए वही एक कम जघन्य परीतासंख्यात गुणकार है। तात्पर्य यह है कि किसी विवक्षित अनुभागस्थानमें अनन्तका भाग दीजिए, जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिला दीजिए। यह अनन्तभागवृद्धि है। इसी प्रकार शेष वृद्धियोंका विचार कर लेना चाहिए।

३७८. अधस्तनस्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान जाकर एक असंख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातगुणवृद्धि स्थान होता है। काण्डकप्रमाण संख्यातगुणवृद्धिस्थान जाकर एक असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। तथा काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिस्थान जाकर एक अनन्तगुणवृद्धिस्थान होता है। काण्डक वर्ग और काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डकवर्ग और काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक संख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। काण्डकवर्ग और काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थान जाकर एक असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। तथा काण्डकवर्ग और काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिस्थान जाकर एक अनन्तगुणवृद्धिस्थान होता है। संख्यातगुणवृद्धिस्थानके पहले अनन्तभागवृद्धिस्थान काण्डकघन, दो काण्डकोंका वर्ग और काण्डक प्रमाण होते हैं। असंख्यातगुणवृद्धिके पहले असंख्यातभागवृद्धिस्थान काण्डकघन, दो काण्डकोंका वर्ग और काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिके पहले संख्यातभागवृद्धिस्थान काण्डकघन, दो काण्डकवर्ग और काण्डकप्रमाण होते हैं। असंख्यातगुणवृद्धिके पहले अनन्तभागवृद्धि स्थान काण्डकवर्गावर्ग, तीन काण्डकघन, तीन काण्डक वर्ग और काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिके पहले असंख्यातभागवृद्धिके स्थान काण्डकवर्गावर्ग, तीन काण्डकघन, तीन काण्डकवर्ग और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागब्भहियाणं कंडयो पंचहदो चत्तारि कंडयवग्गावग्गा छक्कंडयघणा चत्तारि कंडयवग्गा कंडयं च।

काण्डकप्रमाण होते हैं। अनन्तगुणवृद्धिके पहले अनन्तभागवृद्धि स्थान पाँच बार गुणित काण्डक, चार काण्डक वर्गावर्ग, छह काण्डकघन, चार काण्डकवर्ग और काण्डकप्रमाण होते हैं।

विशेषार्थ—अधस्तनस्थान प्ररूपणामें अगले विवक्षित स्थानसे पूर्व पिछले विवक्षित स्थान कितने बार होते हैं,यह बतलाया गया है। यहाँ यह प्ररूपणा पाँच प्रकारसे की गई है—१ अनन्तर-पूर्वस्थान प्रमाण प्ररूपणा, एकान्तर पूर्वस्थान प्रमाण प्ररूपणा, द्वयन्तरपूर्वस्थान प्रमाण प्ररूपणा, त्र्यन्तरपूर्वस्थानप्रमाण प्ररूपणा और चतुरन्तरपूर्वस्थानप्रमाण प्ररूपणा। अनन्तरपूर्वस्थानप्रमाण-प्ररूपणामें अगले स्थानके एक बार होनेके पहले अनन्तरपूर्वस्थान कितने बार होते हैं, यह बतलाया गया है। इस हिसाबसे यह प्ररूपणा पाँच प्रकारकी होती है, क्योंकि कुल स्थान छह हैं। इसलिए प्रथम स्थानका तो कोई अनन्तर पूर्व स्थान होगा ही नहीं, द्वितीयादिकके अनन्तरपूर्व स्थान अवश्य होंगे, इसलिए ये पाँच कहे हैं। एकान्तरपूर्वस्थानप्ररूणामें एक स्थानके अन्तरसे स्थित पूर्वस्थानका प्रमाण लिया गया है। यथा—तृतीय स्थानके एक बार होनेके पहले द्वितीय स्थानका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं, इत्यादि। यहाँ ये एकान्तरपूर्वस्थान चार हैं। द्वयन्तरपूर्वस्थान प्ररूपणामें अगले स्थानके पहले दो स्थानोंके अन्तरसे स्थित स्थानका प्रमाण लिया गया है। यथा—चतुर्थ स्थानके एक बार होनेके पहले तृतीय और द्वितीय इन दो स्थानोंका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं, इत्यादि। यहाँ ये द्वयन्तरपूर्वस्थान तीन हैं। त्र्यन्तरपूर्वस्थानप्ररूपणामें अगले स्थानके पहले तीन स्थानोंके अन्तरसे स्थित स्थानका प्रमाण लिया गया है। यथा—पञ्चम स्थानके एक बार होनेके पहले चतुर्थ, तृतीय और द्वितीय स्थानका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं, आदि। यहाँ त्र्यन्तरपूर्वस्थान दो हैं। चतुरन्तरपूर्वस्थानप्ररूपणामें अगले स्थानके पहले चार स्थानोंके अन्तरसे स्थित स्थानका प्रमाण लिया गया है। यथा छठे स्थानके एक बार होनेके पहले मध्यके सब स्थानोंका अन्तर देकर प्रथम स्थान कितने बार होते हैं? यह चतुरन्तरपूर्वस्थान एक ही है। यहाँ इस विषयको स्पष्ट रूपसे समझनेके लिए संदृष्टि दी जाती है—

३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३६
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३६
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३७
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३६
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३६
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३७
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३६
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३६
३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३५	३३४	३३४	३३८

इस संदृष्टिमें '३' से अनन्तभागवृद्धि, '४' से असंख्यातभागवृद्धि, '५' से संख्यातभागवृद्धि ६ से संख्यातगुणवृद्धि, ७ से असंख्यातगुणवृद्धि और ८ से अनन्तगुणवृद्धि ली है। तथा काण्डकका प्रमाण दो बार लिया है। इस संदृष्टिके देखनेसे विदित होता है कि प्रत्येक अनन्तरपूर्ववृद्धि अगली वृद्धिके प्राप्त होने तक काण्डकप्रमाण अर्थात् दो बार हुई है। एकान्तर पूर्व वृद्धि काण्डकवर्ग और काण्डक प्रमाण (६ बार) हुई है। द्वयन्तरपूर्ववृद्धि काण्डकघन, दो काण्डक वर्ग और काण्डक प्रमाण (१८ बार) है। त्र्यन्तरपूर्ववृद्धि काण्डकवर्गावर्ग, तीन काण्डकघन, तीन काण्डकवर्ग और काण्डकप्रमाण (५४ बार) हुए है। तथा चतुरन्तरपूर्ववृद्धि पाँच बार गुणित काण्डक, चार काण्डक वर्गावर्ग, छह काण्डक घन, चार काण्डकवर्ग और काण्डक प्रमाण (१६२ बार) हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७९. समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेॅज्जा लोगा। एवं पंचसमइ० छस्समइ० सत्तसमइ० अट्ठसमइ० उवरि सत्तसमइ० छस्समइ० पंचसमइ० चदुसमइ० तिण्णिसमइ० बिसमइ०।

३८०. एत्थ अप्पाबहुगं। सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि। दो वि पासेसु सत्तसमइगाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि [दो वि तुल्लाणि] असंखेॅज्जगुणाणि। दो वि पासेसु छस्समइ० अणुभा०बंधज्झ० असं०गु०। दो वि पासेसु पंचसमइ० अणु०बंधज्झ० असं०गु०। एवं चदुसमइ० उवरि तिसमइ० बिसमइ० अणु०बंधज्झ० असंखेॅज्जगुणाणि।

३८१. सुहुमअगणिकाइया पवेसेण असंखेॅज्जा लोगा। अगणिकाइया असंखेॅज्जगु०। कायट्ठि० असंखेॅज्जगु०। अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेॅज्जगुणाणि।

३८२. वड्ढिपरूवणदाए [अत्थि अणंतभागवड्ढि-हाणी असंखेॅज्जभागवड्ढि-हाणी

३७९. समयप्ररूपणाकी अपेक्षा चार समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इसी प्रकार पाँच समयवाले, छह समयवाले, सात समयवाले और आठ समयवाले तथा इनके आगे सात समयवाले, छह समयवाले, पाँच समयवाले, चार समयवाले, तीन समयवाले और दो समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान जानने चाहिए।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागबन्धस्थानोंसे लेकर उत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थान तक ये जो असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धस्थान हैं, इन्हें एक पंक्तिमें स्थापित कर देखने पर उनमेंसे जो अधस्तन असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं वे चार समयवाले हैं। उनसे आगेके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान पाँच समयवाले हैं। इसी प्रकार दो समयवाले असंख्यात लोकप्रमाण उत्कृष्ट स्थानोंके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यह इनका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा है। जघन्य बन्धकाल सबका एक समय है।

३८०. यहाँ अल्पबहुत्व है—आठ समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे दोनों ही पार्श्वोंमें सात समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर समान होते हुए असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पार्श्वोंमें छह समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर समान होते हुए असंख्यातगुणे हैं। इनसे दोनों ही पार्श्वोंमें पाँच समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर समान होते हुए असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार चार समयवाले, तथा आगे तीन समयवाले और दो समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हैं।

३८१. सूक्ष्म अग्निकायिक जीव प्रवेशकी अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इनसे अग्निकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे इन्हींकी कायस्थिति असंख्यातगुणी है। इनसे अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यहाँ आठ आदि समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानोंका अल्पबहुत्व देनेके बाद यह अल्पबहुत्व देनेका प्रथम कारण तो यह है कि इन आठ आदि समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानोंके अल्पबहुत्वमें गुणकार राशि अग्निकायिक जीवोंकी कायस्थित ली गई है। दूसरे ये अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान अग्निकायिक जीवोंकी कायस्थितिसे भी असंख्यातगुणे हैं, यह बतलाना भी इस अल्पबहुत्वका प्रयोजन है।

३८२. वृद्धिप्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धि-हानि, असंख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जगुण-वड्ढिहाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी अणंतगुणवड्ढि-हाणी। पंचवड्ढी पंचहाणी जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अणंतगुणवड्ढी अणंतगुणहाणी जह० एगसमयं, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

३८३. जवमज्झपरूवणदाए अणंतगुणवड्ढी अणंतगुणहाणी च यवमज्झं।

३८४. पज्जवसाणपरूवणदाए अणंतगुणस्स उवरि अणंतगुणं भविस्सदि त्ति पज्जवसाणं।

३८५. अप्पाबहुगे त्ति। तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च। अणंतरोवणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि। असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। संखेज्जगुणब्भ० असं०गुणाणि। संखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असं०गु०। असंखेज्जभागब्भ० असं०गु०। अणंतभागब्भ० असंखेज्जगुणाणि।

भागवृद्धि-हानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि, असंख्यातगुणवृद्धि-हानि, और अनन्तगुणवृद्धि-हानि होती है। इनमें से पाँच वृद्धियों और पाँच हानियोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पहले एक-एक स्थानमें षट्गुणीवृद्धिका निर्देश कर आये हैं। हानियाँ भी उतनी ही होती हैं। यहाँ इन हानियों और वृद्धियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है, यह बतलाया गया है।

३८३. यवमध्यप्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि यवमध्य है।

विशेषार्थ—यवमध्य दो प्रकारका है—कालयवमध्य और जीवयवमध्य। उनमेंसे यह कालयवमध्य है। यद्यपि आठ समयवाले अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे थोड़े हैं, इत्यादि कथनसे ही कालयवमध्य ज्ञात हो जाता है; पर उसमें भी इस वृद्धि और हानिसे यवमध्यका प्रारम्भ और समाप्ति होती है, यह बतलानेके लिये यवमध्यप्ररूपणा अलगसे की गई है। अनन्तगुणवृद्धिसे यवमध्यका प्रारम्भ होता है और अनन्तगुणहानिसे उसकी समाप्ति होती है, यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि यवमध्यके नीचे और ऊपर चार, पाँच, छह और सातसमय प्रायोग्य स्थान तथा ऊपर जो तीन और दोसमय प्रायोग्यस्थान हैं, इन सबका प्रारम्भ अनन्तगुणवृद्धिसे होता है और उनकी समाप्ति अनन्तगुणहानिसे होती है।

३८४. पर्यवसान प्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तगुणवृद्धिके ऊपर अनन्तगुणवृद्धि (नहीं) होगी यह पर्यवसान है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य स्थानसे लेकर पहले जितने स्थान कह आये हैं, उनमें प्रत्येक स्थानका आदि अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। पुनः उसपर पूर्वोक्त विधिसे पाँच वृद्धियाँ होकर उस स्थानका अन्त अनन्तभागवृद्धिरूप होता है। यही उस स्थानका पर्यवसान है, इसलिए एक स्थानमें अनन्तगुणवृद्धिके ऊपर पुनः अनन्तगुणवृद्धि नहीं प्राप्त होती, यह इस प्ररूपणाका तात्पर्य है।

३८५. अल्पबहुत्वका अधिकार है। उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा अनन्तगुणवृद्धि स्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८६. परंपरोवणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि। असंखेज्ज-भागब्भहि० असं०गु०। संखेज्जभागब्भहि० संखेज्जगु०। [संखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। अणंतगुणब्भ-हियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।

विशेषार्थ—यद्यपि यह अल्पबहुत्व सब स्थानोंका आश्रय लेकर स्थित है, तथापि यहाँपर एक स्थानके आश्रयसे लेकर अल्पबहुत्वका विचार करते हैं, क्योंकि इससे पूरे स्थानोंके आश्रयसे अल्पबहुत्वके विचार करनेमें सुगमता होगी। एक स्थानमें अनन्तगुणवृद्धिस्थान एक होता है, इसलिए वह सबसे स्तोक कहा है। इससे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं। क्योंकि यहाँ पर गुणकारका प्रमाण एक काण्डक है। इनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे इसलिए होते हैं, क्योंकि असंख्यातगुणवृद्धिस्थानोंको एक अधिक काण्डकसे गुणित करने पर इन स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। इनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे इसलिए होते हैं, क्योंकि संख्यातगुणवृद्धिस्थानोंको एक अधिक काण्डकसे गुणित करने पर इन स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। इनसे असंख्यातभागवृद्धि स्थान असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि एक स्थानमें संख्यातभागवृद्धिरूप स्थानोंको एक अधिक काण्डकसे गुणित करने पर इन स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। तथा इनसे अनन्तभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि एक स्थानमें जितने असंख्यातभागवृद्धिरूप स्थान हैं, उन्हें एक अधिक काण्डकसे गुणित पर इन स्थानोंकी उत्पत्ति होती है। यह एक स्थानकी अपेक्षा अल्पबहुत्व है। विचार कर इसी प्रकार सब स्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व घटित कर लेना चाहिए।

३८६. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धिस्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे असंख्यात-भागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात-गुणवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं और इनसे अनन्त-गुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यहाँ उक्त छह वृद्धियोंमें परम्परासे कौन वृद्धि कितनी गुणी है, इस बातका विचार किया गया है। तात्पर्य यह है कि वृद्धियोंकी अनन्तभागवृद्धि आदि संज्ञा अनन्तर पूर्वस्थानकी अपेक्षासे है। किन्तु परम्परासे इन वृद्धियोंको देखने पर कौन वृद्धिस्थान किस वृद्धिस्थानोंसे कितने गुणे हैं, इस बातका विचार इस प्ररूपणामें किया गया है। यह तो स्पष्ट ही है कि षट्स्थानप्ररूपणामें अनन्तभागवृद्धिस्थान काण्डकप्रमाण होनेपर असंख्यातभागवृद्धिस्थान उपलब्ध होता है। यतः ये अनन्त... वृद्धिस्थान काण्डकमात्र हैं अतः वे सबसे थोड़े कहे हैं। इसके बाद प्रथम असंख्यात-भागवृद्धिस्थानसे लेकर प्रथम संख्यातभागवृद्धिस्थानके प्राप्त होने तक मध्यमें जितने भी अनन्त-भागवृद्धिस्थान और असंख्यातभागवृद्धिस्थान आये हैं, वे सब परम्परासे असंख्यातभागवृद्धिरूप ही हैं। यतः ये स्थान काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंसे एक अधिक काण्डक गुणित हैं, अतः ये असंख्यातगुणे कहे हैं। इसके बाद प्रथम संख्यातभागवृद्धिस्थानसे लेकर प्रथम संख्यात-गुणवृद्धिस्थानके प्राप्त होनेके पूर्व ही बीचके अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि और संख्यातभाग-वृद्धिरूप सब स्थानोंके उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण जानेपर साधिक दुगुनी वृद्धि हो जाती है। यतः ये बीचके संख्यातभागवृद्धिरूपस्थान उत्कृष्ट संख्यातसे कुछ न्यून ही हैं, अतः यहाँ असंख्यातभागवृद्धिस्थानोंसे संख्यातभागवृद्धिस्थान संख्यातगुणे कहे हैं। इसके आगे ये संख्यातगुणवृद्धिस्थान चालू होकर जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण हो, उतने बार जाकर प्रथम असंख्यातगुण-वृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। अब यदि यहाँ उत्पन्न हुए प्रथम असंख्यातगुणवृद्धिस्थानको छोड़कर उसके पूर्व संख्यातभागवृद्धिरूप अन्तिम स्थानसे लेकर यहाँ तकके इन बीचके स्थानोंका संकलन किया जाय, तो वे संख्यातभागवृद्धिस्थानोंसे संख्यातगुणे ही उपलब्ध होते हैं। अतः यहाँ संख्यात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवसमुदाहारो

२८७. जीवसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि—एयट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो सांतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीवकालपमाणाणुगमो वड्ढिपरूवणा जवमज्झपरूवणा फोसणपरूवणा अप्पाबहुए] त्ति ।

२८८. एयट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण एक्केक्कम्मि ट्ठाणे जीवा अणंता ।

२८९. णिरंतरट्ठाणजीवाणुगमेण जीवेहि अविरहिदाणि ट्ठाणाणि ।

२९०. सांतर० जीवेहि अविरहिदाणि ट्ठाणाणि ।

२९१. णाणाजीवकालाणुगमेण एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि णाणाजीवो केवचिरं कालादो होदि ? सव्वद्धा ।

भागवृद्धिस्थानोंसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान संख्यातगुणे कहे हैं । इसके आगे जो प्रथम असंख्यातगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न हुआ है,उससे लेकर अंगुलके असंख्यातवेंभागगुणे स्थान जाने तक बीचमें जितने भी अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिरूप स्थान उपलब्ध होते हैं,वे सब परम्परोपनिधासे असंख्यातगुणवृद्धिको लिए हुए ही हैं । यतः ये स्थान संख्यातगुणवृद्धिस्थानोंसे असंख्यातगुणे कहे हैं । इसके आगे सब असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थानोंमें जो अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा अनन्तभागवृद्धि आदि स्थान हैं,वे सब परम्परोपनिधाकी अपेक्षा अनन्तगुणवृद्धिको लिए हुए ही हैं । यतः ये असंख्यातगुणे हैं, अतः यहाँ असंख्यातगुणवृद्धिस्थानोंसे अनन्तगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे कहे हैं ।

जीवसमुदाहार

२८७. अब जीवसमुदाहारका प्रकरण है । उसमें ये आठ अनुयोगद्वार होते हैं—एकस्थानजीवप्रमाणानुगम, निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकालप्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ।

२८८. एकस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा एक-एक स्थानमें जीव अनन्त हैं ।

विशेषार्थ—सब अनुभागबन्धस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं । उनमेंसे प्रत्येक स्थानमें कितने जीव होते हैं,यह इस अनुयोगद्वारमें बतलाया गया है । इसमें प्रत्येक स्थानमें अनन्त जीव होते हैं,ऐसा निर्देश किया है सो यह प्ररूपणा स्थावर जीवोंकी मुख्यतासे जाननी चाहिए । त्रस जीवोंकी अपेक्षा विचार करनेपर प्रत्येक स्थानमें त्रस जीव कमसे कम एक, दो या तीन और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं ।

२८९. निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंसे युक्त सब स्थान हैं ।

विशेषार्थ—ये जो असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबन्धस्थान बतलाये हैं, उनमेंसे प्रत्येकमें स्थावर जीव पाये जाते हैं,इसलिए इस अपेक्षासे कोई भी स्थान जीवोंसे रहित नहीं होता । किन्तु त्रस जीवोंकी अपेक्षा इन स्थानोंमेंसे कमसे कम एक, दो या तीन स्थान जीवोंसे युक्त होते हैं और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जीवोंसे युक्त होते हैं ।

२९० सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंसे युक्त सब स्थान हैं ।

विशेषार्थ—यह पहले ही बतला आये हैं कि जितने अनुभागबन्धस्थान होते हैं,उन सबमें स्थावर जीव उपलब्ध होते हैं, अतः स्थावर जीवोंकी अपेक्षा एक भी सान्तरस्थान उपलब्ध नहीं होता । किन्तु त्रसजीवोंकी अपेक्षा विचार करनेपर जीवोंसे रहित कमसे कम एक, दो या तीन स्थान सान्तर होते हैं और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण स्थान सान्तर होते हैं ।

२९१. नानाजीवकालप्रमाणानुगमकी अपेक्षा एक-एक स्थानमें नाना जीवोंका कितना काल है ? सब काल है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६२. वड्ढिपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च। अणंतरोवणिधाए जहण्णए[1] अज्झवसाणट्ठाणे जीवा थोवा। विदिए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाहिया। तदिए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसे०। एवं विसेसाधिया [विसेसाधिया] याव यवमज्झं। तेण परं विसेसहीणा। एवं विसेसहीणा विसेसहीणा याव उक्कस्सयं[2] अज्झवसाणट्ठाणं त्ति।

३६३. परंपरोवणिधाए जहण्णअज्झवसाणट्ठाणेहिंतो तदो असंखेंज्जा लोगा गंतूण दुगुणवड्ढिदा। एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा याव यवमज्झं। तेण परं असंखेंज्जलोगं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा याव उक्कस्सयं अज्झवसाणट्ठाणं त्ति। एयजीवज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं असंखेंज्जा लोगा। णाणाजीवज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि आवलि०[3] असं०। णाणाजीवज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एयजीवज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि असंखेंज्जगुणाणि।

विशेषार्थ—इन सब अनुभागबन्धस्थानोंमें यह काल स्थावर जीवोंकी मुख्यतासे बतलाया गया है। त्रस जीवोंकी अपेक्षा विचार करनेपर एक-एक स्थानमें त्रस जीवोंके रहनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि यद्यपि एक स्थानमें एक जीवके रहनेका उत्कृष्ट काल आठ समय ही है, पर निरन्तर क्रमसे एकके बाद दूसरा जीव उस स्थानको प्राप्त करता रहे, तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक एक स्थानमें त्रस जीवोंका सद्भाव देखा जाता है।

३६२. वृद्धिप्ररूपणाकी अपेक्षा उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। *इससे दूसरे अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं। इससे तीसरे अध्यवसानस्थानमें जीव* विशेष अधिक हैं। इसीप्रकार यवमध्यके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थानमें जीव विशेष अधिक विशेष अधिक हैं। तथा उससे आगे उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थानमें जीव उत्तरोत्तर विशेष हीन विशेष हीन हैं।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान अतिविशुद्धिके बिना हो नहीं सकता और अतिविशुद्धिको लिए हुए जीव बहुत थोड़े होते हैं, इसलिए जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानमें सबसे थोड़े जीव कहे हैं। आगे यवमध्यतक वे विशेष अधिकके क्रमसे बढ़ते जाते हैं और यवमध्यके बाद वे विशेष अधिकके क्रमसे हीन-हीन होते जाते हैं।

३६३. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा जो जघन्य अध्यवसानस्थान हैं, उससे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर वे जीव दूनी वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इसीप्रकार यवमध्यतक दूने-दूने होते गये हैं। उससे आगे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर वे दूने हीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होनेतक वे दूने-दूने हीन होते जाते हैं। एक जीव अध्यवसानद्विगुणवृद्धिद्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण हैं। नानाजीव अध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानाजीव अध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एक जीव अध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।

---

१. ता० आ० प्रत्योः जहण्णिए इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः उक्कस्सियं इति पाठः। ३. ता० प्रतौ अवद्विदि० आ० प्रतौ अवट्ठि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६४. यवमज्झपरूवणदाए ट्ठाणाणं असंखेज्जदिभागे यवमज्झं। यवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि। उवरि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।

३६५. फोसणपरूवणदाए तीदे काले एयजीवस्स उक्कस्सए अज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो थोवो। जहण्णए अज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो असं०गुणो। कंडयस्स फोसणकालो तत्तियो चेव। यवमज्झे फोसणकालो असं०गुणो। कंडयस्स उवरि फोसणकालो असं०गुणो। यवमज्झस्स हेट्ठदो कंडयस्स उवरिं फोसणकालो[1] असं०गुणो। यवमज्झस्स उवरिं कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो तत्तियो चेव। यवमज्झस्स उवरिं फोसणकालो विसेसाधियो। कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो विसेसाधियो। कंडयस्स उवरिं फोसणकालो विसेसाधियो। सव्वेसु ट्ठाणेसु फोसणकालो विसेसाधियो।

३६४. यवमध्यप्ररूपणाकी अपेक्षा सब स्थानोंके असंख्यातवें भागमें यवमध्य होता है। यवमध्यके नीचेके स्थान स्तोक हैं। इनसे ऊपरके स्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—नीचे चार समयवाले स्थानोंसे लेकर उपरिम दो समयवाले स्थानोंके असंख्यातवें भागप्रमाण जाकर यवमध्य होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस हिसाबसे यवमध्यके नीचेके स्थान स्तोक होते हैं और इनसे उपरिम स्थान असंख्यातगुणे होते हैं।

३६५. स्पर्शनप्ररूपणाकी अपेक्षा अतीत कालमें एक जीवका उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल स्तोक है। इससे जघन्य अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। काण्डकका स्पर्शनकाल उतना ही है। इससे यवमध्यमें स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे काण्डकके ऊपर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे यवमध्यके नीचे और काण्डकके ऊपर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। इससे यवमध्यके ऊपर और काण्डकके नीचे स्पर्शनकाल उतना ही है। इससे यवमध्यके ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे काण्डकके नीचे स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे काण्डकके ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे सब स्थानोंमें स्पर्शनकाल विशेष अधिक है।

विशेषार्थ—यहाँ चतुःसमयिक आदि स्थानोंमेंसे किस स्थानको एक जीवने कितने काल तक स्पर्श किया है, इसका विचार किया गया है। इसीका ज्ञान करानेके लिए यहाँ अल्पबहुत्व दिया गया है। उसका खुलासा इस प्रकार है—

उत्कृष्ट अध्यवसान स्थान द्विसमयिक है। इसका स्पर्शनकाल सबसे थोड़ा कहा है। जघन्य अध्यवसानस्थान प्रारम्भका चतुःसमयिक है। इसकी काण्डक संज्ञा भी है। इसका स्पर्शनकाल द्विसमयिकसे असंख्यातगुण कहा है। अगले चतुःसमयिककी भी काण्डक संज्ञा है। इसका स्पर्शनकाल पहले चतुःसमयिकके समान कहा है। आठसमयिककी यवमध्य संज्ञा है। इसका स्पर्शनकाल चतुःसमयिकसे असंख्यातगुणा कहा है। यवमध्यसे पूर्वके और काण्डकसे आगेके ५, ६ और ७ समयिक स्थान हैं। इनका स्पर्शनकाल आठसमयिक स्थानसे असंख्यातगुणा कहा है। यवमध्यसे आगेके और काण्डकसे पहलेके ७, ६ और ५ समयिक स्थानों का स्पर्शनकाल पिछले ५, ६ और ७ समयिक स्थानोंके स्पर्शनकालके बराबर कहा है। इससे यवमध्यसे आगेके अर्थात् ७, ६, ५, ४, ३, २ समयिक स्थानोंका स्पर्शनकाल विशेष अधिक कहा है। इससे काण्डक अर्थात् अगले चतुःसमयिकसे पहलेके अर्थात् ५, ६, ७, ८, ७, ६, ५ और ४ समयिक स्थानोंका स्पर्शनकाल विशेष अधिक कहा है। इससे प्रारम्भके काण्डकसे आगेके अर्थात् ५, ६, ७, ८, ७, ६, ५, ४, ३ और २

1. आ० प्रतौ यवमज्झस्स उवरिं कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९६. अप्पाबहुगें त्ति सव्वत्थोवा उकस्सए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा। जहण्णए अज्झवसाणट्ठाणे जीवा असं०गुणा। कंडए जीवा तत्तिया चेव। यवमज्झे जीवा असं०-गुणा। कंडयस्स उवरिं जीवा असं०गुणा। यवमज्झस्स उवरिं कंडयस्स हेट्ठदो जीवा असं०गुणा। कंडयस्स उवरिं यवमज्झस्स हेट्ठदो जीवा तत्तिया चेव। यवमज्झस्स उवरिं जीवा विसे०। कंडयस्स हेट्ठदो जीवा विसे०। कंडयस्स उवरिं जीवा विसे०। सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा विसेसाधिया।

एवं जीवसमुदाहारें त्ति समत्तमणियोगद्दाराणि।

एवं मूलपगदिअणुभागबंधो समत्तो।

समयिक स्थानोंका स्पर्शनकाल विशेष अधिक कहा है। और इससे सब स्थानोंका अर्थात् ४, ५, ६, ७, ८, ७, ६, ५, ४, ३ और २ समयिक स्थानोंका स्पर्शनकाल विशेष अधिक कहा है।

३९६. अल्पबहुत्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं। काण्डकके जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यके जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे काण्डकके ऊपर जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे यवमध्यके ऊपर और काण्डकके नीचे जीव असंख्यातगुणे हैं। काण्डकके ऊपर और यवमध्यके नीचे जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यके ऊपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकके नीचे जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकके ऊपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सब स्थानोंमें जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार जीवसमुदाहार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिबन्ध समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ उत्तरपगदिअणुभागबंधो

३९७. एत्तो उत्तरपगदिअणुभागबंधो पुव्वं गमणिज्जो[1]। तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—णिसेगपरूवणा फद्दयपरूवणा च।

णिसेयपरूवणा

३९८. णिसेगपरूवणदाए णाणावरणीय०४–दंसणावरणीय०३–सादासाद०-चदुसंज०-णवणोक०[2]-चदुआउ० सव्वाओ णामपगदीओ णीचुच्चागोदं पंचंतराइगाणं देसघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादूण णिसेगो। उवरिं अप्पडिसिद्धं। केवलणाणा०–छदंसणा०–बारसकसायाणं सव्वघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादूण णिसेगो। उवरिं अप्पडिसिद्धं। मिच्छत्तं यम्हि सम्मामिच्छत्तं णिट्ठिदं तदो अणंतरं सव्वघादिफद्दयाणं आदिवग्गणाए आदिं कादूण णिसगो। उवरिं अप्पडिसिद्धं।

एवं णिसेगपरूवणा त्ति समत्तमणियोगद्दारं।

---

२ उत्तरप्रकृति अनुभागबन्ध

३९७. इससे आगे उत्तरप्रकृति अनुभागबन्ध पहलेके समान जानना चाहिये। उसमें ये दो अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। यथा—निषेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणा।

निषेकप्ररूपणा

३९८. निषेकप्ररूपणाकी अपेक्षा चार ज्ञानावरणीय, तीन दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, नौ नोकषाय, चार आयु, सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनके देशघाति स्पर्धकोंकी आदि वर्गणासे लेकर निषेक होते हैं। और वे आगे बराबर चले गये हैं। केवलज्ञानावरण, छह दर्शनावरण और बारह कषायोंके सर्वघाति-स्पर्धकोंकी आदि वर्गणासे लेकर निषेक होते हैं। और वे अन्ततक बराबर चले गये हैं। मिथ्यात्वके जहाँपर सम्यग्मिथ्यात्व समाप्त होता है, वहाँसे आगे सर्वघाति स्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणासे लेकर निषेक होते हैं और वे आगे बराबर चले गये हैं।

विशेषार्थ—कर्मसिद्धान्तके नियमानुसार प्रत्येक कर्मकी निषेक रचना जिस कर्मकी जितनी स्थिति होती है, उसके अन्ततक पाई जाती है। साधारणतः कर्म दो भागोंमें विभक्त हैं—सर्वघाति और देशघाति। यह विभाग अनुभागबन्धकी मुख्यतासे किया गया है। इसलिये इन दोनों प्रकारके कर्मोंके निषेक प्रथम समयसे लेकर अन्ततक पाये जाते हैं। मिथ्यात्वकर्मको छोड़कर शेष जितने कर्म हैं, इन सबकी यह व्यवस्था जाननी चाहिये। मात्र मिथ्यात्वकर्मकी व्यवस्थामें कुछ अन्तर है। उपशमसम्यक्त्वरूप परिणामोंके कारण जब मिथ्यात्वके तीन विभाग हो जाते हैं, तब अनुभागकी अपेक्षा लताभाग और दारुका कुछ भाग सम्यक्त्वमोहनीयको प्राप्त होता है। इसके आगे दारुका कुछ भाग सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयको प्राप्त होता है। और शेष अनुभाग मिथ्यात्वमोहनीयको प्राप्त होता है। इसी कारणसे यहाँपर जहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभाग समाप्त होता है, उससे आगेका भाग मिथ्यात्व मोहनीयका कहा है।

इसप्रकार निषेकप्ररूपणा अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

---

१ ता० प्रतौ गमणिज्जं इति पाठः। २ ता० प्रतौ णवरि णोकसा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फद्दयपरूवणा

३९९. फद्दयपरूवणदाए अणंताणंताणं अविभागपलिच्छेदाणं समुदयसमागमेण एगो वग्गो भवदि । एवं मूलपगदिभंगो कादव्वो ।

४००. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चदुवीसमणियोगद्दाराणि—सण्णा सव्वबंधो णोसव्वबंधो एवं याव अप्पाबहुगे त्ति । भुजगार०[1] पदणिक्खेओ वड्ढिबंधो अज्झवसाण-समुदाहारो जीवसमुदाहारे त्ति ।

१ सण्णा

४०१. तत्थ वि सण्णा दुविधा[2]—घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा च । घादिसण्णा णाणवर०४-दंसणा०[3] ३-चदुसंज०-णवणोक०-पंचंतरा० उक्कस्सअणुभागबंधो सव्वघादी । अणुक्कस्स-अणुभागबंधो सव्वघादी वा देसघादी वा । जहण्णओ अणुभागबंधो देसघादी । अजहण्णओ अणुभागबंधो देसघादी वा सव्वघादी वा । केवलणाणा०-छदंसणा०-मिच्छत्त-बारसक० उक्कस्स-अणुक्कस्स-जह०-अजह०अणुभागबंधो सव्वघादी । सेसाणं सादासाद० चदुआउ० सव्वाओ णामपगदीओ णीचुच्चा० उक्क०-अणु०-जह०-अज०अणुभाग० अघादी घादिपडिभागो ।

स्पर्द्धकप्ररूपणा

३९९. स्पर्धकप्ररूपणाकी अपेक्षा अनन्तानन्त अविभागप्रतिच्छेदोंके समुदायसे एक वर्ग निष्पन्न होता है । इसीप्रकार मूलप्रकृतिबन्धके अनुसार कथन करना चाहिये ।

४००. इस अर्थपदके अनुसार वहाँपर ये चौबीस अनुयोगद्वार होते हैं—संज्ञा, सर्वबन्ध और नोसर्वबन्धसे लेकर अल्पबहुत्व तक । भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धिबन्ध, अध्यवसान-समुदाहार और जीवसमुदाहार ।

१ संज्ञा

४०२. उसमें भी संज्ञा दो प्रकारकी है—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा । घातिसंज्ञाकी अपेक्षा चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, चार संज्वलन, नौ नोकषाय और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वघाति है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वघाति भी होता है और देशघाति भी होता है । जघन्य अनुभागबन्ध देशघाति है । अजघन्य अनुभागबन्ध सर्वघाति भी होता है और देशघाति भी होता है । केवलज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, मिथ्यात्व और बारह कषाय इनका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सर्वघाति होता है । शेष सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध घातिके प्रतिभागके अनुसार अघाति होता है ।

विशेषार्थ—यह हम पहले कह आये हैं कि अनुभागबन्ध दो प्रकारका होता है—घाति और अघाति । जो जीवके अनुजीवी गुणोंका घात करनेवाला अनुभागबन्ध होता है, उसे घाति कहते हैं । तथा जो जीवके प्रतिजीवी गुणोंका घात करनेवाला अनुभागबन्ध होता है, उसे अघाति कहते हैं ।

---

१ ता० प्रतौ भुजगारा० इति पाठः । २ ता० प्रतौ वि दुस्सण्णा (सण्णा) दुविधा इति पाठः । ३ ता० आ० प्रत्योः दंसणा० ४ चदुसंज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०२. ट्ठाणसण्णा च णाणावर०[४]–दंसणावर०३–चदुसंज०-पुरिस०-पंचंत० उक्कस्सअणुभाग० चदुट्ठाणियो। अणुक्क० चदुट्ठाणियो वा तिट्ठाणियो वा बिट्ठाणियो वा एयट्ठाणियो वा। जह० अणुभा० एयट्ठाणियो। अज० एयट्ठाणि० वा बिट्ठा० वा तिट्ठा० वा चदुट्ठा० वा। केवलणा०–छदंसणा०-सादासाद०-मिच्छत्त०-बारसक०-अट्ठणोक०-चदुआयु० सव्वाओ णाम०पगदीओ णीचुच्चागो० उक्क० अणुभा० चदुट्ठा०। अणुक्क० अणुभा० चदुट्ठा० तिट्ठा० बिट्ठा० वा। जह० अणुभा० बिट्ठा०। अजह० बिट्ठाणगो० तिट्ठा० चदुट्ठा०।

घाति अनुभागबन्धके दो भेद हैं—देशघाति और सर्वघाति। देशघाति अनुभागबन्ध जीवके अनुजीवी गुणोंका एकदेश घात करता है। इसके उदयकालमें जीवका अनुजीवी गुण प्रगट तो रहता है, परन्तु वह समल रहता है। उदाहरणार्थ—मतिज्ञान मतिज्ञानावरणकर्मके देशघाति स्पर्धकोंके उदयसे और सर्वघाति स्पर्धकोंके अनुदयसे होता है। यहाँ मतिज्ञानका जो अंश प्रकाशमान है, वह मतिज्ञानावरणकर्मके सर्वघातिस्पर्धकोंके अनुदयका कार्य है। और जितने अंशमें उसमें सदोषता है, वह मतिज्ञानावरणकर्मके देशघातिस्पर्धकोंके उदयका कार्य है। इससे स्पष्ट है कि सर्वघातिस्पर्धक जीवके अनुजीवी गुणका सामस्त्येन घात करता है और देशघाति स्पर्धक एकदेश घात करता है। यहाँपर मतिज्ञानावरणादि चार ज्ञानावरण, चक्षुःदर्शनावरण आदिक तीन दर्शनावरण, चार संज्वलन, नौ नोकषाय और पाँच अन्तराय इनमें दोनों प्रकारके स्पर्धकोंका सद्भाव बतलाया है। तथा शेष घातिकर्मोंमें केवल सर्वघाति स्पर्धकोंका सद्भाव बतलाया है। अघातिकर्मोंका स्पर्धक जीवके अनुजीवी गुणों का सर्वथा घात करनेमें असमर्थ होता है, इसलिए अघाति कहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह जीवके किसी भी गुणका घात नहीं करता। घात तो वह भी करता है, परन्तु अनुजीवी गुणोंका घात नहीं करता, इतना अभिप्राय उक्त कथनका जानना चाहिये।

४०२. स्थानसंज्ञाकी अपेक्षा चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानिक होता है। अनुकृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानिक होता है, त्रिस्थानिक होता है, द्विस्थानिक होता है और एकस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानिक होता है। तथा अजघन्य अनुभागबन्ध एकस्थानिक होता है, द्विस्थानिक होता है, त्रिस्थानिक होता है, और चतुःस्थानिक होता है। केवलज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, बारह कषाय, आठ नोकषाय, चार आयु, सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानिक होता है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध चतुःस्थानिक होता है, त्रिस्थानिक होता है अथवा द्विस्थानिक होता है। जघन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानिक होता है। अजघन्य अनुभागबन्ध द्विस्थानिक होता है, त्रिस्थानिक होता है और चतुःस्थानिक होता है।

विशेषार्थ—श्रेणी के नौवें गुणस्थानके अन्तिम भागसे एक स्थानिक अनुभागबन्ध सम्भव है। यही कारण है कि चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायका जघन्य, अजघन्य और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध एकस्थानिक भी कहा है। इनके सिवा अन्य कर्मोंका एकस्थानिक अनुभागबन्ध सम्भव नहीं है। इसलिए उनका अनुभागबन्ध एकस्थानिक नहीं कहा है। यद्यपि केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणका भी दसवें गुणस्थान तक बन्ध होता है, पर सर्वघाति होनेसे उनका एकस्थानिक अनुभागबन्ध नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२-७ सव्व-णोसव्वबंधो उक्कस्सादिबंधो य

४०३. यो सो सव्वबंधो० णाम उक्क० अणुक्क० जह० अज० मूलपगदिभंगो कादव्वो।

८-११ सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधो

४०४. यो सो सादि०४ तस्स इमो णिद्देसो–पंचणाणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-अप्पसत्थवण्ण०४–उवघाद०-पंचंत० उक्क० अणुक्क० जहण्ण० किं सादि०४ ? सादिय-अद्धुवबंधो। अज० किं सादि० ४ ? सादियबंधो वा० ४। तेजा०-क०-पसत्थ०वण्ण०४–अगु०-णिमि० अणु० चत्तारिभंगो। सेसं तिण्णिपदा सेसाणं च कम्माणं चत्तारिपदा किं सादि० ४ ? सादिय-अद्धुवबंधो[1]।

२-७ सर्व-नोसर्वबन्ध तथा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-जघन्य-अजघन्यबन्ध

४०३. जो सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध है तथा उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य बन्ध है, उसका भङ्ग मूल प्रकृतिबन्ध के समान जानना चाहिये।

८-११ सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्ध

४०४ जो सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव बन्ध है, उसका यह निर्देश है। उसकी अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभागबन्ध क्या सादि है, अनादि है, ध्रुव है या अध्रुव है ? सादि और अध्रुवबन्ध है। अजघन्य अनुभागबन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि है, अनादि है, ध्रुव है और अध्रुव है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण के अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके चार भङ्ग हैं। इनके शेष तीन पद तथा शेष कर्मोंके चारों पद क्या सादि हैं, अनादि है, ध्रुव हैं या अध्रुव हैं ? सादि और अध्रुव हैं।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय इन चौदह प्रकृतियोंका क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें, चार संज्वलनोंका अनिवृत्तिबादरक्षपकके अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें, निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका क्षपक अपूर्वकरणके अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें, चार प्रत्याख्यानावरणका संयमको प्राप्त होनेवाले देशसंयतके अतिन्म समयमें चार अप्रत्याख्यानावरणका क्षायिक सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होनेवाले अविरतसम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयमें, स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका सम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभागबन्ध होता है; यतः वह सादि और अध्रुव है, इसलिए इनका जघन्य अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव कहा है। तथा इनके जघन्य अनुभागबन्धके प्राप्त होनेके पहले इन सब प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है जो अपनी-अपनी व्युच्छित्तिके पूर्व तक अनादि है और यथायोग्य स्थानमें व्युच्छित्ति होनेके बाद लौटकर पुनः बन्ध होनेपर सादि है। तथा ध्रुव और अध्रुव क्रमसे भव्य और अभव्यकी अपेक्षा होते हैं, इसलिए इनका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि आदिके भेदसे चार प्रकारका कहा है। तथा इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चार गतिका पर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट संक्लेश

१ ता० प्रतौ –बंधो ३ (?) इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२ सामित्तपरूवणा

४०५. एत्तो सामित्तस्स कच्चे[1] तत्थ इमाणि तिण्णि—पच्चयपरूवणा विपाकदेसो[2] पसत्थापसत्थपरूवणा त्ति।

४०६. पच्चयपरूवणदाए पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-अट्ठक०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-देवाउ०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्विय०[3]अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-देवाणुपु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-उच्चागो०-पंचंत०६५ एत्तो एक्केक्स्स पगदीओ मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं। सादावे० मिच्छत्तपच्चयं

परिणामोंसे करता है। यतः इसकी प्राप्ति अन्तर देकर पुनः-पुनः सम्भव है और उत्कृष्टके बाद अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी इसी प्रकार होता रहता है। अतः इन पूर्वोक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकारका कहा है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण इनका क्षपक अपूर्वकरणके अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए वह सादि और अध्रुव होनेसे इन आठ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धको सादि और अध्रुव कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धके प्राप्त होनेके पूर्व इन सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है जो उपशम श्रेणीमें अपनी बन्ध व्युच्छित्तिके पूर्वतक अनादि है और व्युच्छित्ति होनेके बाद लौटकर पुनः इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होनेपर वह सादि है। ध्रुव और अध्रुव भंग पहलेके समान हैं। इस प्रकार इन आठ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धमें सादि आदि चारों विकल्प घटित हो जानेसे वह चार प्रकारका कहा है। अब रहे इन आठ प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभाग बन्ध सो इनका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीवके उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है। यतः इसकी प्राप्ति अन्तर देकर पुनः-पुनः सम्भव है और जघन्यके बाद उसी क्रमसे इनका अजघन्य अनुभाग-बन्ध होता है। अतः इन आठ प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकारका कहा है। यह सैंतालीस ध्रुव बन्धवाली प्रकृतियोंका विचार है। इनके अतिरिक्त जो ७३ अध्रुव बन्धवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका बन्ध कादाचित्क होनेसे उनके उत्कृष्ट आदि चारों प्रकारके अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकारके होते हैं, यह कहा है।

१२ स्वामित्वप्ररूपणा

४०५. इससे आगे स्वामित्वका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—प्रत्यय-प्ररूपणा, विपाकदेश और प्रशस्ताप्रशस्तप्ररूपणा।

४०६. प्रत्ययप्ररूपणाकी अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त और अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन पैंसठ प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येक प्रकृतिका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय और

---

१ ता० प्रतौ कच्चे (?) इति पाठः। २ ता० प्रतौ विपाकदेसू० इति पाठः। ३ ता० आ० प्रत्योः चदु०वेउव्विय-वेउव्विय० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंजमपच्चयं कसायपच्चयं जोगपच्चयं। मिच्छ०-णवुंस०-णिरयाउग०-चदुजादि-हुंड०-असंप०-णिरयाणु०-आदाव०-थावरादि०४ मिच्छत्तपच्चयं। थीणगिद्धि०३-अट्ठकसा०-इत्थि०-तिरिक्खा०-मणुसायु०-तिरिक्ख-मणुसग०-ओरालि०-चदुसंठा०-ओरालि० अंगो०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं। आहारदुगं संजमपच्चयं। तित्थयरं सम्मत्तपच्चयं।

४०७. विपाकदेसो णाम मदियावरणं जीवविपाका। चदु आउ० भवविपाका। पंचसरीर०-छस्संठ्ठाण-तिण्णिअंगो०-छस्संघड०-पंचवण्ण०-दुगंध-पंचरस०-अट्ठप०-अगुरु०-उप०-पर०-आदाउज्जो०-पत्तेय०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ०-णिमिणं एदाओ पुग्गलविपाकाओ। चदुण्णं आणु० खेत्तविपाका०। सेसाणं मदियावरणभंगो।

कषायप्रत्यय होता है। सातावेदनीयका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कषायप्रत्यय और योगप्रत्यय होता है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, चार जाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावरआदि चारका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, आठ कषाय, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय और असंयमप्रत्यय होता है। आहारकद्विकका बन्ध संयमप्रत्यय होता है और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वप्रत्यय होता है।

विशेषार्थ—मुख्य प्रत्यय चार हैं—मिथ्यात्व प्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कषाय प्रत्यय और योग प्रत्यय। मिथ्यात्वप्रत्यय प्रथम गुणस्थानमें होता है। असंयमप्रत्यय चौथे गुणस्थानतक होता है। कषायप्रत्यय दशवें गुणस्थानतक होता है। और योगप्रत्यय तेरहवें गुणस्थानतक होता है। जिन प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है, आगे नहीं होता, उनको यहाँ मिथ्यात्वप्रत्यय कहा है। जिनका बन्ध चौथे गुणस्थानतक होता है, आगे नहीं होता, उनको यहाँ मिथ्यात्वप्रत्यय और असंयमप्रत्यय कहा है। जिनका बन्ध दशवें गुणस्थानतक होता है, आगे नहीं होता, उनको यहाँ मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय और कषायप्रत्यय कहा है। सातावेदनीयका बन्ध तेरहवें गुणस्थानतक होता है, इसलिये उसे मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कषायप्रत्यय और योगप्रत्यय कहा है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विकका बन्ध संयमके सद्भावमें और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वके सद्भावमें होता है। इसलिये इनको तत्तत्प्रत्यय कहा है। यद्यपि मिथ्यात्वके रहते हुए असंयम, कषाय और योग अवश्य पाये जाते हैं। असंयमके सद्भावमें मिथ्यात्व पाया जाता है और नहीं भी पाया जाता है। पर कषाय और योग अवश्य पाये जाते हैं। कषायके सद्भावमें पूर्वके दो पाये भी जाते हैं और नहीं भी पाये जाते हैं; परन्तु योग अवश्य पाया जाता है और योगके सद्भावमें पहलेके तीन पाये भी जाते हैं और नहीं भी पाये जाते हैं। इसलिये यहाँ जिन प्रकृतियोंका मिथ्यात्वप्रत्यय बन्ध कहा है, उनके बन्धके समय असंयम, कषाय और योग अवश्य होते हैं। मात्र मिथ्यात्वकी प्रधानता होनेसे उनका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय कहा है। इसीप्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिये।

४०७. विपाकदेशकी अपेक्षा मतिज्ञानावरण जीवविपाकी है। चार आयु भवविपाकी हैं; पाँच शरीर, छह संस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और निर्माण ये पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं। चार आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मतिज्ञानावरणके समान हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०८. पसत्थापसत्थपरूवणदाए पंचणा०–णवदंसणा०–असादा०–मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-णिरयाउ०-दोगदि०-चदुजादि–पंचसंठा०–पंचसंघ०–अप्पसत्थवण्ण०४–दोआणु०–उप०–अप्पसत्थवि०–थावरादि०४–अथिरादिछ०–णीचा०–पंचंतरा० ८२ एदाओ पगदीओ अप्पसत्थाओ। सादावेद०-तिण्णिआउ०-दोगदि०-पंचिंदि०-पंचसरीर०-समचदु०-तिण्णिअंगो०-वज्जरिस०–पसत्थवण्ण०४–दोआणु०–उप०-उस्सा०-आदाउज्जो०-पसत्थ०-तस०४–थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० ४२ एदाओ पगदीओ पसत्थाओ।

एवं पसत्थापसत्थपरूवणा समत्ता।

विशेषार्थ—ये जो बन्धकी अपेक्षा १२० प्रकृतियाँ बतलाई हैं उनके विपाकका आधार क्या है,इस दृष्टिको स्पष्ट करनेके लिए विपाकदेश अधिकार आया है। सब प्रकृतियाँ ४ भागोंमें विभक्त की गई हैं—जीवविपाकी, भवविपाकी, पुद्गलविपाकी और क्षेत्रविपाकी। जीवके ज्ञानादि गुणों और विविध नरकादि अवस्थाओंके हेतुरूपसे जिन प्रकृतियोंका विपाक होता है,वे जीवविपाकी प्रकृतियाँ हैं। नरक-भव आदिके हेतुरूपसे जिनका विपाक होता है,वे भवविपाकी प्रकृतियाँ हैं। शरीर, वचन और मनके कारणरूप पुद्गलोंको जीवोपयोगी बनानेमें जिन प्रकृतियोंका विपाक होता है,वे पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं और एक गतिसे दूसरी गतिमें जाते समय विग्रहगतिमें जिन प्रकृतियोंका विपाक होता है,वे क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ हैं। यद्यपि रति और अरति आदि बहुत-सी जीवविपाकी प्रकृतियोंका स्त्री व कण्टक आदि के निमित्तसे विपाक देखा जाता है, पर इतने मात्रसे वे पुद्गलविपाकी नहीं कही जा सकतीं; क्योंकि ये स्त्री आदि पदार्थ रति आदिके विपाकमें नोकर्म अर्थात् सहकारी कारण हैं, उनके फल नहीं। जब कि शरीरादि पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके ही कार्य हैं, इसलिए रति आदि जीवविपाकी प्रकृतियोंसे पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंमें और उनके फलमें महान् अन्तर है।

४०८. प्रशस्ताप्रशस्तकी प्ररूपणा करनेपर पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, नरकायु, दो गति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय ये ब्यासी प्रकृतियाँ अप्रशस्त हैं। सातावेदनीय, तीन आयु, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र ये ब्यालीस प्रकृतियाँ प्रशस्त हैं।

विशेषार्थ—यहाँ प्रशस्ताशस्तप्ररूपणामें पाँच ज्ञानावरण आदि ८२ प्रकृतियोंको अप्रशस्त और सातावेदनीय आदि ४२ प्रकृतियोंको प्रशस्त बतलाया है। सो इसका कारण यह है कि अप्रशस्त परिणामोंकी तीव्रतासे पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है और प्रशस्त परिणामोंकी उत्कृष्टतामें सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। यहाँ प्रकृतियोंमें प्रशस्त और अप्रशस्तका भेद अनुभागकी दृष्टिसे ही किया गया है। तात्पर्य यह है कि जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध प्रशस्त परिणामोंसे और जघन्य अनुभागबन्ध अप्रशस्त परिणामोंसे होता है वे प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। तथा जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रशस्त परिणामोंसे और जघन्य अनुभागबन्ध प्रशस्त परिणामोंसे होता है व अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। यद्यपि बन्ध प्रकृतियाँ कुल १२० हैं,पर यहाँ १२४ गिनाई हैं सो वर्णचतुष्कके प्रशस्त वर्णचतुष्क और अप्रशस्त वर्णचतुष्क ऐसा विभाग करके उनकी दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंमें परिगणना की गई है, इसलिए कुल प्रकृतियाँ १२० होनेपर भी यहाँ दोनों मिलाकर १२४ प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं।

इसप्रकार प्रशस्ताप्रशस्तप्ररूपणा समाप्त हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०९. एदेण अट्ठपदेण सामित्तं दुविधं—जह० उक्क० । उक्कस्सए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक० हुंडसंठा०-अप्पसत्थवण्ण०४—उप०-अप्पसत्थ०—अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्कस्सओ अणुभागबंधो कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णि० मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागा०-जा० णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्सए अणुभागबंधे वट्ट० । सादावे०-जस०-उच्चा० उक्कस्सअणुभा० कस्स० ? अण्ण० खवग० सुहुमसंप० चरिमे उक्क० अणु० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० मदियावर०भंगो । णवरि तप्पाओग्गसंकिलि० । णिरयाउग-तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्णदरस्स मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि० सागा० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्क० अणु० वट्ट० । तिरिक्ख-मणुसाउ० तं चेव । णवरि तप्पाओग्गविसुद्ध० उक्क० अणु० वट्ट० । देवाउ० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सागा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० अणु० वट्टमाणगस्स । णिरयग०-णिरयाणुपु० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी० वा सण्णि० सव्वाहि पज्ज० सागा०-जागा० णिय० उक्कस्स० संकि० उक्क० अणुभा० वट्ट० । तिरिक्खगदि-असंपत्त०-तिरिक्खाणु० उक्क० अणु०

---

४०९. इस अर्थपदके अनुसार स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंके द्वारा पर्याप्तिको प्राप्त हुआ, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? क्षपक सूक्ष्मसाम्परायसंयत और अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग मतिज्ञानावरणके समान है । इतनी विशेषता है कि यह तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाले जीवके कहना चाहिये । नरकायु, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला, अन्यतर मनुष्य या संज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका वही भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि यहाँ तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला जीव कहना चाहिये । देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, साकार जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य या पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च उक्त दो प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्स० ? अण्ण० देव-णेरइगस्स मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क०-अणु० वट्ट० । मणुसगदि-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० देव-णेरइ० सम्मादि० सागा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-आहार०-तेजा०-क०-समचदु०-दोअंगो०-पसत्थ०वण्ण०४-देवाणु०-अगु०-पर०-उस्सा०[1]-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच-णिमि०-तित्थय० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० खवग० अपुव्वकरण० परभवियणामाणं चरिमे अणु० वट्ट० । एइंदि०-थावर० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सोधम्मीसाणंत० मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० वट्ट० । आदाव० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० तिगदियस्स सण्णिस्स सागा०-जा० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट० । उज्जो० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइ० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सागा०-जागा० सव्वविसु० से काले सम्मत्तं पडिवज्जहिदि त्ति उक्क० वट्ट० ।

४१०. णेरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्खग०-हुंड०-असंपत्त०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज०

तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि साकार-जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्लिष्ट उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक-आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सम्यग्दृष्टि, साकार, जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-शरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर क्षपक अपूर्वकरण जो परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंका अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है, वह उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सौधर्म और ऐशान कल्पका देव उन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? संज्ञी, साकारजागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका जीव आतप के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४१०. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिरआदि छह नीचगोत्र और पाँच

१ आ० प्रतौ अगु० उप० उस्सा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागा०-जा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सादावे०-मणुसगदि-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०वण्ण०[1] ४—मणुसाणु०-अगु०३—पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चागो० उक्क० अणुभा० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० सागार० सव्ववि० उक्क० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० मदियावरणभंगो । णवरि तप्पा०-संकिलि० । तिरिक्खाउ० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० तप्पा०-विसु० उक्क० वट्ट० । मणुसाउ० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० तप्पा०-विसुद्ध० उक्क० वट्ट० । उज्जोवं ओघं । एवं सत्तमाए पुढवीए । उवरिमासु छसु पुढवीसु तं चेव । णवरि उज्जोवं तिरिक्खाउ०भंगो ।

४११. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०—मिच्छ०—सोलसक०-पंचणोक०-णिरयग०-हुंड०—अप्पसत्थवण्ण०४—णिरयाणुपु० उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० उक्क० अणु० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सादावे०-देवगदिपसत्थसत्तावीस०-

अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्री-वेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? इसका भङ्ग मतिज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तत्प्रायोग्य संक्लेश परि-णामवाले जीवके कहना चाहिये। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये। पहले की छह पृथिवियोंमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उद्योत का भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है।

४११. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, उत्कृष्ट संक्लेश युक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने-वाला, अन्यतर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, देवगति आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-

1 आ० प्रतौ पसत्थवि-वण्ण० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चा० उक्क० [अणु० कस्स० ?] अण्ण० संजदासंजद० सागा० णिय० सव्ववि० उक्क० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-णिरयाउ-तिरिक्खगदि-चदुजादि-चदुसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-थावरादि४ उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सागा० तप्पा०संकिलि० । [तिरिक्ख-मणुसाउ०-मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-आदाव०-उज्जो० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण०पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० उक्क० अणु० तप्पा० विसु० उक्क० वट्ट० । देवाउ० उक्क० अणु० कस्स ? अण्ण० संजदासंजद० सागा० णिय० तप्पा० विसु० उक्क० वट्ट० । एवं पंचिंदि० तिरिक्ख०३ ।

४१२. तिरिक्ख०अपज्जत्तेसु पंचणा-णवदंस०-असादा०-] मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०- उप० - थावरादि४-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० अणु० वट्ट० । सादा०-मणुस०-पंचिंदि० ओरालि०-तेजा० क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सण्णिस्स सागा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर०

जागृत, नियमसे सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर संयतासंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, नरकायु, तिर्यञ्चगति, चार जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानपूर्वी, आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? नियमसे तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला, साकार-जागृत और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर संयतासंयत जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिये।

४१२. तिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्तविहायोगति, त्रस आदि चार स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तीन जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० ? अण्ण० सण्णि० सागा० तप्पा०संकि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्ख-मणुसाउ०-आदाउज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा० तप्पा०विसु० उक्क०[1] वट्ट० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-पंचिंदि०-तसअपज्ज०-पुढवि०-आउ०-वणप्फदि-णियोद०-बादर०पत्तेगं च[2] ।

४१३. मणुसेसु खविगाणं देवाउगं च ओघं । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

४१४. देवेसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्णद० मिच्छा० सागा० णियमा उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सादा०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थवण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० अणु० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० सागा० सव्ववि० उक्क० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० तप्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्खायु०-उज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा०

दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर संज्ञी जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार मनुष्यअपर्याप्त, सब-विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियअपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद और बादरप्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिये ।

४१३. मनुष्योंमें क्षपक प्रकृतियोंका और देवायुका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है ।

४१४. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर-आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभ नाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्तविहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृति-योंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, तत्प्रायोग्यसंक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

---

१ ता० प्रतौ साग० (गा) तप्पा० विसु० उ० विसु० उ० इति पाठः । २ ता० प्रतौ पत्तेणं (यं) च इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप्पा०विसु० । मणुसायु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट० । एइंदि०-थावर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सोधम्मीसाणहेट्ठिमदेवस्स मिच्छादि० सागा० उक्क संकिलि० उक्क० वट्ट० । असंपत्त०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सहस्सारंत० मिच्छा० सागा० णियः० उक्क० वट्ट० । आदाव० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेवस्स मिच्छा० तप्पा०विसु० ।

४१५. भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्खगं०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादिट्ठिस्स सागा० णिय० उक्क० वट्ट० । सेसं देवोघं । णवरि असंपत्त०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० इत्थिभंगो । भवण०-वाणवें०-जोदिसि० तित्थयरं णत्थि । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो । आणदादि याव णवगेवज्जा त्ति सहस्सारभंगो । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जोव० वज्ज ।

स्वामी है। तिर्यञ्चायु और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सौधर्म और ऐशान व उससे नीचेका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और नियमसे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सहस्रार कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर ईशान कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

४१५. भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी तथा सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि उक्त देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वर प्रकृतिका भङ्ग जिस प्रकार सामान्य देवोंमें स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामीकहा है, उस प्रकार है। तथा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें सहस्रार कल्पके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतको छोड़कर स्वामित्व कहना चाहिए।

१. ता० प्रतौ तिरिक्ख च (?) आ० प्रतौ तिरिक्खं च इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१६. अणुदिस याव सव्वट्ट त्ति पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० उक्क० वट्ट० । सादा०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-पसत्थवण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० णिय० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तप्पा०संकिलि० । मणुसायु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट० ।

४१७. एइंदिएसु मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० बादरपुढ०-बादरआउ०-बादरपत्तेय०-बादरणियोदपज्ज० सागा० सव्वविसु० । एवं मणुसायु० । णवरि तप्पाओग्गविसुद्ध० । सेसपगदीणं पसत्थाणं सो चेव भंगो । णवरि बादरतेउ०-बादरवाउ० त्ति भाणिदव्वं । सेसं पंचिंदि०तिरि०अपज्ज०भंगो । णवरि बादरपज्जत्तग त्ति भाणिदव्वं । एवं सव्वएइंदिय-पंचकायाणं च । णवरि तेउ-वाऊणं मणुसायु-मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० वज्ज० ।

---

४१६. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तराय इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला देव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४१७. एकेन्द्रियोंमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त और बादर निगोद पर्याप्त जीवोंमेंसे साकार जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य विशुद्धके कहना चाहिए । शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका वही भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंको स्वामी कहना चाहिए । इनके सिवा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है । इतनी विशेषता है कि बादर पर्याप्त ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायवाले जीवोंके कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रको नहीं कहना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१८. पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगी० ओघं। ओरालि० मणुसभंगो। केसिं च दुगदियस्स त्ति भाणिदव्वं।

४१९. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्खग०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ० ४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स०? अण्ण० पंचिंदि० सण्णिस्स तिरिक्ख० मणुस० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। सादा०-देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० कस्स०? अण्ण० दुगदियस्स सम्मा० सागा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट०। णवरि तित्थ० मणुस०। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० कस्स०? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० तप्पा० संकि० उक्क० वट्ट०। तिरिक्खायु-मणुसायु-मणुसगदि-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-आदाउज्जो०-उक्क० कस्स०? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सण्णि० मिच्छा० सागा० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट०।

४२०. वेउव्वियका० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंच-

---

४१८. पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है और दो गतिके कोई जीव स्वामी हैं, ऐसा कहना चाहिए।

४१९. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्तवर्ण-चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यञ्च या मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्करप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी मनुष्य है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तीन जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च या मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्जर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

४२०. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णोक०-तिरिक्खग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४–तिरिक्खाणु०-उप०–अथिरादिपंचं०--णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स णेरइ० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सादावे०-मणुस०-पंचिंदि०--ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि० अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४–मणुसाणु०-अगु०३–पसत्थ०-तस०४–थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मादि० सागा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० तप्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्खायु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छादि० सागा० तप्पाओंग्गवि० उक्क० वट्ट० । मणुसाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सम्मादि० सागा० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट० । एइंदि०-थावर० उ० कस्स० ? अण्ण० देवस्स ईसाणंत० मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० । असंप०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क[1]० कस्स० ? अण्ण० देवस्स सहस्सारंतस्स सव्वणेरइ० मिच्छा० सव्वसंकि० उक्क० वट्ट० । आदाव० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतस्स

मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र-के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर ईशान कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि सर्व संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सहस्रार कल्प तकका देव और सब नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर

१. ता० आ० प्रत्योः अथिरादिछ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवस्स तप्पा० विसु० उक्क० वट्ट० । उज्जो० ओघं । एवं चेव वेउव्वियमि० । णवरि उज्जोव० सत्तमाए पुढवीए मिच्छा० सागा० सव्वविसु० ।

४२१. आहार०-अहारमि० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० सव्वसंकिलि० । सादावे[१]०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०-अंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० सव्वविसु० । हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० तप्पा०संकिलि० । देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सागा० तप्पा०-विसु० उक्क० वट्ट० ।

४२२. कम्मइ० पंचणा०-णवदंसणा[२]०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्खगदि-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० चदुगदि० मिच्छादि० सागा० सव्वसं० । सादा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु[३]०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-

ऐशान तकका देव आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी साकार-जागृत और सर्व विशुद्ध सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी होता है।

४२१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

४२२. कार्मणकाययोगी जीवों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वसंक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर पंचेन्द्रिय संज्ञी चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त

१. ता० प्रतौ आदा(वे)० [व] आ० प्रतौ आदावे इति पाठः । २. ता० प्रतौ [णव] दंसणा०, आ० प्रतौ छदंसणा० इति पाठः । ३. ता० प्रतौ तेजा० समचदु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुग० सम्मादि० सागा० सव्वविसु०। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छादि० सागा० तप्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट०। मणुसगदिपंचगस्स देव० णेरइ० सम्मादिट्ठिस्स सागा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट०। देवगदिचदु[1]० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० सम्मादि० सागा० सव्वविसु०। एइंदिय-थावर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेवस्स सागा० सव्वसंकिलि० उक्क० वट्ट०। तिण्णिजादी० ओघं। असंप०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सहस्सारंतदेवस्स णेरइगस्स सव्वसंकिलि० उक्क० वट्ट०। आदाव० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदिय० सागा० तप्पाओग्गविसुद्ध० उक्क० वट्ट०। उज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए सागा० सव्वविसु० उक्क० वट्ट०। सुहुम-अपज्ज०-साधा[2]० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० पंचिंदि० सण्णि मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट०। तित्थय० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० सागा० सव्ववि०।

वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति पञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीव है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वसंक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तीन जातियोंका भङ्ग ओघके समान है। असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वसंक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सहस्रार कल्प तकका देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर तीन गतिका जीव आतप प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर पंचेन्द्रिय, संज्ञी मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

---

१. ता० प्रतौ देवगदिचदुक०, आ० प्रतौ० देवगदिचदुजादि० इति पाठः। २. ता० प्रतौ सादा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२३. इत्थिवे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिछ०-णीचागो०-पंचंत० उक्क० कस्स०?अण्ण० तिगदि० सण्णि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० उक्क० वट्ट० । सादा०-जस०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० खवग० अणियट्टिचरिमे अणुभाग० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-पंचसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० सागा० तप्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट० । आउचदुक्कं ओघं[1] । णिरयगदि-णिरयाणु[2]०-अप्पस० उक्क[3]० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० सव्वसंकिलि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्खग०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेवीए मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० । मणुसगदिपंचगस्स उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवीए सम्मादि० सागा० सव्ववि० । देवगदियादीणं ओघं । तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० संकि० उक्क० वट्ट० । आदाउज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० सागा० तप्पाओग्गविसु० उक्क० वट्ट० ।

साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४२३. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम अनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर अनिवृत्ति क्षपक उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और पाँच संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध-का स्वामी है । चार आयुओंका भङ्ग ओघके समान है । नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, और अप्रशस्त विहायोगतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वसंक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे सर्वसंक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाली अन्यतर ऐशान कल्पतक की मिथ्यादृष्टि देवी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी स्वामी है । मनुष्यगति पञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाली अन्यतर सम्यग्दृष्टि देवी मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट अनुभागबन्धकी स्वामी है । देवगति आदिक ओघमें कही गई २९ प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

१. ता० प्रतौ ओघं । णिरयाणु० इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः अप्पस० दुस्सर० उक्क० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२४. पुरिसवेदे पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पस०४-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकि० उक्क० वट्ट० । खविगाणं इत्थि-भंगो। इत्थि-पुरिसदंडओ चदुआयु-णिरय-णिरयाणु० ओघं । तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० उक्क० संकिलि० । मणुसपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० सम्मादि० सागा० सव्ववि० । एइंदि०-थावर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेवस्स सव्वसंकिलि० । तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस्स० वा सागा० तप्पा०संकिलि० वट्ट० । असंप० उक्क० कस्स० ? अण्ण सहस्सारंतदेवस्स मिच्छा० सागा० उक्क० संकिलि० । आदाउज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० सागा० तप्पा० विसु० ।

४२५. णवुंसगे पंचणा०-णवदंसणा०-असादा० याव पढमदंडओ ओघो । णवरि तिगदि० पंचिंदि० सण्णि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० । सादादिखवि-

साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४२४. पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । सातादिक ३, देवगति आदिक २९ इन ३२ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । स्त्री-पुरुषवेददण्डक, चार आयु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है । तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रिय जाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर सहस्रार कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४२५. नपुंसकवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण और असातावेदनीय से लेकर प्रथम दण्डकका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि इन प्रकृतियोंका स्वामी

१. ता० आ० प्रत्योः अप्पस० ४ सम्मादिट्ठिस्स उप० इति पाठः । २. ता० प्रतौ खविगाणं इत्थि-पुरिस० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाणं इत्थिभंगो०। इत्थिपुरिसं०दंडओ ओघो०। णवरि तिगदिय० सागा० तप्पा० संकिलि०। आउचदुक्कं णिरयगदि-णिरयाणु० ओघं। तिरिक्खग०-असंप०-तिरिक्खाणु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० मिच्छादि० सागा० णिय० उक्क० संकिलि०। मणुस-गदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० सम्मादि० साग० सव्वविसु०। चदु-जादि-थावर४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पा०संकिलि०। आदा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पा०विसु०। उज्जोव० ओघं।

४२६. अवगदवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० उवसाम[2]० परिवद० अणिय० चरिमे अणुभाग० वट्ट०। सादा०-जसगि०-उच्चा० ओघं।

४२७. कोध[3]-माण-माय० सादा०-जस०-उच्चा० इत्थिभंगो। सेसं ओघं। लोभे मूलोघं।

४२८. मदि०-सुद० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंच-णोक०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अप्पसत्थवि[4]०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत०

साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तीन गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव है। साता आदि ३२ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। स्त्री-पुरुषवेद दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त तीन गतिका जीव इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। चार आयु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। चार जाति और स्थावर चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है।

४२६. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम अनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर गिरनेवाला उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका भङ्ग ओघके समान है।

४२७. क्रोधकषायवाले, मानकषायवाले और मायाकषायवाले जीवोंमें सातावेदनीय, यशः-कीर्ति और उच्चगोत्रका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। तथा शेष भङ्ग ओघके समान है। लोभकषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

४२८. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त

१. ता० प्रतौ० खविगाणं इत्थि-पुरिस० इति पाठः। २. ता० प्रतौ उवसामा० इति पाठः। ३. ता० प्रतौ उच्चा०। कोध० इति पाठः। ४. आ० प्रतौ पसत्थवि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिंदि० सण्णि० सागा० णिय० उक्क० संकि० उक्क० वट्ट० । सादा०-देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणुपु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० चरिमे अणु० वट्ट० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स०रदि-चदुसंठा०-चदुसंघड० ओघं । तिण्णिआउ० ओघं । देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स सागा० तप्पा०सव्वविसु० । णिरयगदि-तिण्णिजादि-णिरयाणु०-उज्जोव०-सुहुम०-अप०-साहा० ओघं[1] । तिरिक्खगदि-असंप०-तिरिक्खाणु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क० संकिलि० । मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स०? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छादि० सव्वाहि० सम्मत्ताभिमुह० चरिमे उक्क० अणु० वट्ट० । एइंदि०-थावर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेव० मिच्छा० सागा० उक्क० संकिलि० । आदाव० उक्क० कस्स०? अण्ण० तिगदिय० सागा० तप्पा० विसु० । एवं विभंगे । णवरि सण्णि त्ति ण भाणिदव्वं ।

विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके अभिमुख और अन्तिम अनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग ओघके समान है। तीन आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य सर्वविशुद्ध अन्यतर मनुष्य देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। नरकगति, तीन जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, सम्यक्त्वके अभिमुख और अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशान कल्पतकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर तीन गतिका जीव आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें स्वामित्वका कथन करते समय संज्ञी ऐसा नहीं कहना चाहिए।

---

1. ता० आ० प्रत्योः सुहुम० अप्पदि० साहा० ओघं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२९. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०--छदंसणा०-असादा०-बारसक०--पंच-णोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागा० णिय० उक्क० संकि० मिच्छत्ताभिमुह० उक्क० वट्ट० । सादादिखविगाणं ओघं । हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुग० सागा० तप्पा०संकि० । मणुसाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागा० तप्पा०विसु० । देवाउ० ओघं। मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागा० सव्वविसुद्ध० । एवं ओधिदं०-सम्मादि० ।

४३०. मणपज्ज० पंचणा०-छदसणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ-वण्ण०४--उप०-अथिर०-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स०? अण्ण० पमत्तसं० सागा० सव्वसंकि० असंजमाभिमुह० उक्क० वट्ट० । सादादिखविगाणं ओघं । हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसं० सागा० तप्पाओग्गसंकि० । देवाउ० ओघं । एवं संजदे । णवरि मिच्छत्ताभिमुह० । एवं सामाइ०-छेदो० । णवरि सादावे०-जस० उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० अणियट्टि० खवग० चरिमे उक्क० वट्ट० ।

---

४२९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि ३२ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव और नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

४३०. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त, असंयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि ३२ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वके अभिमुख जीवोंके पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कहना चाहिए। इसी प्रकार सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३१. [परिहारे] पंचणाणादी० मणपज्जवभंगो[1]। णवरि सामाइ०-छेदो-वट्ठावणाभिमुह० सव्वसंकिलि०। सादादीणं अप्पमत्त० सव्वविसु०। हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसं० तप्पाओग्गसंकि०। देवाउ० ओघं। सुहुमसंप० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० उक्क० वट्ट०। सादा०-जस०-उच्चा० ओघं।

४३२. संजदासंजदे पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-अट्ठक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० सागार० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिमुह० उक्क० वट्ट०। सादावे०-देवगदिपसत्थट्ठावीसं तित्थ०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० उक्क० वट्ट०। हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरि० मणुस० सागा० तप्पा०संकि० उक्क० वट्ट०। देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरि० मणुस० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट०।

कौन है ? अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर अनिवृत्तिक्षपक जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

४३१. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ३४ प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके अभिमुख और सर्व संक्लेशयुक्त इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। साताादिकके सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्तर गिरनेवाला उपशामक जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका भङ्ग ओघके समान है।

४३२. संयतासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठ कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तराय के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय और देवगति आदि प्रशस्त अट्ठाईस प्रकृतियाँ तीर्थङ्कर सहित और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

---

१. ता० प्रतौ पंचणादि (णा०) मणपज्जवभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३३. असंजद० सादा०-देवगदिपसत्थट्ठावीसं तित्थ०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंजदसम्मादिट्ठिस्स सागा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० । देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुस० मिच्छादि० सागा० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट० । सेसाणं ओघं० । चक्खु०-अचक्खु ओघं ।

४३४. किण्णाए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छा० सागा० णि० उक्क० संकिलि० । सादा० मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालिअंगो०-वज्जरि०-पसत्थवण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०[1]-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० असंजदसम्मा० सागार० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । चदुणो०-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० तप्पाओ०संकि० । तिण्णि आउ० ओघं० । देवाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सम्मादि० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट० । णिरयगदि-णिरयाणु० उक्क० कस्स० ? अण्ण०

४३३. असंयत जीवोंमें सातावेदनीय और देवगति आदि प्रशस्त अट्ठाईस प्रकृतियाँ, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि मनुष्य देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। चक्षुदर्शनवाले और अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें स्वामित्व ओघके समान है।

४३४. कृष्ण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। चार नोकषाय, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तीन आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव देवायुके

1. ता० आ० प्रत्योः अगु० ४ पसत्थवि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्ख० मणुस० उक्क० संकि० उक्क० वट्ट० । तिरिक्ख०-असंप०-तिरिक्खाणु० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० उक्क० संकि० । देवगदि०४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मादि० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । चदुजादि–थावरादि४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० तप्पा०संकि० । आदाव० उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० तप्पा०विसु० । उज्जोव० ओघं । तित्थ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंजदसं० सागा० तप्पा०विसु० ।

४३५. णील०-काऊ० पंचणा०--णवदंसणा०--असादा०--मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०-तिरिक्ख०-हुंड०–असंप०-अप्पसत्थवण्ण०४–तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्णद० णेरइ० मिच्छादि० सागा० सव्वसंकिलि० उक्क० वट्ट० । सादा०-मणुसगदिपसत्थट्ठावीसं उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० सम्मादि० सव्वविसु० । इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० मिच्छा० तप्पा०संकिलि० उक्क० वट्ट० ।

उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। चार जाति और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यादृष्टि आतपके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

४३५. नील और कापोत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति आदि प्रशस्त अट्ठाईस प्रकृतियाँ और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध-अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिआउ० ओघं। देवाउ०-देवगदि०४ किण्णभंगो। णिरय०-चदुजा०-णिरयाणु०-[1] थावरादि०४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० तप्पा०संकि०। आदाउज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० दुगदिय० तिगदिय० तप्पा०विसु० उक्क० वट्ट०। णीलाए तित्थ० किण्ण० भंगो। काऊए तित्थय० णेरइ० सव्ववि०।

४३६. तेऊए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स सोधम्मीसाणंत० मिच्छादि० सव्वसंकि०। सादा०-देवग०पसत्थतीसं तित्थय० उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्त० सागा० सव्ववि० उक्क० वट्ट०। इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स सोधम्मीसाणं० मिच्छा० तप्पा०संकि० उक्क० वट्ट०। तिरिक्खाउ०-आदाउज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देवस्स तप्पा०विसु०। मणुसाउ० ? देवस्स

स्वामी है। तीन आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। देवायु और देवगति चतुष्कका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तात्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्यविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर दो गति का जीव आतपके और तीन गतिका जीव उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। नील लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। तथा कापोतलेश्यामें सर्वविशुद्ध नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—यहाँ पर मनुष्यगति आदि अट्ठाईस प्रशस्त प्रकृतियाँ ये हैं—मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माण।

४३६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि सौधर्म-ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, देवगति आदि प्रशस्त तीस प्रकृतियोंके तथा तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व विशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि सौधर्म और ऐशान कल्पतकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु, आतप और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

१. ता० प्रतौ चदुजा० णेरइ० णिरयाणु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मादि० तप्पाओग्गविसु० । देवाउ० ओघं । मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० सम्मादि० सव्वविसु० । असंपत्त०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० कस्स० ? अण्ण० ईसाणहेट्ठिमदेवस्स मिच्छा० तप्पा०संकि० उक्क० वट्ट० ।

४३७. पम्माए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्खगदि-हुंड०-असंपत्त०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सहस्सारंतदेवस्स मिच्छादि० सागा० सव्वसंकि० । सेसं तेउ०भंगो । णवरि एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज ।

४३८. सुक्काए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-[पंचणोक०] हुंड०-असंप०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० आणदादिदेव० मिच्छादि० सागा० संकि० । सादादिखविगाणं ओघं । चदुणोक०-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० आणदादि-

---

स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । देवायुका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि ऐशान कल्प तकका देव व नीचेका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—यहाँ देवगति आदि प्रशस्त तीस प्रकृतियाँ ये हैं—देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, आहारकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर ।

४३७. पद्मलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीच गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर सहस्रार कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी पीतलेश्याके समान है । इतनी विशेषता है कि यहाँ एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामित्व छोड़कर कथन करना चाहिए ।

४३८. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर आनतादिका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । सातादि क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । चार नोकषाय, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव० मिच्छा० तप्पा०संकि० । मणुसाउ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० असंजद-सम्मादि० तप्पा०विसु० । देवाउ० ओघं । मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० सम्मादि० सव्ववि० ।

४३९. भवसि० ओघं । अब्भवसि० पंचणाणावरणादि० ओघं । सादा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थवण्ण४-अगु०३[1]-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-[जस०] णिमि०-उच्चा[2]० कस्स० ? अण्ण० चदुगादिय० पंचिंदि० सण्णि० सागा० सव्ववि० । चदुणो०-चदुसंठा०-चदुसंघ० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुग० तप्पा०संकि० । आउ० मदि०भंगो । णिरयगदि-णिरयाणु० तिरिक्ख-मणुस० सव्वसंकि० । तिरिक्ख०-असंपत्तसे०-तिरिक्खाणु० देव० णेरइ० सव्वसंकि० । मणुसगदिपंचग० देव० णेरइ० सव्वविसु० उक्क० वट्ट० । देवगदि०४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागार० सव्वविसु० । सेसाणं ओघं ।

तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि आनतादिका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन क्षपक प्रकृतियोंका निर्देश किया है वे ये हैं—सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र।

४३९. भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्योंमें पाँच ज्ञानावरणादिका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, यशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। चार नोकषाय, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। चारों आयुओंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

---

१. आ० प्रतौ अगु ४ इति पाठः । २. ता० प्रतौ थिरादिछ० उच्चा०, आ० प्रतौ थावरादिछ० णिमि० उच्चा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४०. खइग० ओधिभंगो। णाणावरणादि० सत्थाणे सव्वसंकि०। वेदगे ओधि०भंगो। णवरि खइगपगदीणं अप्पमत्त० सव्वविसु०। उवसम० ओधिभंगो।

४४१. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-सोलसक०-इत्थि०-अरदि-सोग-भय-दु०-तिरिक्ख०-वामण०-खीलिय०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पस०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक० कस्स० ? अण्ण० चदुगदिय० सागा० सव्व-संकि०। सादा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागा० सव्व-विसु०। पुरिस०-हस्स-रदि-तिण्णिसंठाण-तिण्णिसंघडण० उक० कस्स० ? अण्ण० चदुग० तप्पा०संकिलि०। तिरिक्खायु०-मणुसायु० उक० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० सागा० तप्पा०विसु०। देवाउ० उक० कस्स० ? अण्ण० मणुस० तप्पा०

शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ अभव्योंमें जिन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान कहा है, वे ओघ प्ररूपणाके समय गिनाई ही गई हैं। उनकी संख्या ५६ है, इसलिए वहाँसे जान लेनी चाहिए। यहाँ अन्तमें शेष प्रकृतियोंका स्वामित्व ओघके समान कहा है पर उनका नामनिर्देश नहीं किया है। वे ये हैं—एकेन्द्रियादि चार जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

४४०. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग हैं। इतनी विशेषता है कि ज्ञानावरणादिकका स्वस्थानमें सर्वसंक्लिष्ट क्षायिकसम्यग्दृष्टिके स्वामित्व कहना चाहिए। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि ३२ क्षपक प्रकृतियाँ हैं। उनका यहाँ सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीवके स्वामित्व कहना चाहिए। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—३२ क्षपक प्रकृतियोंका अवधिज्ञानीके जिस स्थानमें उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है, उसी स्थानमें उन प्रकृतियोंका उपशमसम्यग्दृष्टिके स्वामित्व कहना चाहिए। अन्तर इतना है कि अवधिज्ञानीके क्षपकश्रेणिमें कहना चाहिए और उपशम सम्यग्दृष्टिके उपशमश्रेणिमें।

४४१. सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, वामनसंस्थान, कीलकसंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्लेश-युक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। पुरुषवेद, हास्य, रति, तीन संस्थान और तीन संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसु०। मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सव्ववि०। देवगदि०४ तिरिक्ख० मणुस० सागा० सव्वविसु०। उज्जो० उक्क० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए सागार० सव्वविसु०।

४४२. सम्मामि० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागा० णि० उक्क० संकि० मिच्छत्ताभिमु०। सादावे०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागा० सव्वविसु० समत्ताभिमु०। हस्स-रदि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० तप्पा०संकि०। मणुसगदिपंचग० उक्क० कस्स० ? अण्ण० देव-णेरइ० सागा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह०। देवगदि०४ उक्क० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मत्ताभिमुह०।

४४३. मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो। सण्णी० ओघं। असण्णी० तिरिक्खोघं। णवरि सादादीणं उक्क० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सागा० सव्वविसु०। आहार०

तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर मनुष्य देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्वविशुद्ध देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

४४२. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्व विशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है।

४४३. मिथ्यादृष्टि जीवोंके मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी जीवोंके ओघके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सातादि २९ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं उक्कस्सयं सामित्तं समत्तं ।

४४४. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंत० जह० अणुभागबंधो कस्स० ? अण्ण० खवग० सुहुमसं० चरिमे० जह० वट्ट० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० कस्स० ? अण्ण० मणुस० मिच्छादि० सागा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० जह० वट्ट० । णिद्दा-पचला० जह० कस्स०? अण्ण० अपुव्वकरणखवग० णिद्दा--पचलाबंधचरिमे वट्ट० । सादासाद०--थिराथिर--सुभासुभ-जस०-अजस० जह० कस्स० ? अण्ण० चदुग० मिच्छादि० वा सम्मादि० वा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जह० अणु० वट्ट० । अपच्चक्खाणा०४ जह० कस्स० ?

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है । आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र उत्कृष्ट स्वामित्वका विचार करते समय मूलमें कहीं पर साकार-जागृत, और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला ये दो विशेषण दिये हैं और कहीं पर नहीं दिये हैं । पर ये जहाँनहीं दिये हों वहाँ इन्हें भी लगा लेना चाहिए, क्योंकि जो साकार-जागृत होता है उसके ही उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है । उसमें भी उत्कृष्ट अनुभागबन्धके योग्य सब विशेषताओंके रहते हुए उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नियमसे होता ही है ऐसा भी एकान्त नियम नहीं है, इसलिए जब उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो रहा हो तभी उत्कृष्ट स्वामित्व जानना चाहिए । इसी प्रकार कहीं उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त या सर्वविशुद्ध आदि विशेषणका भी मूलमें निर्देश न किया हो तो उसे भी जान लेना चाहिए । यहाँ पर असंज्ञीके उत्कृष्ट स्वामित्व कहते समय जो सातादि प्रकृतियोंका पृथक्से संकेत किया है । वे ये हैं—देवगति, सातावेदनीय, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगोत्र ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

४४४. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम जघन्य अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, संयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । निद्रा और प्रचलाके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? निद्रा और प्रचलाके बन्धके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । अप्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्ण० मणुस० असंजदसम्मा० सागा० सव्वविसु० से काले संजमं पडिवज्जिहिदि त्ति । एवं पच्चक्खाणा०४ । णवरि संजदासंज० । कोधसंजल० जह० कस्स० ? अण्ण० खवग० अणियट्टि० कोधसंजल० चरिमे अणुभा० वट्ट० । एवं माण-मायाणं । लोभसंजल० जह० कस्स ? अण्ण० खवग० अणियट्टि० चरिमे जह० वट्ट० । इत्थि०-णवुंस० जह० कस्स० ? अण्ण० चदुग० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छा० सव्वाहि० सागा० तप्पा०विसु० । पुरिस० जह० कस्स० ? अण्ण० खवगस्स अणियट्टि० पुरिस० चरिमे अणु० वट्ट० । हस्स-रदि-भय-दुगुं० जह० कस्स० ? अण्ण० खवग० अपुव्व० सागा० सव्वविसु० चरिमे अणुभा० वट्ट० । अरदि-सोग० जह० कस्स० ? अण्ण० पमत्त० सागा० तप्पा०विसु० । णिरय-देवाउ० जह० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० जहण्णिगाए पज्जत्तगणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणयस्स मज्झिमपरिणामस्स । तिरिक्ख०-मणुसाउ० जह० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० जहण्णियाए अपज्जत्तगणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणमज्झिम० । णिरय-देवगदि-दोआणु० ज० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख-मणुस० मिच्छा० परिय०मज्झिम० जह० वट्ट० ।

अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और तदनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होनेवाला अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । इतनी विशेषता है कि यह संयतासंयतके कहना चाहिए । क्रोधसंज्वलनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? क्रोधसंज्वलनके अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव उक्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मानसंज्वलन और माया संज्वलनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी जानना चाहिए । लोभसंज्वलनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तमें जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव लोभसंज्वलनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी हैं। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तमें पुरुषवेदका जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । हास्य, रति, भय और जुगुप्साके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत सर्वविशुद्ध परिणामवाला और अन्तमें जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर क्षपक अपूर्वकरण जीव इनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। नरकायु और देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य अपर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तिमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढ० मिच्छा० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्ज० सागा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० जह० वट्ट० । मणुस०-छसंठा०-छसंघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-मज्झिमल्लतिण्णियुग०-उच्चा० जह० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० परिय०मज्झिम० ज० वट्ट० । एइंदि०-थावर० जह० कस्स० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० परिय०मज्झिम० । तिण्णिजा०-सुहुम०-अप०-साधार० जह० कस्स० अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० परिय०-मज्झिम० । पंचिं०–तेजा०-क०--पसत्थवण्ण०४--अगु०३–तस०४–णिमि० जह० कस्स ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छा० सागा० णि० उक्क० संकि० । ओरालि०-ओरालि-अंगो०-उज्जो० ज० क० अण्ण० देवस्स० णेरइ० मिच्छादि० सव्वाहि० प० सागा० णि० उक्क० संकि० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सव्वसंकि०। आहारदुगं० ज० क० ? अण्ण० अप्पमत्तसंज० सागा० णि० उक्क० संकि० पमत्ताभिमुह० जह० वट्ट० । अप्पसत्थ०४–उप० जह०

अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादिक तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर चार गतिका पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पंचेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त, प्रमत्तसंयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातके जघन्य अनुभागबन्धका

---

१. ता० प्रतौ मिच्छा० । सव्वसंकि० । मिच्छा सव्वसंकि (?) आहारदुगं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्स० ? अण्ण० अपुव्वक० खवग० परभवियणामाणं बंधचरिमे० वट्ट० । आदाव० जह० कस्स० ? अण्ण० सोधम्मीसाणंतस्स देवस्स मिच्छादि० उक्क० संकि० जह० वट्ट० । तित्थय० ज० क० ? अण्ण० मणुस० असंजदसम्मा० सागा० णि० उक्क० संकि० मिच्छत्ताभिमुह० जह० वट्ट० ।

४४५. णिरएसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० सागा० सव्ववि० । थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त०-अणंताणुबं०४ जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सागा० सव्ववि० सम्मत्ताभिमु० जह० वट्ट० । सादासादा०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०-जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० वा मिच्छा० वा परिय०मज्झिम० । इत्थि०-णवुंस० ज० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० तप्पा०विसु० । अरदि-सोग० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० सागा० तप्पा०विसु० जह० वट्ट० । तिरिक्खायु०-मणुसायु० जह० कस्स० ? मिच्छा० जहण्णिगाए पज्जत्तणिव्वत्तीए णिवत्तमाणमज्झिम० जह० वट्ट० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ओघं । मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दो-

स्वामी कौन है ? परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सौधर्म-ऐशान कल्पतकका मिथ्यादृष्टि देव आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश-युक्त, मिथ्यात्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४४५. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर मिथ्या-दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निर्वृत्तिसे निवृत्तमान, मध्यम परिणामवाला और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहा०-तिण्णियुगल०-उच्चा० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थवण्ण४-अगु०३-उज्जो०-तस०४-णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० णि० उक्क० संकि० जह० वट्ट०। तित्थ० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० सागा० तप्पा०संकि०। एवं सत्तमाए पुढ०। णवरि मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्माइट्ठिस्स सम्मामिच्छत्ताभिमुहस्स[1]। एवं छउवरिमासु। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० मणुसगदिभंगो।

४४६. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स० ? अण्ण० संजदासंजद० सागार० सव्वविसु०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सव्वविसु० संजमाभिमुह० जह० वट्ट०। अपच्चक्खा०४ एवं चेव। णवरि असंज०। इत्थि०-णवुंस०[2] जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० तप्पा०विसु०। अरदि-सोग० जह० कस्स० ?

भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, छह संस्थान छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभगादि मध्यके तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सम्यग्मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार प्रथम छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग जैसा नारकियोंमें मनुष्यगतिका जघन्य स्वामित्व कहा है, उस प्रकार जानना चाहिए।

४४६. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर संयतासंयत तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध, संयमासंयमके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिए। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध

१. ता प्रतौ उच्चा० ...भिमुहस्स, आ० प्रतौ उच्चा उक्क० कस्स अण्ण० सम्मत्ताभिमुहस्स इति पाठः।
२. आ० प्रतौ इत्थि० पुरिस० णवुंस० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्ण० संजदासंजद[1]० तप्पा०विसु० । सादासादा०-थिरादितिण्णियुग०-आउ०४ ओघं। तिण्णिगदि-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-तिण्णिआणुपु०-दोविहा०-थावरादि०४-[मज्झिल्ल-] तिण्णियुग०-उच्चा० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० सव्वाहि० सागा० सव्वविसु० । पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-तस४-णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छाइट्ठि० सागार० णि० उक्क० संकि[2]० । ओरालि०२-आदाउज्जो० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० तप्पा०संकि० ज० अणु० वट्ट० । एवं[3] पंचिंदियतिरिक्ख०३ । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० मणुसगदिभंगो ।

४४७. पंचिंदियतिरिक्खअप० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स[4]०? अण्ण० सण्णि० सागा० सव्व-

---

अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर संयतासंयत तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ,अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति ये तीन युगल तथा चार आयु इनका भङ्ग ओघके समान है । तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, सुभगादि मध्यके तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । औदारिकशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग मनुष्यगति प्रकृतिके जघन्य स्वामित्वके समान है ।

४४७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च

---

१. ता० प्रतौ मिच्छा॰॰॰॰ण० संजदासंजद०, आ० प्रतौ मिच्छा० तप्पा० विसु०॰॰॰॰॰॰॰अण्ण० संजदासंजद० इति पाठः । २. ता० प्रतौ पंचिं०॰॰॰॰संकि०, आ० प्रतौ पंचिंदि सण्णि०॰॰॰॰उक्क० संकि० इति पाठः । ३. ता० प्रतौ ज० वाउ० (वट्ट०) एवं, आ० प्रतौ ज० वा० उक्क० एवं इति पाठः । ४. ता० प्रतौ पंचत० उ० (ज०) क०, आ० प्रतौ पंचत उक्क० कस्स० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसु० । सादासादा०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-दोगोद० जह० कस्स० ? अण्ण० परियत्त०मज्झिम० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० जह० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा० तप्पा०विसु० । दोआउ० ओघं । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा० उक्क०संकि० । ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० ज० कस्स० ? अण्ण० सण्णि० सागा० तप्पा०संकि० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदि०-पंचिंदि०-तस०अपज्ज०-सव्वपुढवि०-आउ०-वणप्फदि-णियोद०-बादरपत्ते० । मणुसेसु ३ खविगाणं ओघं । सेसाणं पंचिंदि०तिरिक्खभंगो ।

४४८. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० सव्ववि० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०[1]-अणंताणुबं०४ जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० । सादादीणं चदुयुगलं ओघं । इत्थि०-णवुंस० जह० कस्स० ? अण्ण० तप्पा०विसु० ।

उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल और दो गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर संज्ञी अपर्याप्त तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

४४८. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है। साता-असाता, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन चार युगलोंका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

1. ता० प्रतौ थीणगिद्धि० ४ मिच्छ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरदि-सोग० ज० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० तप्पा०विसु०। दोआयु० जह० कस्स० ? अण्ण० जहण्णिगाए पज्जत्तगणिव्वत्तीए णिव्वत्त० मज्झिम०। तिरिक्ख०-मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०--दोआणु०-दोविहा०--तिण्णियुग-णीचागो०-उच्चा० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम०। एइंदि०-थावर० ज० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंत-देवस्स मिच्छादि० परिय०मज्झिम०। पंचिदि०--ओरालि०अंगो०--तस० जह० कस्स० ? अण्ण० सणक्कुमार उवरिं याव सहस्सार त्ति मिच्छा० सव्वसंकि०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-उज्जो०-बादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि० सागा० सव्वसंकि०। आदाव० जह० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंत० मिच्छा० सव्वसंकि०। तित्थय० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० सागा० तप्पा०संकि०।

४४६. एवं भवण०--वाणवेंतर--जोदिसि०--सोधम्मीसाण०। णवरि पंचिदि०-ओरालि०अंगो०-तस० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० तप्पा०संकि०। अथवा पंचिदि०-तस० ज० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम०। सणक्कुमार

अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादिक तीन युगल, नीचगोत्र और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि ऐशान कल्पतकका देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशान कल्पतकका देव उक्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव उक्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४४६. इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान कल्पके देवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अथवा पञ्चेन्द्रिय जाति और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके

१. ता० प्रतौ दोवि० तिरिया इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो। आणद याव णवगेवज्जा त्ति सो चेव भंगो। णवरि तिरिक्ख०३ णत्थि०। मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०३-तस०४-णिमि० जह० कस्स? अण्ण० मिच्छा० सव्वसंकि०।

४५०. अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स०? अण्ण० सागा० सव्वविसु०। सादादि-चदुयुगल० जह० कस्स०? अण्ण० परिय०मज्झिम०। अरदि-सोग० जह० कस्स०? अण्ण० सागा० तप्पा०विसु०। मणुसाउ० जह० कस्स०[1]? अण्ण० जहण्णियाए पज्जत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्त० परिय०मज्झिम०। मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० जह० कस्स०? अण्ण सव्वसंकि०।

४५१. एइंदियाणं पंचिंदि०तिरि०अपज्जत्तभंगो। णवरि बादरस्से त्ति भाणि-

---

जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योत इन तीन प्रकृतियोंका (तथा तिर्यञ्चायुका) बन्ध नहीं होता। तथा इनमें मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४५०. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। साता-असाता, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? जघन्य पर्याप्ति निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लिष्ट अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४५१. एकेन्द्रियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है

---

1 ता० प्रतौ मणुसाउ० उ० (जह०) क०, आ० प्रतौ मणुसाउ० उक्क० कस्स इति पाठः।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

द्दव्वो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरिक्खोघं । एवं सव्वएइंदिए ।

४५२. तेउ०-वाउ० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्खग०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु-उप०-णीचा०-पंचंत० जह० कस्स० ? अण्ण० बादरस्स सव्वविसु० । सेसं तिरिक्ख०अप०भंगो० ।

४५३. पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधादि०४-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारग त्ति ओघभंगो । ओरालियकायजोगी० मणुसि० भंगो । णवरि तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरिक्खोघं ।

४५४. ओरालियमि० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ वण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० कस्स०? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मादि० सागा० सव्वविसु० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ जह० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० सागा० सव्ववि० । सादादिचदुयुगं० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० मिच्छा० परिय०मज्झिम० । इत्थि०-णवुंस० जह० कस्स० ? अण्ण० मिच्छा० तप्पा०विसु० जह० वट्ट० । अरदि-सोग० जह० कस्स० ? अण्ण० सम्मा० तप्पा०विसु० । दो-

कि बादरोंके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए । तथा तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रियोंमें जानना चाहिए ।

४५२. अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है ।

४५३. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है ।

४५४. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । साता-असाता, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि

१. ता० आ० प्रत्योः सादादितिणियुग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयु० ओघं । तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति जह० वट्ट० । मणुसग०-पंचजादि-छस्संठा[1]०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तसादिचदुयुग०-सुभगादितिण्णियुग-उच्चा० जह० कस्स०? अण्ण० मिच्छा० परिय०मज्झिम० । देवगदिपंच० जह० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मा० सागा० सव्वसंकि० से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति । णवरि तित्थय० मणुसग० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-णिमि० जह० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छा० सव्वसंकि० । ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० जह० कस्स० ? अण्ण० पंचि० सण्णि० तप्पा०संकि० ।

४५५. वेउव्वियका० पंचणा०-छदंसणा०-बारक०-पंचणोक[2]०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० कस्स० ? अण्ण० देवस्स णेरइ० सम्मादि० सागा० सव्वविसु० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ ज० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सागा० सव्ववि० सम्मत्ताभिमुह० । सादादिचदुयुग० जह० कस्स० ? अण्ण० देव०

जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला जो अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्ति ग्रहण करेगा, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसादि चार युगल, सुभगादि तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्ति ग्रहण करेगा, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी मनुष्यको कहना चाहिए। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४५५. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख

---

१. ता० आ० प्रत्योः मणुसग० पंचिंदि० छस्संठा० इति पाठः । २. ता० प्रतौ पंचणा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेरइ० सम्मादि० मिच्छादि० परिय०मज्झिम०। इत्थि०-णवुंस० जह० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० तप्पा०विसु०। अरदि०-सोग० ज० क० ? अण्ण० देवस्स णेरइ० सम्मादि० सागा० तप्पा०विसु०। दो आयु० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० जहण्णियाए पज्जत्तगणिव्वत्तीए णिव्वत्त० परिय०मज्झिम०। मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तिण्णियुग०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० परिय०मज्झिम०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० कस्स० ? अण्ण० णेरइ० सत्तमाए पुढवीए मिच्छा० सागा० सव्ववि० सम्मत्ताभिमुह० जह० वट्ट०। एइंदि०-थावर० ज० क० ? अण्ण० देव० ईसाण० परि०मज्झिम०। पंचिं० ओरालि० अंगो०-तस० ज० क०[1]? अण्ण० सणक्कुमार उवरिमदेव०सव्वणेरइ० मिच्छादि० सव्वसंकि०। ओरालि०-तेजा०-क०--पसत्थवण्ण०४--अगु०३--बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सव्वसंकि०। आदाव० ज० क० ? अण्ण० ईसाणंतदेव० मिच्छादि० सव्वसंकि०। उज्जो० ज० क० ? अण्ण० देव०

अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और परिवर्तमान मध्यम परिणाम वाला अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादिक तीन युगल और उच्च गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, सम्यक्त्वके अभिमुख और जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर ऐशान कल्पका देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशायुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि सानत्कुमारसे ऊपरका देव और सब नरकोंका नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि ऐशान कल्प तकका देव आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका

१. ता० प्रतौ तस० ज० (जह०) क० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेरइ० सव्वसंकि० । तित्थ० ज० क० । अण्ण० देव० णेरइ० सव्वसंकि० । एवं चेव वेउव्वियमि० । णवरि आउगं णत्थि ।

४५६. आहार०-आहारमि० पंचणा०-छंदसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ-वण्ण०४-उप०-पंचंत० जह० क० ? अण्ण० सागा० सव्ववि० । सादादिचदुयुगं० ज० क० ? अण्ण० परिय०मज्झिम० । अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० तप्पा०विसु० । देवायु० ज० क० ? अण्ण० परिय०मज्झिम० । देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० सागा० उक्क०संकि० ।

४५७. कम्मइ० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० सम्मादि० सागा० सव्ववि० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छादि० सागा० सव्ववि० ।

स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर देव और नारकी उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टि देव और नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुओंका बन्ध नहीं होता।

४५६. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। साता आदि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर जीव देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४५७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभाग-

---

१. ता० आ० प्रत्योः चदुआयुग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादादिचदुयुगल० ज० क० ? अण्ण०-चदुगदि० सम्मादि० मिच्छा० परि०मज्झिम० । इत्थि०-णवुंस० ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० मिच्छा० सागा० तप्पा०सव्ववि० । अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० चदुग० सम्मादि० तप्पा०विसु० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढ० सागा० सव्वविसु० । मणुसग०-छस्संठा०-छस्संघ०—मणुसाणु०--दोविहा०--तिण्णियुग०--उच्चा० ज० क० ? अण्ण० चदुग० मिच्छा० परिय०मज्झिम० । एइंदि०-थावर० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० परि०मज्झिम० । तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्ज०-साहा०[1] ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० परिय०मज्झिम० । पंचि०-ओरालि०अंगो०-तस०[2] ज० क० ? अण्ण० देव० सहस्सारंतस्स सव्वणेरइय० मिच्छा० सव्वसंकि० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४—अगु०-णिमि० ज० क० ? अण्ण०चदुगदि० मिच्छा० सव्वसंकि० । पर०-उस्सा०-उज्जो०-बादर-पज्ज०-पत्ते० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० मिच्छा० सागा० सव्वसंकि० । देवगदि०४ ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सम्मा० सव्वसंकि० ।

बन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादि तीन युगल और उच्च गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रिय जाति और स्थावरके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तीन जाति सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि सहस्रार कल्प तकका देव और सब नरकोंका नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । परघात, उच्छ्वास, उद्योत, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव और नारकी उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर *सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च* और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका

---

१. ता० आ० प्रत्योः सादा० इति पाठः । २ ता० आ० प्रत्योः तस० ४ इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

आदव-तित्थयं० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० सव्वसंकि०।

४५८. इत्थि० पंचणा०-चदुदंसणा०--चदुसंज०--पुरिस०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० खवग० अणियट्टि० चरिमे ज० अणु० वट्ट०। पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-अट्ठणोक०चदुआयु०-आहारदुग-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-तित्थय० ओघं। णवरि इत्थि०-णवुंस० तिगदि० तप्पा०। सादादिचदुयुग० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सम्मादि० परिय०मज्झिम०। णिरय-देवगदि-तिण्णिजादि-दोआणु०-सुहुम०-अपज्ज०-साधा० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० परि०मज्झिम०। तिरिक्ख०-मणुसग०-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-तिण्णियुग०-णीचुच्चा० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० परि०मज्झिम०। पंचिंदि०-[वेउ०-] वेउ० अंगो०-तस० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सव्वसंकि०। ओरालि०-आदा-वुज्जो० ज० क० ? अण्ण० देव० मिच्छा० सव्वसंकि०। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३--बादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सव्वसंकि०।

स्वामी है। आतप और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४५८. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तिम जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, आठ नोकषाय, चार आयु, आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और तीर्थङ्करका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्वामित्व तत्प्रायोग्य तीन गतिवालेके कहना चाहिए। सातादि चार युगलके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। नरकगति, देवगति, तीन जाति, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर, तीन युगल, नीचगोत्र और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक शरीर, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव

१. आ० प्रतौ सव्वसंकि० तित्थय० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालि०अंगो० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० तप्पा०संकि० ।

४५६. पुरिस० पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० क०? अण्ण० तिगदि० मिच्छा० सव्वसंकि० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-उज्जोव० क०? देव०सव्वसंकि० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० क० ? अण्ण० तिरि० मणुस० सव्वसंकि० । आदाव० ओघं० । सेसं इत्थिवेदभंगो ।

४६०. णवुंसगे णिरयगदि-देवगदि-चदुजादि-दोआणु०-थावरादि०४ ज० क०? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० परि०मज्झिम० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-उज्जो० ज० क० ? अण्ण० णेरइ० मिच्छा० सव्वसंकि० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० मिच्छादि० सव्व-संकि० । सेसं ओघं । णवरि आदावं तिरिक्खोघं ।

४६१. अवगद० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० ओघं । सादा०-जस०-उच्चागो० ज० क० ? अण्ण० उवसा० परिवदमा० चरिमे जह० अणु० वट्ट० ।

उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४५६. पुरुषवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेश-युक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

४६०. नपुंसकवेदी जीवोंमें नरकगति, देवगति, चार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावरादि चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिक-शरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेश-युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि आतप प्रकृतिका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

४६१. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी कौन है? जघन्य अनुभागबन्ध करनेवाला उपशामक गिरते हुए अन्तिम समयमें जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

१. ता० प्रतौ तप्पा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६२. मदि-सुदे पंचंणा०-णवदंसणा०--मिच्छत्त०--सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४–उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० मणुस० सागा० सव्वविसु० संजमाभि० । सादादिचदुयुगल०-मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०--सुभगादि०तिण्णियुगं०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण चदुग० परि०मज्झिम० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० चदुग० तप्पा०विसु० । सेसं ओघं[2] । एवं विभंगे मिच्छादिट्ठि त्ति ।

४६३. आभि०-सुद०-ओधि० खविगाणं संजमपाओग्गाणं च ओघं । सादादिचदुयुग० ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० परि०मज्झिम० । मणुसाउ० ज० क० ? अण्ण० देव० वा णेरइ० ज० पज्ज० मज्झिम० । देवाउ० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० ज० पज्ज० मज्झिम० । मणुसगदिपंच० ज० क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागा० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिमु० । देवगदि०४ ज० ? तिरिक्ख-मणुस० सागार० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिमु० । पंचिंद०--तेजा०--क०--समचदु०-पसत्थवण्ण०४–अगु०३–पसत्थ०-

४६२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि चार युगल, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग आदि तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है ? स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

४६३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियों और संयमप्रायोग्य प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्तिसे पर्याप्त और परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्तिसे पर्याप्त और मध्यम परिणामवाला तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर देव और नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-

१. ता० आ० प्रत्योः दोविहा० थिरादिछयुग० इति पाठः। २. ता० प्रतौ सेसं [दे] वोघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस०४–सुभग-सुस्सर-आदें०--णिमि०--उच्चा० ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० सागा० णि० उ० संकि० मिच्छत्तां०। आहारदु० [अप्पसत्थवण्ण४--उप०-] तित्थयरं च ओघं०। एवं ओधिदंस०-सम्मा०।

४६४. मणपज्ज० देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०- तेजा०-क०--समचदु०-वेउव्वि०-अंगो०--पसत्थ०४--देवाणु०-अगु०३--पसत्थवि०--तस४--सुभग-सुस्सर--आदें०-णिमि०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० पमत्तसंज० सव्वसंकि० असंजमाभिमु०। तित्थय० ज० ? पमत्तसंज० असंजमाभि०। सेसं ओघं[2]। एवं संजदा०। णवरि पढमदंडओ मिच्छत्ताभिमु०। एवं सामाइय-च्छेदो०। णवरि पंचणाणावरणादि० ज० क० ? अण्ण० खवग० अणियट्टि०। परिहारे मणपज्जव०भंगो। णवरि देवगदिआदीओ असंजमाभिमुहाणं ताओ सामाइ०-छेदोव०णाभिमुह० कादव्वं। याओ खवगपगदीओ ताओ अप्पमत्तस्स

संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान कहा है। उनमेंसे क्षपक प्रायोग्य प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिकको छोड़कर छह दर्शनावरण, चार संज्वलन और पुरुषवेद-हास्य-रति-भय और जुगुप्सा ये पाँच नोकषाय। संयमप्रायोग्य प्रकृतियाँ ये हैं—मध्यकी आठ कषाय, अरति और शोक।

४६४. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त और असंयमके अभिमुख अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? असंयमके अभिमुख अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें प्रथम दण्डकमें जो देवगति, आदि २५ प्रकृतियाँ कहीं हैं, उनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी मिथ्यात्वके अभिमुख संयत जीव है। इसी प्रकार सामायिकसंयत और छेदोपथापनासंयत जीवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके पाँच ज्ञानावरणादिकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर क्षपक अनिवृत्तिकरण जीव इनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें जिन देवगति आदि प्रकृतियोंका असंयमके अभिमुख होनेपर जघन्य स्वामित्व कहा है, उनका परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके अभिमुख होनेपर जघन्य स्वामित्व कहना

१. ता० प्रतौ संकि०। मिच्छा०। आ० प्रतौ संकि० मिच्छा इति पाठः। २. ता० प्रतौ असंजमाभिमु० ® तित्थय ज० पमत्तसंज० असंजमाभि० ® [एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः पुनरुक्तः प्रतीयते] सेसं ओघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्ववि० । सुहुमसंप० अवगद०भंगो ।

४६५. संजदासंजदे पंचणा०--छदंसणा०--अट्ठकसा०--पंचणोकसा०-अप्पसत्थ-वण्ण०४--उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० मणुस० सागा० सव्वविसु० संजमाभिमु० । सादादिचदुयुग० ज० ? परि०मज्झिम० । अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० तप्पा०विसु० । देवाउ० जहण्ण० ? तिरिक्ख० मणुस० जहण्णियाए पज्जत्तगणिव्वत्तीए परि०मज्झिम० । देवग०--पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०--वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४--देवाणु०-अगु०३--पसत्थवि०--तस०४--सुभग-सुस्सर--आदें०--णिमि०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागा० सव्व० मिच्छत्ताभिमु० । तित्थ० ज० ? असंजमाभिमुह० ।

४६६. असंजदे पंचणा०--छदंसणा०-बारसक०--पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४--उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० असंज०सम्मादिट्ठिस्स सागा० सव्ववि० संजमा-

---

चाहिए। तथा जो क्षपक प्रकृतियाँ हैं, उनका जघन्य स्वामित्व सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीवके कहना चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सामायिक और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें जिन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व अनिवृत्तिकरण क्षपक जीवके प्राप्त होता है, वे ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय। तथा परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें जिन क्षपक प्रकृतियोंका जघन्य स्वामी सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीवको बतलाया है, वे ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिकको छोड़कर छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा ये पाँच नोकषाय, चार अप्रशस्त वर्ण और उपघात। शेष कथन स्पष्ट ही है।

४६५. संयतासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला अन्यतर मनुष्य या तिर्यञ्च देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? असंयमके अभिमुख अन्यतर जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४६६. असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ?

---

१. आ० प्रतौ मज्झिम० देवग० पंचिंदि० वेउव्वि० अरदि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिमु० । सेसं ओघं ।

४६७. किण्णाए पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोकसाय-अप्पसत्थवण्ण०४[1]-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० णेरइ० असंजदस० सागा० सव्वविसु० । सादादि-चदुयुग० ? तिगदि० परि०मज्झिम० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ ज० क० अण्ण० णेरइ० मिच्छा० सागा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमु० । इत्थि०-णवुंस० ज० क० ? अण्ण० णेरइ० तप्पा०विसु० । अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० णेरइ० सम्मादि० तप्पा०विसु० । आउचदु० ओघं । णिरय[2]०-देवग०-चदुजादि-दोआणु०-थावरादि०४ ज० क० ? अण्ण० तिरि० मणुस० परि०मज्झिम० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-णीचा० ओघं । मणुसग०-छस्संठाण-छस्संघडण-मणुसाणु०-दोविहा०-तिण्णियुगल०-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० तिगदि० परि०मज्झिम० । पंचिंदिय०-तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० क० ? अण्ण० तिगदियस्स सागा० सव्व-संकि० । ओरा०-ओरा०अंगो०-उज्जो० ज० क० ? णेरइ० मिच्छा० सव्वसंकि० ।

साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

४६७. कृष्ण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । चार आयुका भङ्ग ओघके समान है । नरकगति, देवगति, चार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादिक तीन युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्या-

१. आ० प्रतौ बारसक० अप्पसत्थवण्ण ४ इति पाठः । २. आ० प्रतौ आउचदु० णिरय० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० सागा० सव्वसंकि० । आदाव० ? दुगदियस्स तप्पा०संकि० । तित्थ० ओघं ।

४६८. णील-काउलेस्साणं [पंचणाणावरणादि जाव] णिरयग०दंडगा त्ति किण्ण-भंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० क० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ० सागा० सव्ववि० । पंचिंदि० [ओरालि-तेजा०-कम्म०] ओरालि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४-अगु३-तस०४-णिमि० ज० क० ? अण्ण० णेरइ० मिच्छा० सागा० सव्वसंकि० । मणुस०-छस्संठा०- छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तिण्णियुगल०-उच्चा० ? तिण्णिगदि० परि० मज्झिम० । [वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छा० सागा० सव्वसंकि०।] आदाव० ज० क० ? अण्ण० दुगदि० तप्पा०संकि० । उज्जो० ? णेरइ० सव्व०संकि० । णीलाए तित्थ० मणुस० तप्पा०संकि० । काऊए तित्थय० णिरयोघं ।

दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर दो गतिका जीव आतप के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

४६८. नील और कापोत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण दण्डकसे लेकर नरकगति दण्डक तकका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर-वायुकायिक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रस-चतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेश-युक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादि तीन युगल और उच्च गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक-आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लिष्ट अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट अन्यतर दो गतिका जीव आतपके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर नारकी उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। नीललेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त मनुष्य है। तथा कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी सामान्य नारकियोंके समान है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः सव्वसंकि० । सादादिचदुयुग० ज० तिगदि० परि०मज्झिम० । आउ० ओघं । मणुस० इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः परि०मज्झिम० इत्थि० णवुंस० ज० क० ? तप्पा० विसु० । अरदिसोग० ज० ? णेरइ० असंजद० तप्पा० विसु० । आदाव० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६६. तेउले० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अप्पमत्त० सव्वविसु० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-बारसक०-अरदि-सो०-आहारदुगं ओघं । सादादिचदुयुग० ज० ? तिगदि० परिमज्झिम० । इत्थि० ज०? तिगदि० तप्पा०विसु० । णवुंस० ज०? देव० तप्पा०विसु० । तिरिक्ख-मणुसायु० ? देव० मिच्छा० मज्झिम० । देवायु० ज० ? तिरि० मणुस० मज्झिम० । तिरिक्खग०-मणुस०-एइंदि०-पंचिं०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणुपु०-दोविहा०-तस०-थावर-तिण्णियुगल०-दोगोद० ज० क० ? अण्ण० देव० परि०मज्झिम० । देवगदि०४ ज० क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सव्वसंकि० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-आदाउज्जो०-बादर-पज्जत्त--पत्ते०-णिमि० ज० क० ? अण्ण० सोधम्मीसाणं० मिच्छादिट्ठिस्स सव्वसंकि० । ओरालि०अंगो० ज० ? सोधम्मीसा० तप्पा० संकि० । तित्थय० ज० ? देव० सोधम्मीसा० असंजद० सव्वसंकि० ।

---

४६६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व विशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय, अरति, शोक और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध तीन गतिका जीव स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध देव नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है ? तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रिय-जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, मध्यके सुभगादि तीन युगल और दो गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । देवगति चतुष्कके जघन्य अनु-भागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लिष्ट अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि सौधर्म और ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेश युक्त अन्यतर सौधर्म और ऐशान कल्प तकका देव उक्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेश युक्त अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि सौधर्म और ऐशान कल्पका देव उक्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७०. पम्माए एवं चेव। णवरि पंचिं०-ओरालिय०-तेजा०-क०-ओरालि०-अंगो०-पसत्थवण्ण०४–अगु०३–तस०४–णिमि० ज० क० ? अण्ण० देव सहस्सार० मिच्छा० सव्वसंकि०। तिरि०-मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तिण्णि-युग०-दोगोद० ज० क० ? अण्ण० देव० सहस्सार० परि०मज्झिम०। इत्थि०-णवुंस० ज० ? देव० तप्पा०सव्वविसु०।

४७१. सुक्काए सादादिचदुयुगल० ज० ? तिगदि० परि०मज्झिम०। इत्थि०-णवुंस० ज० ? देव० तप्पा०विसु०। पंचिंदि०[1]-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४ एवं [जाव णिमिण त्ति] णवगेवज्जभंगो। मणुसायु० ज० ? देव० मिच्छा०। देवायु० ? तिरि० मणुस० जह० पज्जे०[2] णि० मज्झिम०। देवगदि०४ ज० ? तिरि० मणुस० मिच्छा० सव्वसंकि०। छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-तिण्णि-युग०-दोगोद० ज० ? देव० मिच्छा० परि०मज्झिम०। तित्थय० ज० ? देव० सव्व-संकि०। सेसं ओघं।

४७०. पद्मलेश्यामें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु-त्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर सहस्रार कल्पका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादि तीन युगल और दो गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सहस्रार कल्पका देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य सर्वविशुद्ध अन्यतर देव उक्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४७१. शुक्ललेश्यामें सातादि चार युगलोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परि-वर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य विशुद्ध देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वर्णचतुष्कसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका भङ्ग नव ग्रैवेयक-के समान है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव मनुष्यायु के जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य अनुभागका स्वामी कौन है? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और नियमसे मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, मध्यके सुभगादि तीन युगल और दो गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनु-

१. ता० आप्रत्योः : विसु० णवुंस० पंचिंदि० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः जह० णो० पज्ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७२. अब्भवसि० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० चदुग० पंचि० सण्णि० सागा० सव्वविसु० । सादासादा०-मणुस०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० चदुग० परि०मज्झिम० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० ज० क० ? अण्ण० चदुग० तप्पा०विसु० । सेसं ओघं ।

४७३. खइगे ओधिभंगो । णवरि सत्थाणे जहण्णयं करेदि । वेदगे पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०--पंचणोक०--अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० अप्पमत्त० सागार० विसु० । सेसं ओधिभंगो० । उवसम० ओधिभंगो० । तित्थय० मणुस० सव्वसंकि० ।

४७४. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० चदुगदि० सागा० सव्वविसु० । सादासाद०-मणुस०-पंचसंठा०--पंचसंघ०--मणुसाणु०--दोविहा०-छयुगल०--उच्चा० ज० चदुगदि० परि०-

---

भागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर देव तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

४७२. अभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

४७३. क्षायिक सम्यक्त्वमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि यह जघन्य अनुभागबन्ध स्वस्थानमें करता है । वेदक सम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । उपशम सम्यक्त्वमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इसमें सर्व संक्लेशयुक्त मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है ।

४७४. सासादनसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मज्झिम० । इत्थि०-अरदि-सोग० ज० क०? चदुग० तप्पा०विसु० । तिरिक्ख-मणुसायु० ज० चदुगदि० मज्झिम० । देवायु[1]० ज० ? तिरि० मणुस० मज्झिम० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढ० णेरइ० सव्ववि० । देवग०-देवाणु० ज० ? तिरिक्ख० मणुस० परि०मज्झिम० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-उज्जो० ज०? चदुग० सव्वसंकि० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४–अगु०३–तस०४–णिमि० ज० ? चदुगदि० सव्वसंकि० । वेउव्वि०---वेउव्वि०अंगो० ज० ? तिरि० मणुस० सव्वसंकि० ।

४७५. सम्मामि० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थवण्ण०४ उप०-पंचंत० ज० क० ? अण्ण० चदुग० सव्ववि० सम्मत्ताभिमुह० । सादादिचदुयुग० ज० क०? अण्ण० चदुगदि०मज्झिम० । अरदि-सोग० ज० क०? अण्ण० चदुग० तप्पा०-विसु० । मणुसगदिपंचग० ज० क० ? अण्ण० देव-णेरइ० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिमु० ।

अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? मध्यम परिणामवाला तिर्यञ्च और मनुष्य देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्वविशुद्ध अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४७५. सम्यग्मिथ्यात्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व-विशुद्ध और सम्यक्त्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-बन्धका स्वामी है। सातादि चार युगलके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर देव और

---

१. ता० प्रतौ देवाणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगदि[1]०४ ज० क० ? अण्ण० तिरि० मणुस० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिमुहस्स। पंचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थवण्ण०४—अगु०३-पसत्थवि०-तस०४—सुभग-सुस्सर आदेंज्ज[2]-णिमिण-उच्चा० ज० क० ? अण्ण० चदुग० सागा० सव्वसंकि० मिच्छत्ताभिमु०।

४७६. असण्णि० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--अप्पसत्थवण्ण०४—उप०--पंचंत० ज० क० ? अण्ण० पंचिं० सागा० सव्वविसु०। सादासाद०-तिण्णिग०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि०४—थिरादिछयुग०—उच्चा० ज० क० ? अण्ण० मज्झिम०। इत्थि०--णवुंस०—अरदि--सोग० ज० क० ? अण्ण० तप्पा०विसु०। आयु० ओघं। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरिक्खोघं। पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४—अगु०३—तस०४—णिमि० ज० क० ? अण्ण० सागा० सव्वसंकि०। ओरालि०--ओरालि०--अंगो०-आदाउज्जो० ज० क० ? अण्ण० तप्पा०संकि०। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं सामित्तं समत्तं।

नारकी उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? सर्व संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, सर्व संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है।

४७६. असंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर पञ्चेन्द्रिय जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिरादि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मध्यम परिणामवाला उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। चारों आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी

---

१. आ० प्रतौ देवगदि ज० इति पाठः। २. ता० प्रतौ आदेज्ज........ज० क०, आ० प्रतौ आदेज० जस० (अजस०)..........ज० क० इति पाठः।

१३ कालपरूवणा

४७७. कालं० दुविहं--जह० उक्क० । उक्क० पगदं० । दुवि०--ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-अप्पसत्थ०४[1]-उप० पंचंत० उक्क०अणुभागबंधगा ज० एग०, उक्क० बेसम० । अणुक्क० ज० एग०, उक्क० अणंतकालमसंखे० पोंग्गल० । सादा०--आहारदुग-उज्जो०--थिर--सुभ--जस० उक्क० [जहण्णुक०] एग० । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । असादा०-छण्णोक०-चदुआयु०-णिरय०-चदुजादि--पंचसंठा०-पंचसंघ०--णिरयाणु०--आदाव०--अप्पसत्थ०-थावरादि०४-अथिरादिछ[2]० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पुरिस० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० ज० एग०, उक्क० बेछावट्ठिसाग[3]० सादि० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक्क० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० ज० एग०, उक्क० असंखेँज्जलो० । मणुस०-वज्जरि०-मणुसाणु०

है । आहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

१३ कालप्ररूपणा

४७७. काल दो प्रकारका है --जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । सातावेदनीय, आहारकद्विक, उद्योत, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असातावेदनीय, छह नोकषाय, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि चार और अस्थिरादि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पुरुषवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छियासठ सागर है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका

---

१. ता० आ० प्रत्योः ओरालि० ओरालि० अप्पसत्थव० इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः थावरादि ४ थिरादिछ० इति पाठः । ३. ता० आ० प्रत्योः वेसम० छावट्ठिसाग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। देवगदि०४ उक्क० जहण्णुक्कस्सेण एग० । अणु० ज० एग० उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । पंचि०-पर०--उस्सा०-तस०४ उक्क० ज० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं । तेजा०---क०---पसत्थवण्ण०४--अगु०---णिमि० [उक्क०] ज० [उक्क०] एग०। अणु० तिभंगो। जो सो सादिओ० ज० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल०। समचदु०-पसत्थवि०-सुभग--सुस्सर--आदे०--उच्चा० उक्क० एग० । अणु० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठि० सादिरे० तिण्णिपलिदो० देसू०। ओरालि०अंगो० उक्क० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । तित्थ० उक्क० एग० । अणु० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० ।

जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक सौ पचासी सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके तीन भङ्ग हैं। उनमेंसे जो सादि भङ्ग है,उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागर है। औदारिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेत्तीस सागर है।

विशेषार्थ--सामान्यतः उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए जिन प्रकृतियोंका क्षपकश्रेणीमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है उनको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणीमें अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। जिन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणी सम्भव है,उन सब मार्गणाओंमें इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका यह काल इसी प्रकार जानना चाहिए। शेष मार्गणाओंमें साधारणतः अन्य प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समान ही इन क्षपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल है। मात्र कुछ मार्गणाएँ इस नियमकी अपवाद हैं। उदाहरणार्थ औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग और अनाहारक मार्गणाएँ ऐसी हैं, जिनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ही बनता है। कारण इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागके बन्ध योग्य परिणाम एक समयके लिए ही होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागबन्धके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालका विचार सर्वत्र जानना चाहिए। इसलिए आगे हम सर्वत्र केवल अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके कालका ही विचार करेंगे। यहाँ इस बातका निर्देश कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि कहीं प्रकृति परिवर्तनसे और कहीं अनुभागबन्धके योग्य परिणामोंके बदलनेसे प्रायः सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। प्रकृति परिवर्तनका उदाहरण—कोई जीव सातावेदनीयका बन्ध कर रहा है। फिर उसने साताके स्थानमें एक समय तक असाताका बन्ध किया और दूसरे समयमें पुनः वह साताका बन्ध करने लगा। यह प्रकृति परिवर्तनसे अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका एक समय जघन्य काल है। परिणामोंके बदलनेका उदाहरण—किसी जीवने मतिज्ञानावरणका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया। पुनः वह उत्कृष्ट बन्धके योग्य परिणामोंकी हानिसे एक समयके लिए उसका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने लगा। यह परिणामपरिवर्तनका उदाहरण है। इस प्रकार प्रायः सर्वत्र सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध हो जाता है। जिन मार्गणाओंमें इसका अपवाद है वहाँ इसका अलगसे निर्देश किया ही है। अब सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धके उत्कृष्ट कालका विचार करना शेष रहता है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रथम दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ कही हैं, उनका ओघसे एकेन्द्रियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सदा होता रहता है और एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल प्रमाण है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिक दूसरे दण्डकमें जितनी प्रकृतियाँ गिनाई हैं, वे सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और परावर्तमान प्रकृतियोंका उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसी तरह तीसरे दण्डकमें कही गईं असातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालके विषयमें जानना चाहिए। यद्यपि तीसरे दण्डकमें चार आयु भी सम्मिलित हैं और ये परावर्तमान प्रकृतियाँ नहीं हैं, पर इनका बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होता है; इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही कहा है। बीचमें सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त कर सम्यक्त्वके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो छियासठ सागर है। ऐसे जीवके निरन्तर एक मात्र पुरुषवेदका ही बन्ध होता है। क्योंकि नपुंसक-वेदकी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें और स्त्रीवेदकी सासादन गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए पुरुषवेदके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो छियासठ सागर कहा है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायु-कायिक जीवोंके होता रहता है और इन जीवोंकी कायस्थिति असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हों उतने समयप्रमाण है, अतः इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका सबसे अधिक काल तक निरन्तर बन्ध सर्वार्थसिद्धिके देव करते हैं और उनकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरप्रमाण है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। एक पूर्वकोटि की आयुवाला जो मनुष्य मनुष्यायुका प्रथम त्रिभागमें बन्ध कर क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है, उसके इतने काल तक निरन्तर देवगतिचतुष्कका बन्ध होता रहता है। अतः देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। जो बाईस सागरकी आयुवाला छठे नरकका नारकी जीवनके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्वको प्राप्त कर छियासठ सागर काल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहा। फिर सम्यग्मिथ्यात्वमें जाकर पुनः छियासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तमें इकतीस सागरकी आयुके साथ नव ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ, उसके एक सौ पचासी सागर काल तक पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७८. णिरएसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-पंचिं०-ओरालि०-तेजा०--क०--ओरालि०अंगो०--पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--अगु०४--तस०४--णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अणु०ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं०। पुरिस०-मणुसग०-समचदु०-वज्जरि०--मणुसाणु०--पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें०--उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०,

---

अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल एकसौ पचासी सागर कहा है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अनादि-अनन्त विकल्प अभव्योंके प्राप्त होता है। अनादि-सान्त विकल्प उन जीवोंके होता है जिन्होंने क्रमसे सम्यक्त्व और संयमको प्राप्त कर और क्षपकश्रेणि आरोहण कर बन्धव्युच्छित्तिके समय इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है। तथा सादि-सान्त विकल्प उन जीवोंके होता है जो उपशमश्रेणी पर चढ़कर इनकी बन्धव्युच्छित्ति करनेके बाद पुनः उतर कर इनका बन्ध करने लगे हैं। यहाँ सादि-सान्त विकल्पका अधिकार है। उसकी अपेक्षा इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहनेका कारण यह है कि जो जीव अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशमश्रेणी पर चढ़ा और इसके अन्तमें वह क्षपकश्रेणी पर चढ़ा, उसके कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल तक इन प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्टबन्ध देखा जाता है। अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। जो उत्तम भोगभूमिका जीव समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका बन्ध कर रहा है,वह यदि जीवनके अन्तमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर प्रथम छियासठ सागर काल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहा। पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया और साधिक छियासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहा। उसके इतने काल तक इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो छियासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य प्रमाण कहा है। नरकमें औदारिक आङ्गोपाङ्गका निरन्तर बन्ध होता है और नरककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है। तथा ऐसा जीव नरकमें जानेके पहले और निकलनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक औदारिक आङ्गोपाङ्गका बन्ध करता है, अतः औदारिक आङ्गोपाङ्गके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर प्रमाण कहा है। जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला सम्यग्दृष्टि मनुष्य तेतीस सागर आयुका बन्ध कर देवोंमें उत्पन्न होता है,उसके साधिक तेतीस सागर काल तक तीर्थङ्कर प्रकृतिका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध देखा जाता है, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है।

४७८. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० तेत्तीसं० देसू० । उज्जोवं ओघं । तित्थय० उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० एग०, उ० तिण्णि साग० सादि० । सेसाणं उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । एवं सत्तमाए पुढवीए । छसु उवरिमासु एवं चेव । णवरि तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० सादभंगो । सेसाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा ।

४७६. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० ज० एग०, उक्क० अणंतका० । सादासाद०-छण्णोक०-आयु०४-णिरय०-मणुस०-

समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । उद्योतका भंग ओघके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें इसी प्रकार भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । शेष प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिए ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जीवन भर निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है । पुरुषवेद आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है । उद्योतके विषयमें जो ओघ प्ररूपणामें काल कहा है, वही यहाँ भी जानना चाहिए । ओघप्ररूपणासे यहाँ कोई विशेषता न होनेसे यह ओघके समान कहा है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरक तक होकर भी साधिक तीन सागरकी आयुवालेसे अधिक आयुवाले नारकीके नहीं होता, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है । इन पूर्वोक्त प्रकृतियोंके सिवा शेष जितनी प्रकृतियाँ नरकमें बँधती है वे सब परावर्तमान हैं, अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेके कारण उक्त प्रमाण कहा है । सामान्यसे नारकियोंमें यह जो काल कहा है, वह सातवीं पृथिवीमें अविकल घटित हो जाता है, इसलिए सातवीं पृथिवीके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा है । प्रथमादि छह पृथिवियोंमें सब काल इसी प्रकार है । मात्र जहाँ पर पूरा तेतीस सागर या कुछ कम तेतीस सागर काल कहा है, वहाँ पर अपनी-अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिको ध्यानमें रखकर यह काल कहना चाहिए । तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिके कालका विचार प्रथमादि तीन पृथिवियोंमें ही करना चाहिए । चौथी आदि शेष चारों पृथिवियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके कालका विचार नहीं करना चाहिए ।

४७६. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुजादि-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस० उक्क० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। पुरिस०-देवग०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णि पलिदो० सादि०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचागो० ओघं। पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० ज० ए०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० ए०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। णवरि पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० पुव्वकोडिपुधत्तेण०। पुरिस०-देवगदि०४-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि०।[1] जोणिणीसु देसू०। तिरिक्ख०-ओरालि०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सादभं०।

काल है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोकषाय, चार आयु, नरकगति, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पुरुषवेद, देवगति चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। किन्तु योनिनी तिर्यञ्चोंमें कुछ कम तीन पल्य है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। एकेन्द्रियोंमें इनका निरन्तर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, और एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति अनन्तकाल प्रमाण

1. ता० प्रतौ तिण्णिपलि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८०. पंचिं०तिरिक्ख०अपज्ज० सव्वपगदीणं उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-सव्वसुहुमपज्ज०-अपज्ज० सव्वबादरअपज्जत्तगा त्ति। णवरि विगलिंदियपज्जत्तगाणं धुवपगदीणं अणु० ज० एग०, उ० संखेज्जाणि वाससह०।

है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। भोगभूमिके तिर्यञ्चके निरन्तर पुरुषवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध होता है और ऐसा जीव पूर्व पर्यायमें तिर्यञ्च होकर भी प्रशस्त परिणामोंसे अन्तर्मुहूर्तकालतक अन्तमें इनका बन्ध करता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ओघमें तिर्यञ्चगतिकी अपेक्षासे ही घटित करके बतलाया है, अतः यह प्ररूपणा ओघके समान कही है। पंचेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तिर्यञ्चोंमें भोगभूमिकी प्रधानतासे प्राप्त होता है, क्योंकि जो तिर्यञ्च मर कर भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके मरणके समय अन्तर्मुहूर्तकालसे लेकर भोगभूमिकी कुल पर्याय भर निरन्तर इनका बन्ध होता रहता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। किन्तु इस व्यवस्थाके कुछ अपवाद हैं। बात यह है कि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, अतः इनमें औदारिक शरीरको छोड़कर प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि शेष सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है, क्योंकि ध्रुवबन्धिनी होनेसे इनका इतने कालतक निरन्तर बन्ध होता है। तिर्यञ्चत्रिकके भोगभूमिमें पुरुषवेद आदिका निरन्तर बन्ध सम्भव है, क्योंकि जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है, उसके भोगभूमिमें निरन्तर पुरुषवेद आदिका ही बन्ध होता है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है। पर ऐसा जीव तिर्यञ्च योनिनियोंमें नहीं उत्पन्न होता और वहाँ अपर्याप्त अवस्थामें इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका भी बन्ध होता है, अतः इनमें यह काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

४८०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब सूक्ष्म पर्याप्त, सब सूक्ष्म अपर्याप्त और सब बादर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें ध्रुव प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उन सबमें एक जीवकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। यही कारण है कि इनमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र विकलत्रयोंमें इनके पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष प्रमाण कहा है। इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८१. मणुसेसु [३] खविगाणं उ० एग० । अणु० [पंचिंदिय-] तिरिक्खभंगो० । पुरिस० उ० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णिपलिदो० सादि० । मणुसिणीए देसू० । देवगदि०४—समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उक्क० तिण्णिपलि० सादि० । मणुसिणीसु देसू० । पंचिं०-पर०-उस्सा०-तस०४ उ० एग० । अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिपलिदो० सादि० । तित्थ० उ० एग० । अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी देसू० । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय । शेष कथन सुगम है ।

४८१. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । पुरुषवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । किन्तु मनुष्यिनियोंमें यह काल कुछ कम तीन पल्य है । देवगति चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । किन्तु मनुष्यनियोंमें कुछ कम तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें जो क्षपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है, वे ये हैं—सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादि पाँच और निर्माण । इन क्षपक प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार तिर्यञ्चोंमें घटित करके बतलाया है, उस प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए । पुरुषवेदके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल तो ओघमें ही घटित करके बतला आये हैं । उससे यहाँ कोई विशेषता न होनेसे वह ओघके समान कहा है । मात्र यहाँ इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है जो इस प्रकार है—जिस मनुष्यने पूर्व कोटि कालके त्रिभागमें मनुष्यायुका बन्ध कर क्रमसे क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, वह मरकर तीन पल्यकी आयु लेकर उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है । यतः सम्यग्दृष्टि के एक मात्र पुरुषवेदका ही बन्ध होता है अतः मनुष्योंमें पुरुष वेदके अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य प्राप्त होनेसे यहाँ वह उक्त प्रमाण कहा है । मात्र ऐसा जीव मरकर मनुष्यिनियोंमें नहीं उत्पन्न होता, अतः इनमें वह कुछ कम तीन पल्य कहा है । यह भी, जो मनुष्यिनी तीन पल्यकी आयु लेकर उत्पन्न हुई और सम्यक्त्वके योग्य कालके प्राप्त होने पर सम्यक्त्व ग्रहण कर जीवन भर उसके साथ रही, उसके कहना चाहिए । पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्क ये भी क्षपक प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल तो एक ही समय होगा, पर इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धके उत्कृष्ट कालमें तिर्यञ्चोंसे विशेषता होनेके कारण यहाँ इनका काल अलगसे कहा है । बात यह है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८२. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय०-दु०-मणुस०पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० एँक्कत्तीसं सा०। सेसाणं उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो कालो णादव्वो।

कि जो मनुष्य भोगभूमिमें उत्पन्न होता है,वह विशुद्ध परिणामोंसे मरनेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त कालसे इन प्रकृतियोंका बन्ध करने लगता है। इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट काल तीनों प्रकारके मनुष्योंमें साधिक तीन पल्य घटित होनेसे वह यहाँ उक्त प्रमाण कहा है। पर्याप्त मनुष्योंमें यहाँ अन्य विशेषता भी घटित कर लेनी चाहिए। तीर्थंकर प्रकृति भी क्षपक प्रकृति है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु मनुष्य पर्यायमें इसका निरन्तर बन्ध कुछ कम एक पूर्वकोटिकाल तक ही सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८२. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना काल जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ देवोंमें प्रथम दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ कही हैं,वे ध्रुवबन्धिनी हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध यदि होता है तो वह भी ध्रुवबन्धिनी है। यही कारण है कि सामान्यसे देवोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि आदिक जो आठ प्रकृतियाँ दूसरे दण्डकमें कही हैं,उनमेंसे मिथ्यात्व मिथ्यादृष्टिके और शेष सात मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टिके ध्रुवबन्धिनी हैं,किन्तु अनुदिशादिकमें एक सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ही होता है, अतः इन आठके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पूरा इकतीस सागर कहा है। इनके सिवा शेष जितनी प्रकृतियाँ बचती हैं,वे सब यहाँ पर परावर्तमान हैं। अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह सामान्य देवोंमें कालकी प्ररूपणा है। विशेषरूपसे जिन देवोंकी जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसे जानकर और अपनी-अपनी बँधनेवाली प्रकृतियोंको जानकर कालकी प्ररूपणा करनी चाहिए। यद्यपि बारहवें कल्प तक तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भी बन्ध होता है, इसलिए यहाँ तक मनुष्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८३. एइंदिएसु धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। बादरे अंगुल० असंखें०, तिरिक्खगदितिगस्स कम्मट्ठिदी। बादरपज्जत्ते संखेंज्जाणि वाससहस्साणि। सुहुमे असंखेंज्जा लोगा। सेसाणं अपज्जत्तभंगो।

४८४. पंचिं०-तस०२ पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० उक्क० ओघं। अणुक्क० ज० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०।

गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र परावर्तमान प्रकृतियाँ हो जाती हैं। इसी प्रकार दूसरे कल्प तक एकेन्द्रिय जाति और स्थावरका भी बन्ध होता है इसलिए वहां तक पञ्चेन्द्रिय जाति और त्रस ये दो प्रकृतियाँ भी परावर्तमान हो जाती हैं पर सौधर्मादि कल्पोंमें सम्यग्दृष्टि भी उत्पन्न होते हैं और सम्यग्दृष्टियोंके इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए सौधर्मादि कल्पोंमें यथासम्भव सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस और उच्चगोत्र ये ध्रुवबन्धिनी ही हैं और इस अपेक्षासे इन कल्पोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अपने अपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण मिल जाता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र भवनत्रिकमें सम्यग्दृष्टि मरकर उत्पन्न नहीं होते अतः यहां जिनकी जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसमेंसे कुछ कम करके इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कहना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

४८३. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली और तिर्यञ्चगति त्रिकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। बादर जीवोंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। किन्तु तिर्यञ्चगतित्रिकका कर्मस्थितिप्रमाण है। बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। सूक्ष्म जीवोंमें असंख्यात लोक प्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्त जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—यद्यपि एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति अनन्तकाल प्रमाण अर्थात् असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कही है; तथापि यह कायस्थिति एकेन्द्रियोंमें बादरसे सूक्ष्म और सूक्ष्मसे बादर तथा पर्याप्त और अपर्याप्त होते हुए प्राप्त होती है और असंख्यात लोक प्रमाण काल तक सूक्ष्म रहनेके बाद ऐसे जीवके बादर होने पर पर्याप्त अवस्थामें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट बन्ध भी होने लगता है। यदि यह मानकर भी चला जाय कि ऐसे जीवके पर्याप्त अवस्थामें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध पर्याप्तकी कायस्थितिके अन्तमें करावेंगे तो भी बादर पर्याप्त जीवकी कुल कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष प्रमाण ही है। यदि सामान्यसे बादर जीवकी कायस्थिति ली जाती है, तो वह अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होती है। पर इससे सूक्ष्म जीवोंकी कायस्थितिमें विशेष अन्तर नहीं आता। अतः यहाँके एकेन्द्रियोंमें उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। शेष बादरादिककी जो कायस्थिति है, उसे ध्यानमें रख कर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का वहाँ उत्कृष्ट काल कहा है। मात्र तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल बादरोंमें कर्म स्थिति प्रमाण कहा है। सो इसका कारण यह है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ही इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता है और बादर अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है, अतः इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कर्म स्थिति प्रमाण कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो वे सब परावर्तमान हैं, अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८४. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादा०-आहारदुग-उज्जो०-थिर-सुभ-जस० उक० अणुक० ओघं। असाद०-सत्तणोक०-आयु०४-णिरय०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदाव-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-अथिरादिछ० उक० अणु० ओघं। तिरिक्ख०-ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। मणुस०-वज्जरि०-मणुसाणु० उक० अणु० ओघं। देवगदि०४ उक० अणु० ओघं। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक० अणु० ओघं। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उक० अणु० ओघं। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-णिमि० उक० एगं०। अणु० जं० अंतो०, उ० कायट्ठिदी०। तित्थय० उक० अणु० ओघं।

बन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण है। सातावेदनीय, आहारकद्विक, उद्योत, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि छहके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध ओघसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त करता है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान बन जाता है, अतः वह ओघके समान कहा है। तथा ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण काल तक इनका निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियद्विककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर और सौ सागरपृथक्त्व प्रमाण है और त्रसद्विककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर प्रमाण कही गई है। सातादण्डकके कालका खुलासा ओघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं। उससे यहाँ कोई विशेषता नहीं है, इसलिए इस दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके कालमें अन्य

---

१. ता० आ० प्रत्योः लुगणोक० इति पाठः। २. ता० प्रतौ उक० [ज०] ए० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः अणु० ज० ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८५. पुढवि०-आउ० धुवियाणं उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। बादरे कम्मट्ठिदी। बादरपज्जत्ते संखेंज्जाणि वाससहस्साणि। सुहुमाणं असंखेंज्जा लोगा। सेसाणं अपज्जत्तभंगो।

४८६. तेउ०-वाउ० धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च उ० ज० ए०, उ०

कोई विशेषता न होनेसे वह ओघके समान कहा है। असातावेदनीय आदि तीसरे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ गिनाई हैं, उनका काल भी यहाँ ओघके समान घटित हो जानेसे वह ओघके समान कहा है। मात्र पुरुषवेदको ओघप्ररूपणामें अलगसे बतलाया है और यहाँ उसे सम्मिलित कर लिया है। इसलिए इसका ओघमें जिस प्रकार काल कहा है, उसी प्रकार यहाँ उसका अलगसे काल कहना चाहिए; क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल तो ओघके ही समान है। मात्र अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। बात यह है कि इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्भव है और ऐसा जीव संक्लेश परिणामवश नरकमें जानेके पहले व बादमें अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध करता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल जैसा ओघमें बतलाया है, वह यहाँ अविकल घटित हो जाता है, इसलिए यह प्ररूपणा ओघके समान की है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्क, पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्क तथा समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षा काल ओघके समान यहाँ घटित कर लेना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। बात यह है कि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल इन्हीं मार्गणाओंमें सम्भव है, इसलिए इन मार्गणाओंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है। अब रहीं तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण सो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालमें ओघसे कुछ विशेषता है। बात यह है कि ओघ प्ररूपणामें अमुक मार्गणाका कोई बन्धन न होनेसे वहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो काल बतलाया है वह यहाँ सम्भव नहीं है। इन प्रकृतियोंके ध्रुवबन्धिनी होनेसे यहाँ यह इन मार्गणाओं की कायस्थिति प्रमाण ही बनता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८५. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। इनके बादर जीवोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है। बादर पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। सूक्ष्म जीवोंमें असंख्यात लोक प्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इनके बादरोंकी कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है। बादर पर्याप्तकोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८६. अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेस० । अणु० ज० ए०, उ० असंखेँज्जा लोगा । बादरे कम्मट्ठिदी । पज्जत्ते संखेँज्जाणि वाससहस्साणि । सुहुमे असंखेँज्जा लोगा । सेसाणं अपज्जत्तभंगो ।

४८७. वणप्फदि० एइंदियभंगो । तिरिक्खगदितिग० परिय० भाणिदव्वं । बादर०पत्ते० बादरपुढविभंगो । णियोद० पुढविभंगो ।

४८८. पंचमण०–पंचवचि० साद०–देवगदि०–पंचिंदि०-चदुसरीर–समचदु०-दोअंगो०-पसत्थ०४–देवाणु०-अगु०३–उज्जो०-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उक्क० अंतो० । सेसाणं उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० ।

अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। बादरोंमें कर्मस्थिति-प्रमाण है। पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्त जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका ही बन्ध होता है। इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः यहाँ ये ध्रुव-बन्धिनी ही हैं। शेष कथन सुगम है।

४८७. वनस्पतिकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। मात्र यहाँ तिर्यञ्चगतित्रिकको परिवर्तमान प्रकृतियोंके साथ कहना चाहिए। बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें बादर पृथिवी-कायिक जीवोंके समान भङ्ग है। तथा निगोद जीवोंमें पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें अग्निकायिक और वायुकायिक जीव भी सम्मिलित हैं, इसलिए उनमें इनकी अपेक्षा तिर्यञ्चगतित्रिकको ध्रुवबन्धिनी मान कर काल कहा है; पर वनस्पतिकायिक जीवोंमें यह बात नहीं है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चगतित्रिककी परिवर्तमान प्रकृतियोंके साथ परिगणना करनेकी सूचना की है। बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंकी कायस्थिति बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान होनेसे इनमें कालकी प्ररूपणा बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान कही है। निगोद जीवोंकी कायस्थिति यद्यपि ढाई पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, पर इनके बादर जीवोंकी कायस्थिति बादर पृथिवीकायिक जीवोंके ही समान है। यह देखकर यहाँ सामान्यसे निगोद जीवोंकी प्ररूपणा पृथिवीकायिक जीवोंके समान जाननेका निर्देश किया है।

४८८. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय-जाति, चार शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरु-लघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—इन पूर्वोक्त योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ सब प्रकृतियोंके अनु-त्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा प्रथम दण्डकमें जो सातावेदनीय आदि प्रकृतियाँ कही गई हैं, वे सब क्षपक प्रकृतियाँ हैं और क्षपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, यह ओघमें बतला ही आये हैं। अतः वह ओघप्ररूपणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८९. कायजोगी० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छत्त०--सोलसक०--भय--दु०-ओरालि०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उक्क० अणु० ओघं। तिरिक्खगदितिगं च ओघं। सादा०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-आहार०-समचदु०-दोअंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-तित्थय०-उच्चा० उ० ए[1]०। अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं उ० ज० ए०, उ० बेस०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-णिमि० उ० एग०। अणु० णाणावरणभंगो।

४९०. ओरालियका० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छत्त--सोलसक०-भय--दु०-ओरालि०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-पंचंत० उक्क० ओघं[2]। अणु० ज० ए०, उ० बावीसं वाससहस्साणि देसू०। तिरिक्खगदितिगस्स च उक्क० ओघं। अणु० ज० ए०,

इन योगोंमें भी बन जाती है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

४८९. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ओघमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे कहा है और एकेन्द्रियोंके एकमात्र काययोग ही होता है, अतः काययोगमें इन प्रकृतियोंकी प्ररूपणा ओघके समान बन जानेसे वह ओघके समान कही है। तिर्यञ्चगतित्रिककी प्ररूपणाका भी यही कारण है, इसलिए यहाँ वह भी ओघके समान कही है। एक तो सातावेदनीय आदि अधिकतर प्रकृतियाँ परिवर्तमान हैं, दूसरे संज्ञी पञ्चेन्द्रियके काययोगका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तैजसशरीर आदि आठ प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके भी निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ज्ञानावरणके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

४९०. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल

१. ता० प्रतौ उ० [जह०] ए० इति पाठः। २. ता० प्रतौ पंचंत० ओघं इति पाठः।

उ० तिण्णिवाससहस्साणि देसू० । उज्जो० सादभंगो । सेसं कायजोगिभंगो ।

४६१. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त०-सोलसक०-भय-दु०-देवगदि-चदुसरीर-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० उक्क० एग० । अणु० ज० अंतो०, उक्क० अंतो० । णवरि समचदु० अणु० ज० एग० । दोआयु० ओघं । सेसाणं उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो० । एवं वेउव्वियमि०-आहारमि० ।

ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है । उद्योत प्रकृतिका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। तथा शेष प्रकृतियों का भङ्ग काययोगी जीवों के समान है।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। इतने काल तक ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकका निरन्तर बन्ध औदारिककाययोगके रहते हुए अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ही सम्भव है। उसमें भी वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति तीन हजार वर्षप्रमाण होती है; किन्तु इसमें औदारिकमिश्रकाययोगका काल भी सम्मिलित है, इसलिए उसे अलग करने पर कुछ कम तीन हजार वर्ष होते हैं। अतः औदारिककाययोगमें तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६१. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, चार शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि समचतुरस्रसंस्थानके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है। दो आयुओंका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट अनुभागके बन्धयोग्य परिणाम एक समयके लिए ही होते हैं, इसलिए यहाँ पर सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु उसमें भी पहले दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ गिनाई हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध शरीर पर्याप्तिके ग्रहण करनेके एक समय पूर्व होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र समचतुरस्रसंस्थान इसका अपवाद है। इसका शरीर पर्याप्तिके ग्रहण करनेमें एक आदि समयका अन्तर देकर भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। समचतुरस्रसंस्थानके समान शेष प्रकृतियोंके विषयमें भी जानना चाहिए, इसलिए उन सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें इस दृष्टिसे कोई विशेषता नहीं है, इसलिए उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६२. वेउव्वियका० उज्जोवं ओघं। सेसाणं उक्क० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। एवं आहारका०।

४६३. कम्मइ० [थावर] संजुत्ताणं उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिसम०। एवं तससंजुत्ताणं। देवगदिपंचग० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० बेसम०।

४६४. इत्थिवे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-अप्पसत्थव०४-उप०-पंचंत० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। सादा०-आहारदुग-थिर-सुभ-जसगि० उक्क० अणु० ओघं। असादा०-छण्णोक०-चदुआयु०-णिरयगदि०-तिरिक्ख०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-

---

कथनको औदारिकमिश्रकाययोगीके समान कहा है। मात्र इनमें अपनी अपनी प्रकृतियाँ जानकर यह काल घटित करना चाहिए।

४६२. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे उद्योत प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्व ग्रहण करनेके एक समय पूर्व होता है। यतः इस अवस्थामें वैक्रियिककाययोग सम्भव है, अतः वैक्रियिक काययोगमें उद्योत प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान घटित हो जानेसे वह ओघके समान कहा है। तथा वैक्रियिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें स्थावर संयुक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसी प्रकार त्रससंयुक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल जानना चाहिए। देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगके तीन समय एकेन्द्रियोंमें ही सम्भव हैं और उनके देवगतिचतुष्क तथा तीर्थङ्कर प्रकृति इन पाँचका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। इनके सिवा कार्मणकाययोगमें अन्य जितनी प्रकृतियाँ बँधती हैं, वे स्थावरसंयुक्त या त्रससंयुक्त जो भी प्रकृतियाँ हों, उन सबका बन्ध एकेन्द्रियके सम्भव होनेसे उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६४. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कायस्थितिप्रमाण है। सातावेदनीय, आहारकद्विक, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। असातावेदनीय, छह नोकषाय, चार आयु, नरकगति, तिर्यञ्चगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावरादि०४–अथिरादिछ०–णीचा० उक्क० अणु० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। पुरिस०-मणुसग०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। देवगदि०४ उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णि-पलिदो० देसू०। पंचिंदि०-समदु०-पसत्थ०- तस०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उ० पणवण्णं पलिदो० देसू०। ओरालि० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० पणवण्णं पलि० सादि०। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४–अगु०-णिमि० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। पर०-उस्सा०-बादर-पज्ज०-पत्ते० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पलि० सादि०। तित्थ० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०।

स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। औदारिक शरीरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कायस्थितिप्रमाण है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी होनेसे इनका स्त्री-वेदकी कायस्थितिप्रमाण काल तक निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल स्त्रीवेदकी कायस्थितिप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदकी कायस्थिति सौ पल्य पृथक्त्वप्रमाण है। दूसरे दण्डकमें कही गई साता आदि और तीसरे दण्डकमें कही गई असाता आदि सब परा-वर्तमान प्रकृतियाँ हैं। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक किसी भी अवस्थामें नहीं बनता। ओघसे साता आदिका और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके असाता आदिका यह काल अन्तर्मुहूर्त ही बतलाया है, इसलिए इन दोनों दण्डकोंमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल क्रमसे ओघ और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान कहा है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब इनका काल एक समान है, तब उसे अलग-अलग क्यों कहा? समाधान यह है कि सातादिक दण्डकमें एक तो आहारकद्विक सम्मिलित हैं। दूसरे सातावेदनीय, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिका अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बिना भी बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६५. पुरिसवेदेसु पढमदंडओ णाणावरणादि० सागरोवमसदपुधत्तं। विदिय-दंडओ सादादि० तदियदंडओ असादादि० इत्थिभंगो। मणुसगदिपंचगदंडगस्स अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। सेसं पंचिंदियपज्जत्तभंगो। णवरि पंचिंदियदंडओ तेवट्ठिसागरोवमसदं।

की समानता ओघके समान बतलाई है और असातादिक दण्डकमें जो प्रकृतियाँ कही गई हैं, उनका तिर्यञ्चके अपनी-अपनी व्युच्छित्ति काल तक नियमसे बन्ध होता है, अतः यहाँ इनके कालकी समानता पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान बतलाई है। पुरुषवेद आदि चौथे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ कही हैं, उनका देवी सम्यग्दृष्टिके नियमसे बन्ध होता है और देवीके सम्यग्दर्शनकी अवस्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। इसके बाद यदि वह सम्यग्दर्शनके साथ मरती है तो नियमसे पुरुषवेदी मनुष्य ही होती है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कहा है। उत्तम भोगभूमिकी मनुष्यिनी अपर्याप्त अवस्थाको छोड़कर नियमसे देवगतिचतुष्कका बन्ध करती है, अतः यहाँ देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। देवीके सम्यग्दर्शनके प्राप्त होने पर पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका नहीं; इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कहा है। देवीके पचपन पल्य काल तक तो औदारिकशरीरका बन्ध होगा ही। इसके बाद भी पर्यायान्तरमें उसका अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य कहा है। तैजसशरीर आदि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। स्त्रीवेदीके अपनी कायस्थिति प्रमाण काल तक इनका नियमसे बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल स्त्रीवेदकी कायस्थितिप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदकी कायस्थितिका निर्देश हम पहले कर ही आये हैं। परघात, उच्छ्वास, बादर और पर्याप्त ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। देवीके तो इनका बन्ध होता ही है, पर वहाँ उत्पन्न होनेके पहले अन्तर्मुहूर्त काल तक भी इनका बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्यग्दृष्टि मनुष्यिनीके सम्भव है, देवी सम्यग्दृष्टिके नहीं। और मनुष्यिनीके सम्यग्दर्शन कुछ कम पूर्वकोटि काल तक ही उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६५. पुरुषवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदिक और तीसरे दण्डकमें कही गई असातावेदनीय आदिकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकदण्डकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय दण्डकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेसठ सागर है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए यहाँ पर प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। साता आदि दूसरे दण्डकमें और असाता आदि तीसरे दण्डकमें परावर्तमान प्रकृतियोंका विचार किया है। इसलिए यहाँ पुरुषवेदमें इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल स्त्रीवेदी जीवोंके समान बन आता है, अतः वह स्त्रीवेदी जीवोंके समान कहा है। तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंके मनुष्यगति पञ्चकका नियमसे बन्ध होता रहता है, इसके बाद उसके मनुष्य होने पर और देवपर्यायके पहले देवगतिचतुष्कका बन्ध होता है, अतः मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६६. णवुंसगे पंचणाणावरणादिपढमदंडं० सादादिविदियदंडओ असादादितदियदंडओ ओघं। पुरिस०-मणुसग०-वज्जरि०-मणुसाणु० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। तिरिक्खगदितिगं ओघं। देवगदि०४ उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। ओरालि०अंगो० ओघं। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उ० अणंतका०। समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० एग०। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू०। तित्थ० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसा० सादि०।

अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। पञ्चेन्द्रियदण्डकमें पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्क ये सात प्रकृतियाँ ली जाती हैं। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें जो एक सौ पचासी सागर बतलाया है, उसमें नारकके बाईस सागर सम्मिलित हैं और नारकी नपुंसकवेदी होता है, जब कि यहाँ पुरुषवेदीका विचार चला है, अतः बाईस सागर कमकर इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेसठ सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

४६६. नपुंसक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि, प्रथम दण्डक, सातावेदनीय आदि द्वितीय दण्डक और असातावेदनीय आदि तृतीय दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। औदारिक आङ्गोपाङ्गका भङ्ग ओघके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय नपुंसक ही होते हैं और प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे बनता है। ओघ प्ररूपणामें भी यह काल इसी अपेक्षासे कहा है, इसलिए तो पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके कालको ओघके समान कहा है। तथा दूसरे और तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त यहाँ भी उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-

१. ता० आ० प्रत्यो पंचमदंडं० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९७. अवगदवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो० ।

४९८. कोधादि०४ तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० उक्क० एग० । अणु० ज०

भागबन्धके कालको ओघके समान कहा है । नरकमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । इतने काल तक इस जीवके पुरुषवेद, मनुष्यद्विक और प्रथम संहननका नियमसे बन्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है । तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण ओघसे कहा है । यहाँ भी यह बन जाता है, क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीव नपुंसक ही होते हैं, अतः यह प्ररूपणा ओघके समान की है । नपुंसकवेदमें देवगतिचतुष्कका निरन्तर बन्ध सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्चके ही सम्भव है और ऐसे जीवके न तो जीवनके प्रारम्भसे सम्यग्दर्शन होता है और न यह भोगभूमिज होता है और कर्मभूमिमें इनकी उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटिसे अधिक नहीं होती, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है । नरकमें पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्‌वास और त्रस चतुष्कका निरन्तर बन्ध होता है, तथा अन्तर्मुहूर्त काल तक आगे-पीछे भी इनका बन्ध होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । यहाँ औदारिक आङ्गोपाङ्गके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर नारकियोंकी मुख्यतासे प्राप्त होता है । ओघसे यह काल इतना ही बनता है, अतः इसका काल ओघके समान कहा है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अपनी व्युच्छित्तिके पूर्वतक इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है, क्योंकि नपुंसकवेदकी इतनी कायस्थिति है । नरकमें सम्यक्त्व के कालके भीतर समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका ही बन्ध होता है; इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका नहीं। इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है । तीर्थंकर प्रकृतिका तीसरे नरक तक ही बन्ध सम्भव है । उसमें भी ऐसा जीव साधिक तीन सागरकी आयुसे अधिक आयु लेकर वहाँ उत्पन्न नहीं होता, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

४९७. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—यहाँ सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपक-सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें और शेष अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उपशमश्रेणि से उतरते हुए अपगतवेदके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका एक समय काल कहा है । तथा अपगतवेदके शेष समयमें इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है । किन्तु अपगतवेदका जघन्य काल एक समय है और अपगतवेदी होनेके प्रारम्भ कालसे लेकर उपशान्तमोह तकका काल व उतर कर पुनः सवेदी होने तकका काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

४९८. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट

---

१. ता० प्रतौ णिमि० अणु० ज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एग०, उक्क० अंतो० । सेसाणं मणजोगिभंगो ॥

४६६. मदि०-सुद० पंचणाणावरणादिपढमदंडओ सादादिविदियदंडओ तिरिक्खगदितिगं च ओघं । असादा—सत्तणोक०-चदुआयु०--णिरयगदि--चदुजादि--पंचसंठा०-पंचसंघ०--णिरयाणु०--आदाव०--अप्पसत्थवि०--थावरादि०४--अथिरादिछ० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो० । एवं उज्जोवं वज्जरिस० । णवरि उक्क० एग० । मणुस०-मणुसाणु० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० ऍक्कत्तीसं० सादि० । देवगदि४--समचदु०--पसत्थवि०--सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू० । पंचिं०--ओरालि०अंगो०-पर०--उस्सा०--तस०४ उक्क० एग० । अणु० ज० ए०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि० ।

अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—मनोयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करके बतला आये हैं, वह क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें भी बन जाता है। फिर भी यहाँ पर तैजसशरीर आदि कुछ प्रकृतियोंका अलगसे उल्लेख कर जो उनका काल कहा है सो प्रकारका दिग्दर्शन कराना मात्र उसका प्रयोजन है। तात्पर्य यह है कि जो क्षपक प्रकृतियाँ हैं, उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त जैसा मनोयोगियोंके कहा है, वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त मनोयोगी जीवोंके समान यहाँ भी होता है, कारण कि चारों कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा क्षपकश्रेणिमें भी चारों कषायोंका सद्भाव पाया जाता है। मात्र स्वामित्वकी अपेक्षा जहाँ जो विशेषता आती है, उसे जान कर यह काल घटित करना चाहिए।

४६६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक, सातावेदनीय आदि द्वितीय दण्डक और तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार उद्योत और वज्रर्षभनाराचसंहननके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालि० उ० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० अणंतका० । तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४-अगु०-णिमि० उक्क० अणु० ओघं ।

५००. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्खग०-अप्पसत्थवण्ण४-तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०-पंचंत० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम० ।

एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गईं पाँच ज्ञानावरणादिके अनुभागबन्धका काल दूसरे दण्डकमें कही गईं सातावेदनीय आदिके अनुभागबन्धका काल और तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुभागबन्धका काल जो ओघमें कहा है,वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। असातावेदनीय और सात नोकषाय आदि सब परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। उद्योत और वज्रर्षभनाराच संहननका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए क्रमसे नारकी और देव-नारकीके एक समयके लिए होता है,इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इन दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल असातावेदनीय आदिके समान है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि ये परिवर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इन दोनों प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध अन्तिम ग्रैवेयकमें अधिक समय तक उपलब्ध होता है। तथा नौवें ग्रैवयकमें उत्पन्न होनेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। देवगतिचतुष्क आदिका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा यहाँ इनका निरन्तर अधिक समय तक अनुभागबन्ध उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त जीवके होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनका अधिक काल तक अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सातवें नरकमें सम्भव है और वहाँ उत्पन्न होनेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक भी इनका बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। औदारिकशरीरका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसका निरन्तर बन्ध एकेन्द्रियके अनन्त काल तक होता रहता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। तैजसशरीर आदि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। ओघसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो काल कहा है, वह मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानीके सम्भव है, इसलिए यह ओघके समान कहा है।

५००. विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसू०। सादा०-देवगदि४-समचदु०-पसत्थ०-उज्जो०-थिरादिछ०-उच्चा० उक्क० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०। मणुसगदि०-मणुसाणु० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० एँक्कत्तीसं० देसू०। पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थव०४-अगु०३-तस४-णिमि० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। सेसाणं असादादीणं उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०।

५०१. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०[1]-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा-०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस४-सुभग-

---

अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, देवगतिचतुष्क, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, उद्योत, स्थिरादि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति और मनुष्यत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजाति औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। शेष असातादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ— विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर होनेसे यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गईं प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गईं प्रकृतियाँ परिवर्तमान हैं और इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगतिद्विक और पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए तो इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु मनुष्यगतिद्विकका अधिक समय तक निरन्तर बन्ध नौवें ग्रैवेयकमें सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर कहा है और पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका अधिक समय तक निरन्तर बन्ध सातवीं पृथिवीमें होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। शेष असातादि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

५०१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर,

---

[1] आ० प्रतौ चदुदंसणा० इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० एग० । अणु० ज० अंतो०[1], उक्क० छावट्टि० सादि० । सादा०-अरदि-सोग-आहार०दुग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो० । अपच्चक्खाणा०४—तित्थय० उक्क० एग० । अणु० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । पच्चक्खाणा०४ उक्क० एग० । अणु० ज० अंतो०, उक्क० बादालीसं[2] ० सादि० । हस्स-रदि-दोआयुग० उक्क० अणु० ओघं । मणुसगदिपंचग० उक्क० ओघं । अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० । देवगदि०४ उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० सादि० । एवं ओधिदं०-सम्मादिट्ठि त्ति ।

समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छियासठ सागर है। सातावेदनीय, अरति, शोक, आहारकद्विक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। प्रत्याख्यानावरण चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर है। हास्य, रति और दो आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें जो ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियाँ कही हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका क्षपकश्रेणीमें अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा आभिनिबोधिक आदि तीनों ज्ञानोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल चार पूर्वकोटि अधिक छियासठ सागर है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छियासठ सागर कहा है। सातादि दूसरे दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं और इनमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर अन्तिम समयमें होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका क्षपकश्रेणिमें अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा परावर्तमान होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चार, तीर्थङ्कर और प्रत्याख्यानावरण चारका उत्कृष्ट

१. ता० प्रतौ अणु० अंतो० इति पाठः । २. ता० प्रतौ अड [दा] लीसं, आ० प्रतौ चोदालीसं इति पाठः ।

५०२. मणपज्जवे पंचणा-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पंचिंदि० वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडी देसूणं। सेसं ओधिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-च्छेदो०। एवं चेव परिहार०-संजदासंजद०। णवरि धुविगाणं उक्क० एग०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०।

अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनमेंसे अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थङ्करके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें तो इनका निरन्तर बन्ध होता ही है। तथा अप्रत्याख्यानावरणका सर्वार्थसिद्धिसे आनेके बाद अविरत अवस्थामें और तीर्थङ्करका पहले और बादमें भी विरत और अविरत अवस्थामें बन्ध होता है। किन्तु प्रत्याख्यानावरण चारके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव इतने ही काल तक अविरत और विरताविरत अवस्थामें रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर कहा है। हास्य, रति और दो आयु अर्थात् मनुष्यायु और देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल जिस प्रकार ओघमें बतला आये हैं, उससे यहाँ कोई विशेषता न होनेसे वह ओघके समान कहा है। मनुष्यगतिपञ्चकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्व विशुद्ध सम्यग्दृष्टि देव नारकीके होता है। ओघसे यह स्वामित्व इसी प्रकार है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वार्थसिद्धिमें निरन्तर सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि ये क्षपक प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अपनी बन्ध-व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें ही होता है। तथा जो क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्तिके पूर्व मनुष्यायुका बन्ध कर क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है, उसके निरन्तर देवगति चतुष्कका बन्ध होता रहता है। अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। शेष कथन सुगम है।

५०२. मनःपर्ययज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानमें प्रथम दण्डकमें कही गईं अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०३. सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो। असंजदे पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-अप्पस०४-उप०-पंचंत० उक्क० अणु० ओघं। एवं सादादिदंडओ०। पुरिस०-ओरालि०अंगो० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। तिरिक्ख०३-मणुस०-मणुसाणु०-वज्जरि०-देवगदि०४ तित्थयरं च ओघं। पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस४-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उ० एग०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० उक्क० अणु० ओघं।

अनुभागबन्ध असंयमके अभिमुख होने पर अन्तिम समयमें और प्रशस्त प्रकृतियोंका क्षपकश्रेणि में अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिसे उतरते समय एक समयके लिए होकर दूसरे समयमें मरकर देव होनेसे एक समयके लिए प्राप्त होता है और मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि होनेसे इतने समय तक भी होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। इनके सिवा शेष सब परावर्तमान प्रकृतियाँ बचती हैं, इसलिए उनका जैसे अवधिज्ञानीके काल बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित हो जानेसे वह अवधिज्ञानी जीवोंके समान कहा है। संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके यह सब काल इसी प्रकार प्राप्त होता है, इसलिए उनके कथनको मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान कहा है। परिहार-विशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें और सब काल तो इसी प्रकार है सो अपना-अपना स्वामित्वका विचार कर वह पूर्वोक्त प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन दोनोंके ध्रुवबन्ध-वाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन दोनों मार्गणाओंकी प्राप्ति श्रेणिमें सम्भव नहीं है और इनमें मार्गणाओंका जघन्य काल अन्त-मुहूर्त है, अतः इनमें सब ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

५०३. सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। इसी प्रकार सातादि दण्डकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान जानना चाहिए। पुरुषवेद और औदारिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तिर्यञ्चगतित्रिक, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगति चतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—अपगतवेदसे सूक्ष्मसाम्परायसंयममें अन्य कोई विशेषता नहीं है, इसलिए सूक्ष्म-साम्परायमें बँधनेवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल अपगतवेदी जीवोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०४. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० ओघं।

५०५. किण्ण-णील-काउ० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय०-दु०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०--तेजा०-क०--ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस सत्त साग० सादि०। सादासाद०-छण्णोक०-चदुआयु०-वेउव्वियछ०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-आदाव-थावरादि४-थिरादितिण्णियुगल०-दूभग-दुस्सर-अणादें० उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। पुरिस०-मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-

---

समान कहा है। असंयत जीवोंमें प्रायः अधिकतर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान बन जाता है। जिसमें कुछ विशेषता है, उनका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं—पुरुषवेदका निरन्तर बन्ध सर्वार्थसिद्धिमें और उसके बाद मनुष्य पर्यायमें सम्भव है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्गका निरन्तर बन्ध भी वहाँ सम्भव है, पर यहाँ नरककी अपेक्षा लेना चाहिए; कारण कि नरकसे निकलनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक औदारिक आङ्गोपाङ्गका बन्ध होता रहता है, इसलिए असंयतोंमें इन दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। असंयतोंमें पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख होनेपर असंयतसम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनका निरन्तर बन्ध सर्वार्थसिद्धिमें और वहाँ से च्युत होनेपर भी होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

५०४. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—त्रसपर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रियों की मुख्यता है और इनके चक्षुदर्शन नियमसे होता है, इसलिए त्रसपर्याप्तकोंके पहले जो प्ररूपणा कर आये हैं, वह चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें अविकल बन जाती है। तथा अचक्षुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक होता है, इसलिए ओघप्ररूपणा अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें अविकल बन जाती है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

५०५. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोकषाय, चार आयु, वैक्रियिकषट्क, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, आतप, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्सर-आदेंज्ज०-उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीस सत्तारस [सत्त] साग० देसू०। उज्जोवं ओघं। तित्थय० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०। एवं णील०। काऊणं तित्थय० तदिय-पुढविभंगो। णील० काउ० तिरिक्ख०३–उज्जो० सादावेदणीयभंगो।

५०६. तेउ० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुसगदि-ओरालि०-ओरालि०अंगो'०-वज्जरि०-अप्पसत्थ०४–मणुसाणु०-उप०-पंचंत उ०

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल नीललेश्यामें जानना चाहिए। तथा कापोत लेश्यामें तीसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। तथा नील और कापोत लेश्यामें तिर्यञ्चगतित्रिक और उद्योतका भङ्ग सातावेदनीयके समान है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का निरन्तर अनुभागबन्ध कृष्णादि तीन लेश्याओंमें उनके उत्कृष्ट काल तक सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। पर पुरुषवेद आदि प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध इन लेश्याओंमें सम्यग्दृष्टिके ही सम्भव है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कृष्ण लेश्यामें कुछ कम तेतीस सागर, नील लेश्यामें कुछ कम सत्रह सागर और कापोत लेश्यामें कुछ कम सात सागर कहा है। सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः तीनों लेश्याओंमें इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। कृष्ण और नील लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध मनुष्योंके ही होता है और इनके इन लेश्याओंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए तो इन दोनों लेश्याओंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है और कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरकतक साधिक तीन सागरकी आयुवाले नारकियोंके भी सम्भव है, इसलिए कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीसरी पृथिवीके समान कहा है। सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके तिर्यञ्चगतित्रिकका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए कृष्णलेश्यामें तो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर बन जाता है, पर नील और कापोत लेश्यामें इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का उत्कृष्ट काल साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर नहीं बनता। किन्तु प्रथम दण्डकमें इनका यह काल कह आये हैं, अतः उसका वारण करनेके लिए यहाँ पर इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल सातावेदनीयके समान कहा है। इसी प्रकार उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ओघके समान कृष्ण लेश्यामें ही बनता है। किन्तु यहाँ पहले तीनों लेश्याओंमें इसका काल ओघके समान कह आये हैं जो नील और कापोत लेश्यामें नहीं बनता, अतः इन दोनों लेश्याओंमें उसके कालका अलगसे निर्देश किया है।

५०६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, अप्रशस्त

१. ता० आ० प्रत्योः ओरालि० तेजा० क० ओरालि० अंगो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० एग०, उ० बेसाग० सादि० । सादा०-देवगदि-वेउव्वि०-आहार०-दोअंगो०-देवाणु०-थिर-सुभ-जस० उक्क० एग०। अणु०ज० एग०,णवरि देवगदि०४ अंतो०, उ० अंतो० । असादा०-छण्णोक०-तिण्णिआयु०-तिरिक्खग०-एइंदि०-पंचसंठा०--पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०--अप्पसत्थ०--थावर०--अथिरादिछ०-णीचा० उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । पंचिंदि०-समचदु०-[पर०-उस्सा०--] पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उ० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० बेसाग० सादि० । तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० उक्क० एग० । अणु० ज० अंतो०, उ० बेसाग० सादि० । एवं पम्माए वि । णवरि एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज० । पंचिंदि०-तस० धुवं कादव्वं ।

वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, छह नोकषाय, तीन आयु, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरको छोड़कर काल कहना चाहिए। तथा पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसको ध्रुव कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पीतलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर होनेसे यहाँ ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर कहा है। अन्य जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल इतना कहा है,वह भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। साता दण्डक और असाता दण्डककी सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि जितनी प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, उनका सर्वविशुद्ध अप्रमत्त संयतके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। अतः उन सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। पीत लेश्याके कालमें मनुष्य और तिर्यञ्चके नियमसे देवगति चतुष्कका बन्ध होता है और इनके पीतलेश्यका का काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ देवगतिचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०७. सुक्काए पंचणाणावरणादिसम्मादिट्ठिपगदीओ पुरिस०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं सा० सादि० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं४ उ० ज० एग०, उ० बेसम० । अणु० ज० एग०, उ० एँक्कत्तीसं० सादि० । सादादिदंडओ ओघं । असादा०-छण्णोक०-दोआयु०-पंच-संठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा० उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । मणुसगदिपंचग० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं सा० । देवगदि०४ सादभंगो। पंचिंदिय-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-तस०४-णिमि०-तित्थ० उ० एग० । अणु० ज० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि० । समचदु०-पसत्थ०--सुभग--सुस्सर--आदें०-उच्चा० उक्क० एग० । अणु० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि० ।

जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यही बात तैजसशरीर आदि प्रकृतियोंके विषयमें भी जान लेनी चाहिए। पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक अठारह सागर है, इसलिए जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पीत लेश्यामें साधिक दो सागर कहा है, उनका यहाँ साधिक अठारह सागर काल कहना चाहिए। तथा पद्म लेश्यामें एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरका बन्ध न होनेसे पञ्चेन्द्रिय जाति और त्रस ये दो ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हो जाती हैं, अतः इनका काल तैजसशरीर आदि प्रकृतियोंके समान घटित कर लेना चाहिए; क्योंकि ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं,इसलिए उनके समान यहाँ काल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती। शेष कथन सुगम है।

५०७. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि सम्यग्दृष्टिके बँधनेवाली ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ, पुरुषवेद, अप्रशस्त वर्णचार, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। सातादि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। असातावेदनीय, छह नोकषाय, दो आयु, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें ये प्रकृतियाँ हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तराय। ये प्रकृतियाँ सम्यग्दृष्टिके भी बँधती रहती हैं, इसलिए शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट काल तक इनका बन्ध सम्भव होनेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०८. भवसि० ओघं। अब्भवसि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि० तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवण्ण४-अगु०-उप०--णिमि०--पंचंत० उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० अणंतका०। सादासाद०-सत्तणोक०-चदु-आयु०-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०--णिरयाणु०-आदाउज्जो०--अप्पसत्थ०-थावरादि४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०-जस०-अजस० उ० ज० एग०, उ० बेसम०। अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्खगदितिगं ओघं। मणुस०-मणुसाणु० उक्क० ओघं। अणु० मदि०भंगो। एवं वज्जरि०। देवगदि०४[1]-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर--आदेंज्ज--उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० ज० एग०, उ०

इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंका बन्ध अन्तिम ग्रैवेयक तक ही सम्भव है,इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। सातादण्डक और असाता दण्डकका विचार सुगम है। मनुष्यगतिपञ्चकका सर्वार्थसिद्धिमें निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। कोई जीव एक समय तक उपशमश्रेणिमें देवगतिचतुष्कका बन्ध कर मर कर देव हो जाय तो उसके इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय बन जाता है, इसलिए यहाँ देवगतिचतुष्कका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि और समचतुरस्र संस्थान आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय स्पष्ट ही है। शुक्ललेश्याका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है और यहाँ पञ्चेन्द्रियजाति आदि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। किन्तु समचतुरस्र आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर तक सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

५०८. भव्य मार्गणामें ओघके समान भङ्ग है। अभव्य मार्गणामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार वज्रर्षभनाराचसंहननका काल जानना चाहिए। देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय

---

१. ता० आ० प्रत्योः एवं सव्वाणि देवगदि०४ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिपलि० देसू० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ उ० ज० एग०, उ० वेसम० । अणु० मदि०भंगो ।

५०९. खइगसं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० वेसम० । अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं सा० सादि० । आहारदुग--थिर-सुभ--जस० ओघं । असादा०--चदुणोक०--दोआयु०--अथिर०असुभ-अजस० उक्क० अणु० ओघं । मणुसगदिपंचग० उक्क० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० । देवगदि०४ उक्क० अणु० ओघं । पंचिंदि०-तेजा०-क०-[समचदु०-]पसत्थ०४-अगु०३--पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा० उक्क० एग० । अणु० ज० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि० ।

है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल मत्यज्ञानी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—अभव्योंमें पाँच ज्ञानावरणादिका निरन्तर अनुत्कृष्ट बन्ध अनन्त काल तक सम्भव होनेसे यहाँ वह उक्त प्रमाण कहा है । सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है । तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण ओघसे घटित करके बतला आये हैं । वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है । मत्यज्ञानियोंके मनुष्यगतिद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर बतला आये हैं, वह यहाँ इन दोनोंका बन जाता है, इसलिए वह मत्यज्ञानी जीवोंके समान कहा है । उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त होनेपर देवगति आदिका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है । नरकमें व वहाँसे निकलने पर अन्तमुहूर्त काल तक पञ्चेन्द्रियजाति आदिका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिये यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके समान साधिक तेतीस सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

५०९. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, आहारकद्विक, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । असातावेदनीय, चार नोकषाय, दो आयु, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१०. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०चदुसंज०-पुरिस०-भय०-दु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४ -पसत्थवि० - तस४-सुभग-सुस्सर-आदें० -णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उ० एग०। अणु० ज० अंतो०, उक्क० छावट्ठि०। सेसं आभिणि०भंगो। णवरि देवगदि०४ अणु० उक्क० तिण्णि पलि० देसू०।

५११. उवसम० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ० ए०। अणु० ज० उ० अंतो०। सादासाद०-

विशेषार्थ—क्षायिकसम्यक्त्वमें ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति होने तक निरन्तर बन्ध सम्भव है और यह काल उत्कृष्टरूपसे साधिक तेतीस सागर है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। मनुष्यगतिपञ्चकका सर्वार्थसिद्धिमें निरन्तर बन्ध होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणिसे उतरकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंका बन्ध करके पुनः उनकी बन्धव्युच्छित्ति करता है, उसके इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। इनका निरन्तर बन्ध साधिक तेतीस सागर काल तक सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

५१०. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है। शेष भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगति चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वमें प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके एक समयके लिए होता है तथा पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके एक समयके लिए होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर कहा है। देवगति चतुष्कका वेदक सम्यक्त्वमें अधिक काल तक बन्ध उत्तम भोगभूमिमें ही सम्भव है और वहाँ पर वेदक सम्यक्त्व कुछ कम तीन पल्य तक ही पाया जाता है, इसलिए यहाँ देवगति चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। शेष कथन सुगम है।

५११. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल

---

१. आ० प्रतौ पुरिस० पंचिंदि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरदि-सोग-देवगदि४—आहार०दुग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० उ०ए० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । हस्स-रदि-मणुसगदिपंच० उ० ज० ए०, उ० बेसम० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० ।

५१२. सासणे सादासाद०-इत्थि०-अरदि-सोग-वामण०-खीलिय०-उज्जो०-अप्प-सत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०-जस०-अज० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । पुरिस०-हस्स-रदि-तिण्णिआयु०-चदुसंठा०-चदुसंघं० उ० ज० ए०, उ० बेस० । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । सेसाणं उ० ए० । अणु० ज० ए०, उ० छावलियाओ ।

एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति शोक, देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । हास्य, रति और मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—उपशमसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ विचार केवल उत्कृष्ट अनुभागबन्धके कालका करना है । पाँच ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है तथा सातक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इन सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । मात्र मनुष्यगतिपञ्चकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध देव और नारकीके तथा हास्य और रतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त चारों गतिके जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है । शेष कथन सुगम है ।

५१२. सासादनसम्यक्त्वमें सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, वामन-संस्थान, कीलकसंहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, हास्य, रति, तीन आयु, चार संस्थान और चार संहननके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवली है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें जो प्रकृतियाँ गिनाई हैं, उनमेंसे कुछका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध चारों गतिके सर्वसंक्लिष्ट जीवके और कुछका चारों गतिके सर्वविशुद्ध जीवके होता है । यतः यह एक समय तक ही होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है; छह आवलि नहीं

---

१ ता० प्रतौ तिण्णिआयु० चदुसंघ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१३. सम्मामि० सादासाद०--अरदि-सो०-थिराथिर--सुभासुभ-ज०-अजस० उ० ए०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। हस्स-रदि० ओघं। सेसाणं उ० ए०। अणु० ज० उ० अंतो०। मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो। सण्णी० पंचिंदियपज्जत्तभंगो।

५१४. असण्णीसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बेसम०। अणु० ज० ए०,उ० अणंतकाल०। तिरिक्खगदितिगं ओघं। सेसाणं उ० ज० ए०,उ० बेस०।

सो इसका यह कारण प्रतीत होता है कि ये सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः छह आवलि कालके भीतर भी इनके बन्धका परिवर्तन सम्भव है, अतः वह छह आवलि काल द्वारा न बतला कर अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा व्यक्त किया है। किन्तु पुरुषवेद आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंसे होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण पहले कह ही आये हैं। शेष जो पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ हैं,उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वसंक्लेशयुक्त जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा वे ध्रुवबन्धिनी हैं तथा सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है, अतः उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि कहा है।

५१३. सम्यग्मिथ्यात्वमें सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भंग है। संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए तो यहाँ सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तथा ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यद्यपि वैक्रियिकषट्क और औदारिक चतुष्क इनका भी सम्यग्मिथ्यादृष्टिके बन्ध होता है, पर यहाँ वे अधिकारीभेदसे बँधनेके कारण परावर्तमान नहीं हैं। अब रहा सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके जघन्य कालका विचार सो हास्य और रतिको छोड़कर किसीका मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर और किसीका सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर बन्ध होता है, अतः इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। हास्य और रतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंसे होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान बन जानेसे वह ओघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

५१४. असंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण; नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। तिर्यञ्चगति त्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० ज० ए०, उ० अंतो० ।

५१५. आहारगेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-तिरिक्ख०-ओरालि०-अप्पसत्थ०४–तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०-पंचंत०- उ० ओघं । अणु० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखे० । तेजइगादीणं पि उ० ओघं । अणु० णाणा०भंगो० । सेसाणं पि ओघभंगो[1] । तित्थ० उ० ए० । अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । अणाहारा० कम्मइगभंगो ।

एवं उक्कस्सकालं समत्तं ।

५१६. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-अप्पसत्थवण्ण०४–उप०-पंचंत० जह० एग० । अज०

समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यता है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है । शेष कथन सुगम है ।

५१५. आहारक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तैजसशरीर आदि प्रकृतियोंके भी उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ओधके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल भी ओघके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—आहारक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेसे इनमें पाँच ज्ञानावरणादि और तैजसशरीर आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिके अपूर्वकरणमें अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसका निरन्तर बन्ध सर्वार्थसिद्धिमें और उसके आगे पीछेकी मनुष्य पर्यायमें सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ ।

५१६. जघन्य कालका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक

---

1. ता० प्रतौ सेसाणं ओघभंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिभंगा०। ज० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल०। सादासाद०-चदुआयु-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०--णिरयाणु०--अप्पसत्थवि०-थावरादि०४--थिराथिर-सुभासुभ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-जस०-अजस० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। इत्थि०--णवुंस०--अरदि०सोग--आदाउज्जोव० ज० ज० एगं०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। पुरिस० ज० ए०। अज० जह० एगं०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि०। हस्स-रदि-आहारदुगं ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० असंखेंज्जा० लोगा। मणुस०-वज्जरि०-मणुसाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं। देवगदि-देवाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० सादि०। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४--अगु०-णिमि० ज० ज०

समय है। अजघन्य अनुभागबन्धके तीन भङ्ग हैं। उनमेंसे सादि-सान्त विकल्पकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। साता वेदनीय, असाता-वेदनीय, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छियासठ सागर है। हास्य, रति और आहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एकसौ पचासी सागर है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल

१. ता० आ० प्रत्योः तिभंगि० इति पाठः। २. ता० प्रतौ सादासादासाद (?) इति पाठः। ३. ता० प्रतौ आदावुज्जोव० ज० ए० इति पाठः। ४. ता० प्रतौ अज० ए० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एगं०, उक्क० अणंतकालमसंखेंज्जपोंग्गलपरियट्टं । वेउव्वि०—वेउव्वि०अंगो० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० देवगदिभंगो । समचदु०-पसत्थ०--सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० बेछावट्ठि साग० सादि० तिण्णि पलि० देसू० । ओरालि०-अंगो० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि० । तित्थ० ज० एग० । अज० ज० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि० ।

एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल देवगतिके समान है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य साधिक दो छियासठ सागर है। औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें जितनी प्रकृतियाँ गिनाई हैं, उनका जघन्य अनुभागबन्ध एक समय तक ही होता है; क्योंकि इनका जघन्य अनुभागबन्ध यथास्वामित्व अपनी-अपनी बन्ध व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा ये सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धके तीन भङ्ग बन जाते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमेंसे अनादि अनन्त भङ्ग अभव्योंके होता है। अनादि-सान्त भङ्ग भव्योंके अपनी-अपनी बन्ध-व्युच्छित्तिके पूर्व तक होता है और सादि-सान्त भङ्ग उन भव्योंके होता है, जिन्होंने यथायोग्य सम्यक्त्व पूर्वक उपशमश्रेणि आरोहण किया है। इनमेंसे तीसरे भङ्गकी अपेक्षा इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि अपनी-अपनी बन्ध-व्युच्छित्तिके बाद लौटकर पुनः इनका बन्ध प्रारम्भ होने पर इनका पुनः बन्धव्युच्छित्तिके योग्य अवस्थाके उत्पन्न करनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। यथा किसी भव्यने अर्धपुद्गल परिवर्तनके प्रथम समयमें उपशम सम्यक्त्वको उत्पन्नकर मिथ्यात्वकी बन्धव्युच्छित्ति की। पुनः वह मिथ्यात्वमें आकर उसका बन्ध करने लगा, तो उसे पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लगेगा। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त घटित कर लेना चाहिए। तथा अर्धपुद्गल परावर्तन कालके प्रारम्भमें और अन्तमें इन सब प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति करने पर इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिक दूसरे दण्डकमें जितनी प्रकृतियाँ कही हैं, उनमेंसे कुछका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामवाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके और कुछका मध्यम परिणामवाले मिथ्यादृष्टिके होता है, यतः इनका जघन्य अनुभागबन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक चार समय तक होता रहता है; क्योंकि

---

१. ता० प्रतौ अज० एग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके अनुभागबन्धके कारणभूत परिणामोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा चार आयुओंको छोड़कर ये परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक ही बन्ध होता है। तथा चार आयुओंका यद्यपि एकबार बन्ध अन्तर्मुहूर्त तक ही होता है, पर इनका एक समय तक अजघन्य बन्ध होकर दूसरे समयमें जघन्य बन्ध सम्भव है। अतः इन सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेद आदिके जघन्य अनुभागबन्धका जो स्वामी बतलाया है, उसके अनुसार इनके जघन्य अनुभागबन्धके योग्य परिणाम दो समयसे अधिक काल तक नहीं हो सकते। अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। पुरुषवेदका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपक अनिवृत्तिकरण जीवके अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा यह एक तो परावर्तमान प्रकृति है। दूसरे मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्व होकर सम्यक्त्वके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो छियासठ सागरोपम है और ऐसे जीवके एकमात्र पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, अतएव इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छियासठ सागर कहा है। हास्य और रतिका जघन्य अनुभागबन्ध अपूर्वकरण क्षपकके अपनी बन्ध-व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें और आहारकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तसंयतके अभिमुख अप्रमत्तसंयतके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा हास्य और रति ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अब रहीं आहारकद्विक सो इनका उपशमश्रेणिमें एक समय तक अजघन्य अनुभागबन्ध बन सकता है, क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय इनका एक समय तक बन्ध करके मरा और देव हो गया, उसके यह सम्भव है। तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होता है, यह स्पष्ट ही है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा ये एक तो प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ है, दूसरे अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति प्रमाण काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है तथा ये प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेके साथ सर्वार्थसिद्धिमें इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। देवगतिद्विक भी प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और मध्यम परिणामोंसे बँधती हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्यके इनका निरन्तर बन्ध साधिक तीन पल्य काल तक होता रहता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इनके अजघन्य अनुभागबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१७. णिरएसु धुविगाणं उक्कस्सभंगो। थीणगिद्धि०३–मिच्छ०–अणंताणु० बंधि०४–तिरिक्ख०–तिरिक्खाणु[1]०–णीचा० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० तेत्तीसं०। णवरि मिच्छ० अज० ज० अंतो०। सादादीणं ओघभंगो। इत्थि–णवुंस०-चदुणोक०-उज्जो० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०।

खुलासा अनुत्कृष्टके समान है। औदारिकशरीर आदिके अजघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष सब खुलासा पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंके समान कर लेना चाहिए। मात्र इनका निरन्तर बन्ध एकेन्द्रियोंके सदा काल होता रहता है और उनकी कायस्थिति अनन्त काल है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियिकद्विक भी सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेके साथ सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्धको प्राप्त होती हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इनका देवगतिके साथ मनुष्य सम्यग्दृष्टिके अधिक काल तक बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका काल देवगतिके अजघन्य अनुभागबन्धके समान कहा है। समचतुरस्रसंस्थान आदि प्रकृतियाँ एक तो सप्रतिपक्ष हैं। दूसरे इनका मध्यम परिणामोंसे बन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है, यह स्पष्ट ही है। तथा उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त जीवके इनका निरन्तर बन्ध होता है और ऐसा जीव इस पर्यायके अन्तमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर छियासठ सागर काल तक उसके साथ रहा। तथा अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पुनः वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर छियासठ सागर काल तक उसके साथ रहा, उसके भी इनका निरन्तर बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य अधिक साधिक दो छियासठ सागर कहा है। औदारिकआङ्गोपाङ्ग भी सप्रतिपक्ष प्रकृति है और इसका जघन्य अनुभाग-बन्ध सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे होता है, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा सप्रतिपक्ष प्रकृति होनेसे इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है, यह तो स्पष्ट ही है। साथ ही जो नारकी इसका तेतीस सागर काल तक निरन्तर बन्ध करता है और वहाँसे निकल कर अन्तमुहूर्त काल तक इसका और बन्ध करता है, इसकी अपेक्षा इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख सम्यग्दृष्टि मनुष्यके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसका उपशम-श्रेणिकी अपेक्षा अन्तमुहूर्त काल तक अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, क्योंकि जो जीव अन्त-मुहूर्त काल तक इसका बन्ध कर उपशमश्रेणि पर आरोहण करता है, उसके अपूर्वकरणमें इसकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है और इसका निरन्तर बन्ध मनुष्य और देवके साधिक तेतीस सागर काल तक होता रहता है, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है।

५१७. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सातादि प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार नोकषाय और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

1. ता० प्रतौ तिरिक्ख० तिरिक्ख (?) तिरिक्खाणु० इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पुरिस० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० देसू० । मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज०[1]-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं देसू० । तित्थय० ज० अज० उक्कस्सभंगो । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-तिरिक्ख०३ [जह० एग० । अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० ।] मणुसग०३ ज० एग० । अज० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । छसु उवरिमासु तिरिक्ख०३ सादभंगो । सेसाणं णिरयोघं । अप्पणो ट्ठिदीओ कादव्वाओ ।

दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । ऊपरकी छह पृथिवियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है । मात्र अपनी-अपनी स्थिति करनी चाहिए ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं । पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तराय । इनका सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके निरन्तर बन्ध होता है । इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पहले बतला आये हैं । वही यहाँ जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल प्राप्त होता है, अतः यह काल उक्त प्रमाण कहा है । यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक तेतीस सागर तक होता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है । मात्र जो सम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यादृष्टि होकर मिथ्यात्वका बन्ध करने लगता है, वह मिथ्यात्वके साथ वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक अवश्य रहता है, अतः मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । सातादिक अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके

---

१. ता० प्रतौ मणुसाणु० ३ ज० ए०, आ० प्रतौ मणुसाणु० ज० एग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१८. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-भय-दुगुंच्छ०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवण्ण४-अगु०-उप०-णिमि० पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० अणंतका० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अट्ठक० ज० एग०, अज० ज० एग०, मिच्छ० ज० खुद्दाभव०, उक्क० अणंतका० । सादादिदंडओ ओघं । इत्थि०-णवुंस०-चदुणोक०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो० ओघं इत्थिभंगो । पुरिस०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० ज० एग०, उक्क० बेस० । अज० ज० एग०,

---

जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जो काल ओघसे कहा है,वही यहाँ प्राप्त होता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। स्त्रीवेद आदि एक तो अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, दूसरे इनमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे और उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशसे होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। पुरुषवेद भी इसी प्रकारकी प्रकृति है पर इसका सम्यग्दृष्टिके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति आदि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। तथा ये एक तो परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, दूसरे इनका सम्यग्दृष्टिके निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल उत्कृष्टके समान है, यह स्पष्ट ही है। सातवीं पृथिवीमें यह काल इसी प्रकार है। मात्र स्त्यानगृद्धि तीन आदि प्रकृतियों के कालमें कुछ अन्तर है। बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण होता है, इसलिए इसमें स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और तिर्यञ्चगतित्रिकके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यग्मिथ्यात्वके अभिमुख हुए सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है, इसलिए सातवें नरकमें इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा यहाँ सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका भी बन्ध होता है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चगतित्रिक परावर्तमान प्रकृतियाँ हो जाती हैं, अतः यहाँ इनका काल सातावेदनीयके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

५१८. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्तवर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और आठ कषायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है, मिथ्यात्वका खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल सबका अनन्त काल है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार नोकषाय, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतका भङ्ग ओघसे स्त्रीवेदके समान है। पुरुषवेद, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० तिण्णिपलि० । तिरिक्ख०३ उक्कस्सभंगो । देवगदि-समचदु०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णि पलि० । मणुसग०-मणुसाणु० सादभंगो । पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० अणुक्कस्सभंगो । एवं पंचिंदियतिरिक्ख०३ । णवरि धुवियाणं अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपुध० । तिरिक्ख०३ सादभंगो । ओरालि० इत्थिभंगो । पुरिस०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो जहण्णुक्कस्सभंगो । अज० अणु०भंगो । देवगदि-समचदु०-देवाणु०-पसत्थ०--सुभग-सुस्सर--आदें०--उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० अणु० भंगो ।

भागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग उत्कृष्टके समान है। देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। औदारिकशरीरका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। पुरुषवेद, वैक्रियिक-शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है और अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है तथा अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—ओघमें हम सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालका तथा अजघन्य अनुभागबन्धके जघन्य कालका खुलासा कर आये हैं। उन कारणोंको पुनः-पुनः दुहराना ठीक नहीं है। अतः आगे इनके कालोंकी विशेष चर्चा नहीं करेंगे। यदि कहीं कोई विशेषता होगी तो उसपर अवश्य ही प्रकाश डालेंगे। अब रहा यहाँ अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सो उसका खुलासा इस प्रकार है—तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका कायस्थिति कालतक निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। यही बात स्त्यानगृद्धि आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके विषयमें भी जाननी चाहिए। मात्र मिथ्यात्व प्रकृतिका अजघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्चोंमें खुद्दाभवग्रहप्रमाणकाल तक भी सम्भव है, क्योंकि जो जीव अन्य पर्यायसे आकर और खुद्दाभवग्रहप्रमाण काल तक तिर्यञ्च पर्यायमें रहकर अन्य पर्यायमें चला जाता है, उसके इतने काल तक तिर्यञ्च पर्यायमें मिथ्यात्वका अजघन्य अनुभागबन्ध देखा जाता है। इसलिए इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण कहा है। ओघसे स्त्रीवेदके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जो काल कहा है, वह यहाँ स्त्रीवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१६. पंचि०तिरि०अप० पंचणा०–णवदंसणा०–मिच्छ०–सोलसक०–णवणोक०–ओरालि०–तेजा०–क०–ओरालि०अंगो०–पसत्थापसत्थवण्ण४–अगु०–उप०–पर०–उस्सा० आदाउज्जो०–णिमि०–पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं सुहुमपज्जत्तापज्ज०–सव्वबादर०–अपज्ज०–सव्वविगलिंदि०। णवरि एइंदिय-सुहुमाणं च पज्जत्त-अप० बादरअपज्ज० तिरि०३ ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। विगलिंदिएसु धुविगाणं अज० अणुक्कस्सभंगो।

अविकल बन जाता है, इसलिए यह काल ओघ स्त्रीवेदके समान कहा है। पुरुषवेद आदि चौथे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्तम भोगभूमिमें तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टिके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो काल कह आये हैं, वही यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका प्राप्त होता है, इसलिए यह उत्कृष्टके समान कहा है। देवगति आदि प्रकृतियोंका उत्तम भोगभूमिमें सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है। तिर्यञ्चोंमें मनुष्यद्विकका बन्ध सासादनगुणस्थान तक होनेसे ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ बनी रहती हैं, इसलिए इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है। तिर्यञ्चोंमें पञ्चेन्द्रिय जाति आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य घटित करके बतला आये हैं। इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए यह अनुत्कृष्टके समान कहा है। यहाँ सामान्य तिर्यञ्चोंमें सब प्रकृतियोंका जो काल कहा है, वह पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अविकल घटित हो जाता है। मात्र जिन प्रकृतियोंके कालमें अन्तर है, उसका अलगसे निर्देश किया है। बात यह है कि इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण जानना चाहिए। तथा इनके तिर्यञ्चगतित्रिक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हो जाती हैं, इसलिए इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है। यहाँ औदारिकशरीर भी सप्रतिपक्ष प्रकृति है, इसलिए इसका भङ्ग स्त्रीवेदके समान कहा है। पुरुषवेद आदि और देवगति आदिका यहाँ सम्यग्दृष्टिके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इन तीन मार्गणाओंमें इन प्रकृतियोंका जैसा काल उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय घटित करके बतला आये हैं, यथायोग्य वैसा बन जानेसे वह मूलमें कही गई विधिसे कहा है।

५१६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब सूक्ष्म और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त, सब बादर अपर्याप्त और सब विकलेन्द्रिय जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय और सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त और बादर अपर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा विकलेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२०. मणुस०३ खविगाणं ज० ओघं । अज० सेसाणं वज्ज पंचिंदि०तिरि०-भंगो । अज० सव्वाणं अणुक्कस्सभंगो । तित्थय० ज० अज० उक्कस्सभंगो ।

५२१. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदि० ओरालि०-तेजा-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण४-अगु०४-तस०४-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । सादासाद०-दोआयु०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थवि०-थावर-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादें०-जस०-अजस०-णीचा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० । मणुस०-समचदु०-

---

प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें विकलत्रयोंको छोड़कर सबकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । मात्र पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, किन्तु एकेन्द्रियोंमें सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है। इसलिए इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है । विकलत्रयोंकी कायस्थिति अधिक है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान कहा है । शेष कथन सुगम है ।

५२०. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका काल और शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । तथा शेष सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल उत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन कषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा ये चार नोकषाय और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका क्षपकश्रेणिमें जघन्य अनुभागबन्ध होता है और क्षपकश्रेणि मनुष्यत्रिकमें होती है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान कहा है। यद्यपि पुरुषवेदका भी जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है,पर इसके अजघन्यानुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इसलिए यहाँ इसकी परिगणना नहीं की। शेष कथन स्पष्ट ही है ।

५२१. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०--उच्चा० ज० ज० एग०, उ०चत्तारि-सम० । अज० अणुक०भंगो । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ ज० एग० । अज० अणु०भंगो । णवरि मिच्छ० अज० ज० अंतो[1]० । छण्णोक०-आदाउज्जो० ज० अज० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वदेवाणं जहण्णं सामित्तं णादूण अप्पणो हिदी णादव्वा ।

५२२. एइंदिएसु धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० अणुक्कस्सभंगो । सत्तणोक०-ओरालि०अंगो०--पर०-उस्सा०-आदा-

अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। छह नोकषाय, आतप और उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार सब देवोंके जघन्य स्वमित्वको जानकर अपनी स्थिति जाननी चाहिए।

विशेषार्थ--सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियाँ और तीसरे दण्डकमें कही गई मनुष्यगति आदि सब प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति आदिके अजघन्य अनुभागबन्धके कालका भङ्ग यद्यपि अनुत्कृष्टके समान कहा है, पर उसका यही अभिप्राय है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदि प्रकृतियाँ अध्रुवबन्धिनी हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यद्यपि इनमें दो आयु भी सम्मिलित हैं, पर इससे अजघन्य अनुभागबन्धके जघन्य काल एक समयमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। खुलासा पहले कर आये हैं। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पहले घटित करके बतला आये हैं। अजघन्य अनुभागबन्धका यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान कहा है। मात्र मिथ्यात्वके अजघन्यबन्धके जघन्य कालमें विशेषता है। कारण कि मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल तक मिथ्यात्वका नियमसे बन्ध होता है, इसलिए मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। छह नोकषाय, आतप और उद्योत ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय इनका जो काल कहा है, वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिये उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ भवनवासी आदि देवोंमें अलग-अलग कालका विचार नहीं किया है सो जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उसका तथा अपनी-अपनी स्थिति और स्वामित्वका विचार कर वह घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५२२. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। सात नोकषाय, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और

१. ता० प्रतौ अणंताणुबं०४ ज० ए० अज० ज० अंतो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जो० ज० अज० उक्कस्सभंगो। सेसाणं अपज्जत्तभंगो। णवरि सव्वत्थं अज० अप्पप्पणो अणुक्कस्सभंगो। एवं बादर० बादरपज्जत्तापज्जत्तगाणं च सुहुमाणं।

५२३. पंचिंदि०-तस०२ सव्वपगदीणं जह० ओघं। अज० सव्वाणं अप्पप्पणो अणुक्कस्सभंगो। णवरि अप्पसत्थाणं धुविगाणं अज० ज० अंतो०, उ० अणु०भंगो।

उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग उत्कृष्ट अनुयोगद्वारके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अजघन्य अनुभागबन्धका काल अपने-अपने अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त और सूक्ष्म जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंका सर्व विशुद्ध परिणामोंसे, ध्रुवबन्धवाली प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे और तिर्यञ्चगतित्रिकका सर्वविशुद्ध परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए यहाँ जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण बतलाया है, वही यहाँ भी प्राप्त होता है। सात नोकषाय और औदारिक आङ्गोपाङ्ग अध्रुवबन्धिनी और यथासम्भव सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं तथा परघात आदि चार अप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होकर भी अध्रुवबन्धिनी हैं, इसलिए उत्कृष्ट अनुयोगद्वारमें इनका काल जो अपर्याप्तकोंके समान बतलाया है, वैसा ही यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंका काल भी अपर्याप्तकोंके समान घटित कर लेना चाहिए। मात्र एकेन्द्रियोंके अवान्तर भेदोंमें काल कहते समय अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल जैसा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अलग-अलग कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

५२३. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। तथा सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल अपने-अपने अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपने-अपने अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—जघन्य स्वामित्वको देखनेसे विदित होता है कि इन चारों मार्गणाओंमें जघन्य स्वामित्व ओघके समान बन सकता है, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल ओघके समान प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, अतः उसका निर्देश ओघके समान किया है। अब रहा अजघन्य अनुभागबन्धका काल सो यहाँ अन्य सब प्रकृतियोंका तो वह अनुत्कृष्टके समान बन जाता है। मात्र ध्रुवबन्धवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंके कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध, जिनका क्षपकश्रेणिमें बन्ध सम्भव है, उनका तो क्षपकश्रेणिमें अपनी-अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है और जिनका क्षपकश्रेणिमें बन्ध सम्भव नहीं है, उनका यथास्वामित्व अपनी-अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है। इसलिए इनका अजघन्य अनुभागबन्ध अन्तमुहूर्त कालसे कम इन मार्गणाओंमें बन ही नहीं सकता। इसलिए यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपने-अपने अनुत्कृष्टके समान कहा है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः सव्वट्ठ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२४. सव्वपुढ०--आउ०-वणप्फदि-पत्ते०--णियोद० जह० अपज्जत्तभंगो। अज० सव्वाणं अणुक्कस्सभंगो। एवं चेव तेउ०-वाउ०। णवरि धुविगाणं तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० अणु०भंगो।

५२५. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक० पंचणोक०-तिरिक्खगदि०३-आहारदुग-अप्पसत्थ०४ उप०-तित्थय०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० अंतो०। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-पंचिंदि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-दोअंगो०-पसत्थ०४-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि० ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं सादादीणं ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० इत्थिभंगो।

---

५२४. सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब वनस्पतिकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल अपर्याप्तकोंके समान है और सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक आदि जीवोंकी कायस्थिति अपर्याप्तकोंके समान न होकर अलग-अलग बतलाई है, इसलिए यहाँ अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें है। मात्र इनमें तिर्यञ्चगतित्रिक ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनमें इन तीन प्रकृतियोंकी ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके साथ परिगणना करके कालका निर्देश किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५२५. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगतित्रिक, आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष साता आदि प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धके कालका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व ओघके समान है, इसलिये यहाँ प्रथम दंडकमें पाँच ज्ञानावरणादिक जितनी प्रकृतियाँ गिनाई हैं, उनका जघन्य अनुभागबन्ध स्वामित्वको देखते हुए एक समय तक ही हो सकता है। अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन योगोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होनेसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। दूसरे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ कही गई हैं, उनके स्वामित्वको देखते हुए यहाँ उनका जघन्य अनुभागबन्ध एक और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२६. कायजोगीसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० अणंतका० । सादादीणं ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम० । अज० अणुक्कस्सभंगो । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-पंचिंदि०-वेउव्वि०-दोअंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४ ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० अंतो० । पुरिस०-हस्स-रदि-आहारदुग-तित्थ० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० । ओरालि०-तेजा-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० अणंतकालं० । तिरिक्खगदि०३ ओघं ।

दो समय तक बन जाता है, इसलिए उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल प्रथम दण्डकके समान घटित कर लेना चाहिए। सातादिक तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है। इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल स्त्रीवेदके समान है। इसका अभिप्राय यही है कि जिस प्रकार स्त्रीवेदके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त घटित करके बतलाया है, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

५२६. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। सातावेदनीय आदिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य, रति, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघ के समान है।

विशेषार्थ—यहाँ आगेकी मार्गणाओंमें कालका बोध करनेके लिये तीन बातोंका स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है। प्रथम—जिन मार्गणाओंमें जिन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें या आगेके तत्प्रायोग्य विशुद्धगुणको प्राप्त करनेके सन्मुख हुए या नीचेके तत्प्रायोग्य संक्लेशगुणको प्राप्त करनेके सन्मुख हुए जीवके अन्तिम समयमें होता है, उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होता है, इसलिए उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। द्वितीय—जिन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है, उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय होता है। उदाहरणार्थ—यहाँ दूसरे दण्डकमें कही गई साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२७. ओरालियका० पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०--भय--दु०-अप्पसत्थव०४--उप०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० एग०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि देसू० । सादादीणं ओघं । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-पंचिंदि०-ओरालि० [अंगो०-] वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-पर०--उस्सा०-आदावुज्जो०--तस०४ मणजोगिभंगो । पुरिस०-हस्स-रदि--आहारदुग०-तित्थ० ज० एग० । अज० अणुक्कस्सभंगो० ।

अनुभागबन्ध ऐसे ही परिणामोंमें होता है, अतः उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय कहा है । जिन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्धपरिणामोंसे या तत्प्रायोग्य विशुद्धपरिणामोंसे, उत्कृष्ट संक्लिष्टपरिणामोंसे या तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणामोंसे होता है, उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होता है । यथा—यहाँ तीसरे दण्डकमें कही गई स्त्रीवेद आदि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध ऐसे ही परिणामोंसे होता है, अतः उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है । इन सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखकर आगे कालका विचार किया जा सकता है, अतः हम केवल अजघन्य अनुभागबन्धके कालका ही विचार करेंगे । उसमें भी अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल कुछ अपवादोंको छोड़कर प्रायः सर्वत्र एक समय ही है, अतः उसका भी बार-बार उल्लेख नहीं करेंगे । जहाँ कुछ विशेषता होगी, उसका वहाँ अवश्य ही निर्देश कर देंगे । काययोगका उत्कृष्ट काल अनन्त है । ध्रुवबन्धिनी होनेसे इतने कालतक प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादिका निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्तप्रमाण कहा है । दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनुत्कृष्टके समान अन्तर्मुहूर्त कहा है । तीसरे दण्डकमें कही गई स्त्रीवेद आदि कुछ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और परघात आदि चार सप्रतिपक्ष न होकर भी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्धवाली हैं, इसलिए इनके भी अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । चतुर्थ आदि गुणस्थानोंमें पुरुषवेदका निरन्तर बन्ध होता है, पर वहाँ काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । यही बात जिनके तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध होता है, उनके विषयमें भी लागू होती है । शेष हास्य, रति और आहारकद्विकका बन्ध अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं होता यह स्पष्ट ही है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । काययोगमें तिर्यञ्चगतित्रिकका निरन्तर बन्ध ओघके समान असंख्यात लोक काल तक होना सम्भव है, क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है । इनके काययोग रहता ही है और तिर्यञ्चगतित्रिककी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध न होकर केवल इन्हींका बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनका भङ्ग ओघके समान कहा है ।

५२७. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । सातादिकका भङ्ग ओघके समान है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । पुरुषवेद, हास्य, रति, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है

१. ता० आ० प्रत्योः पंचिंदि० ओरालि० ओरालि० वेउव्वि० इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तिरिक्खगदितिगं ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णि-वाससह० देसू० । ओरालिय०-तेजा०-कम्मइगादि०णव-णिमि० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० बावीसं वाससह० देसू० ।

५२८. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त०-सोलसक०-[पुरिस०-हस्स-रदि-] भय-दु०-देवगदिपंचग०-ओरालि०--तेजा०--क०-पसत्थापसत्थव४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० उक्क० अंतो० । सादासाद०-दोआयु०-

---

तथा अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है । औदारिकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर आदि नौ निर्माणपर्यन्तके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है ।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है और प्रथम दण्डकमें कही गई ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है । अन्तिम दण्डकमें कही गई औदारिकशरीरआदि नौ और निर्माण ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं । यद्यपि इनमें सप्रतिपक्ष प्रकृति औदारिकशरीरका भी समावेश है,पर एकेन्द्रिय जीवके यह ध्रुवबन्धिनी ही है, इसलिए इनके भी अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट-काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है । यहाँ नौ प्रकृतियोंमेंसे औदारिकशरीर, तैजसशरीर, और कार्मणशरीर व निर्माण ये चार प्रकृतियाँ तो कही ही हैं । शेष पाँच ये हैं--प्रशस्त वर्ण-चतुष्क और अगुरुलघु । सातादिक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका काल ओघके समान यहाँ भी बन जाता है, अतः वह ओघके समान कहा है । स्त्रीवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंमेंसे स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक ये तो सप्रतिपक्ष ही हैं । यद्यपि एकेन्द्रियके औदारिकआङ्गोपाङ्गका ही बन्ध होता है, पर त्रससंयुक्तप्रकृतियोंके बन्धके समय ही इसका बन्ध होता है, इसलिए औदारिककाययोगमें यह कहीं सप्रतिपक्ष है और कहीं अध्रुवबन्धिनी है । परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत इनका निरन्तर बन्ध अन्तमुहूर्त कालतक होता है । अब रहीं पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकद्विक और त्रसचतुष्क सो यद्यपि सम्यग्दृष्टिके इनका निरन्तर बन्ध होता है, पर यहाँ औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्तसे अधिक नहीं है, इसलिये इन स्त्रीवेद आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनुत्कृष्टके समान अन्तमुहूर्त कहा है । तिर्यञ्चगति-त्रिकका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके ही होता है और औदारिककाययोगके रहते हुए वायुकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है ।

५२८. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति पञ्चक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु, मनुष्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसगदि--पंचजादि--छस्संठा०--छस्संघं० -- मणुसाणु० -- दोविहा० -- तसथावरादिदस-युग०-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० अणु०भंगो। इत्थि०-णवुंस०-अरदि--सोग--ओरालि०अंगो०-[पर०-उस्सा०-]आदाउज्जो० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० अणु०भंगो। तिरिक्ख०३ ज० ज० उ० एग०। अज० ज० एग०, उ० अंतो[2]०।

५२६. वेउव्वियका० पंचणा०--छदंसणा०--बारसक०--णवणोक०--पंचिंदि०-ओरालि०--तेजा०--क० --ओरालि०अंगो०--पसत्थापसत्थव०४--आदाउज्जो०--तस०४--णिमि०--तित्थ०--पंचंत० ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० अणु०भंगो। थीण-

गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और उच्चगोत्र के जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसक-वेद, अरति, शोक, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतके जघन्य अनु-भागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्त-र्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका सर्वविशुद्ध परिणामोंसे और प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे, शरीरपर्याप्ति अगले समयमें ग्रहण करनेवाला है ऐसे जीवके, यथायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिये इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। जिनके उनका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, उनके एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और जिनके उनका जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता, उनके पूरे अन्त-र्मुहूर्त काल तक इनका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। दो आयुको छोड़कर सातावेदनीय आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान बन जाता है, यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार स्त्रीवेद आदिके कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक व वायुकायिक जीवके शरीरपर्याप्तिके ग्रहण करनेके एक समय पूर्व होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है।

५२६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, नौ नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय

१. ता० प्रतौ पंचजादि छस्संघ० इति पाठः। २. ता० प्रतौ तिरिक्ख०३ ज० ज० ए० उ० अंतो०, आ० प्रतौ तिरिक्ख०३ ज० ज० एग०। अज० ज० एग० अंतो० इति पाठः।

गिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणुबं०४–तिरिक्खगदि३ ज० एग० । अज० अणु०भंगो । सादादीणं ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० अंतोमु० ।

५३०. वेउव्वियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थव०४–अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० उ० अंतो० । सादासाद०-मणुसग०-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावर-थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० अणु०भंगो । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० अणु०भंगो । पुरिस०-हस्स-रदि-तिरिक्ख०३–पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जो०-तस० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० ।

है । अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । सातावेदनीय आदिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकयोगमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । वह यहाँ भी प्रथम दण्डक और द्वितीय दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन जाता है, इसलिए वह अनुत्कृष्टके समान कहा है । मात्र द्वितीय दण्डककी प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल वैक्रियिककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा घटित करना चाहिए । सातावेदनीय आदिका काल स्पष्ट ही है ।

५३०. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यञ्चगतित्रिक, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और प्रथम दण्डकमें कही गईं ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें ध्रुवबन्धिनी हैं, अतः यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ जिनके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, उनके वह ध्रुवबन्धिनी ही है, अतः उसे ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके साथ परिगणित किया है । दूसरे और तीसरे दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियाँ सप्रतिपक्ष हैं । उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३१. आहारका० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--सत्तणोक०--देवगदि-एगुणतीस-उच्चा०-पंचंत० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। सादासाद०--देवायु०--थिरादितिण्णियुग० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारि-सम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०।

५३२. आहारमि० पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०--पुरिस०-भय-दु०--देवगदि-एगुणतीस-उच्चा०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० उ० अंतो०। सादासाद०-थिरादि-तिण्णियुग० आहारकायजोगिभंगो। चत्तारिणोक०--देवाउ० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० अंतो०[1]।

अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान बन जाता है, अतः इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान कहा है। पुरुषवेद आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। इसलिए इनके भी अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र आतप और उद्योत अप्रतिपक्षरूप हैं। पर इनका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उनके भी अजघन्य अनुभागबन्धका उक्त काल कहा है।

५३१. आहारककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, सात नोकषाय, देवगति उनतीस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ--यहाँ आहारककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा तथा प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य बन्धकी अपेक्षा दोनों प्रकारसे सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है, इसलिए उक्त प्रमाण कहा है।

५३२. आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति उनतीस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंके समान है। चार नोकषाय और देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—आहारककाययोगी जीवोंके ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डक व चार नोकषायके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है और आहारकमिश्रमें एक समय बतलाया है। इसका कारण यह है कि इनका जघन्य बन्ध सर्वविशुद्ध या सर्वसंक्लेश परिणामोंसे होता है जो आहारकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें ही होता है, जैसा कि वैक्रियिकमिश्रमें भी बतलाया है। अर्थात् वैक्रियिककाययोगमें दो समय और वैक्रियिकमिश्रमें एक समय इसी अपेक्षा बतलाया है। देव आयुका जघन्य अनुभागबन्ध भी आहारकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें ही होता है। इसी

---

१. आ० प्रतौ अज० उ० अंतो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३३. कम्मइ० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-हस्स-रदि--भय-दु०-तिरिक्खं०३– ओरालि० -- तेजा०-क० -- पसत्थापसत्थवण्ण४ – अगु०४ –आदाउज्जो०-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णिसम० । सादासाद०-एइंदि०-हुंड०-थावरादि४ –थिराथिर--सुभासुभ-दूभ०--[दुस्सर-] अणादें०-जस०-अजस० ज० अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसम० । इत्थि०-मणुस०--तिण्णि-जादि-पंचसंठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० ज० अज० ज० एग०, उ० बेसम० । पुरिस०-देवगदिपंचग-पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०–तस० ज० अज० ज० एग०, उ० बेसम० । णवुंस०-अरदि-सोग ज० ज० एग० उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसम० । अथवा कम्म० सव्वपगदीणं ज० एग० । अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसम० देवगदिपंचगं वज्ज० ।

कारण आगे अन्तर प्ररूपणामें आहारकमिश्रकाययोगमें देवायुके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

५३३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगतित्रिक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । स्त्रीवेद, मनुष्यगति, तीन जाति, पाँच संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । पुरुषवेद, देवगतिपञ्चक, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । नपुंसकवेद, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । अथवा कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । मात्र देवगतिपञ्चकको छोड़कर यह काल जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अप्रशस्त प्रकृतियोंका सर्वविशुद्ध परिणामोंसे और प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे होता है । किन्तु अपर्याप्त योग होनेसे यहाँ ऐसे परिणाम एक समय तक ही हो सकते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है, यह स्पष्ट ही है । सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परि-

१. ता० प्रतौ हस्सरदिभ० तिरिक्ख०३ इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः ज० अज० एग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३४. इत्थिवे० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०-भय०-दु०--अप्पसत्थ०४–उप०-पंचंत० ज० एग० । अज० अणु०भंगो । णवरि मिच्छ० अज० ज० अंतो० । सादासाद०-चदुआयु०-णिरय०--तिरिक्ख०–चदुजादि-पंचसंठा०--पंचसंघ०-दोआणु०--अप्पसत्थ०·-थावरादि०४–थिरादितिण्णियुग०-दूभग०--दुस्सर०--अणादें०-णीचा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-आदाउज्जो० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० । पुरिस० ज० एग० । अज० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू० । हस्स-रदि-आहारदुगं ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० । मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० ज० ज०

वर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है तथा कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। स्त्रीवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन्ध उन्हीं जीवोंके होता है जो अधिक से अधिक दो विग्रहसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। यही बात पुरुषवेद आदि चौथे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके विषयमें जाननी चाहिए। नपुंसकवेद, अरति और शोक का जघन्य अनुभागबन्ध अपने-अपने योग्य विशुद्ध परिणामोंसे होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ विकल्परूपसे सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालका निर्देश किया है सो आगमसे जानकर उसकी संगति बिठलानी चाहिए। इससे ऐसा विदित होता है कि देवगतिपञ्चकका बन्ध तो उसी जीवके सम्भव है जो अधिकसे अधिक दो मोड़ा लेकर उत्पन्न होता है, पर अन्य प्रकृतियोंके बन्धके लिए ऐसा कोई नियम नहीं है।

५३४. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, नरकगति, तिर्यञ्चगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। हास्य, रति और आहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० जह० एग०, उ० पणवण्णं पलि० देसू० । देवगदि०-देवाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णि पलि० देसू० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-तस० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पलि० देसू० । ओरालि०-पर०-उस्सा०-बादर-पज्जत्त-पत्ते० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलि० सादि० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णि पलि० देसू० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० पलिदोवमसदपुधत्तं । तित्थय० ज० एग० । अज० [ज०] एग०, उ० पुव्वकोडी देसू० ।

वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। औदारिकशरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्य पृथक्त्वप्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथमदण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन्ध कायस्थिति प्रमाण काल तक सम्भव है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल भी यही है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान कहा है। मात्र मिथ्यात्वका निरन्तर बन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक अवश्य होता है, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थानका इससे कम काल नहीं है, इसलिए इस प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि या तो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं या उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त काल तक बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यही बात स्त्रीवेद आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके विषयमें जाननी चाहिए। पुरुषवेदका सम्यग्दृष्टि देवियोंके निरन्तर बन्ध होता है और स्त्रीवेदियोंमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। हास्य और रति ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और आहारक द्विकका बन्धकाल ही अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सम्यग्दृष्टि देवियोंके मनुष्यगति आदिका ही बन्ध होता है, इनकी प्रतिपक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३५. पुरिसेसु पंचणाणावरणादि याव पंचंतराइगा त्ति ज० एग०। अज० ज० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। सादादिविदियदंडओ इत्थिवेदादितदियदंडओ इथि०भंगो। पुरिस० ओघं। हस्स-रदि-आहारदुगं ओघं। मणुस०-वज्जरि०-मणुसाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सा०। देवगदि-देवाणु० ज० अज० ओघं। पंचिं०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० तेवट्ठिसागरोवमसदं। ओरालि०-ओरालि०अंगो० ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० अणु०भंगो०। वेउव्वि०--वेउव्वि०अंगो० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। [अज०] देवगदिभंगो। तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि०

प्रकृतियोंका नहीं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कहा है। भोगभूमिमें पर्याप्त मनुष्यिनियोंके देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विकका नियमसे बन्ध होता है और उत्तम भोगभूमिका उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। इसमेंसे अपर्याप्त अवस्थाका काल कम कर देने पर कुछ कम तीन पल्य शेष रहता है, अतः इन चार प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। सम्यग्दृष्टि देवियोंके पञ्चेन्द्रिय जाति आदि तीन प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कहा है। देवीके पचपन पल्य काल तक तो औदारिकशरीर आदि का बन्ध होगा ही, आगे भी अन्तर्मुहूर्त काल तक वह नियमसे होता रहता है, अतः इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट काल कुछ अधिक पचपन पल्य कहा है। तैजसशरीर आदि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण कहा है। कर्मभूमिकी मनुष्यिनी आठ वर्षके बाद सम्यक्त्वका लाभ करके शेष पूर्वकोटि काल तक तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध कर सकती है, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है।

५३५. पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणसे लेकर पाँच अन्तराय तक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डक और स्त्रीवेद आदि तीसरे दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। पुरुषवेदका भङ्ग ओघके समान है। हास्य, रति और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, वज्रर्षभ-नाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एकसौ त्रेसठ सागर है। औदारिकशरीर और औदारिकआङ्गो-पाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अज-घन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग देवगतिके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण के जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० ओघं । अज० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी० । समचदु०--पसत्थ०--सुभग--सुस्सर-आदें०-उच्चा० ज० अज० ओघं । तित्थ० ओघं ।

५३६. णवुंसगे पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय०-दु०--अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० अणंतकालं० । णवरि मिच्छ० अज० ज० अंतो० । सादसाद०-चदुआयु०-णिरयगदि०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०--णिरयाणु०-अप्पसत्थवि०--थावरादि०४--थिरादितिण्णियुग०--दूभग-दुस्सर-अणादें० ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम० । अज० ओघं । इत्थि०-णवुंस०-हस्स-

समय है और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण है । समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है ।

विशेषार्थ—पुरुषवेदी जीवके पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकोक्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध जिस अवस्थामें होता है, उसे देखते हुए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है; क्योंकि पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है,यह स्पष्ट ही है । सर्वार्थसिद्धिमें मनुष्यगतिद्विक और वज्रर्षभनाराचसंहननका नियमसे बन्ध होता है, इससे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है । देवगतिद्विकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ओघसे साधिक तीन पल्य घटित करके बतला आये हैं । वह पुरुषवेदी जीवोंके ही सम्भव है, अतः यहाँ यह काल ओघके समान कहा है । देवगतिद्विकका बन्ध करनेवालेके वैक्रियिकद्विकका नियमसे बन्ध होता है, अतः वैक्रियिकद्विकके अनुभागबन्धका काल देवगतिके समान कहा है । पञ्चेन्द्रियजाति आदि सात प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जो उत्कृष्ट काल एकसौ त्रेसठ सागर कहा है,वह एकसौ पचासी सागरमेंसे छठे नरकके बाईस सागर कम कर देने पर उपलब्ध होता है । इतने काल तक पुरुषवेदी जीवके इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है । सर्वार्थसिद्धिके देवोंके औदारिकद्विकका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अत: इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनुत्कृष्टके समान तेतीस सागर कहा है । तैजसशरीर आदि प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण कहा है । ओघसे समचतुरस्रसंस्थान आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल दो छियासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य घटित करके बतला आये हैं । वह पुरुषवेदी जीवोंके ही सम्भव है, अतः यहाँ यह काल ओघके समान कहा है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस बनता है । ओघसे भी यह काल इतना ही है, अतः यह भी ओघके समान कहा है ।

५३६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

१. आ० प्रतौ पंचंत ज० एग० उ० इति पाठः । २. ता० प्रतौ णिरयगदिपंचसंठा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रदि--सोग--आहारदुग--आदाउज्जोव० ओघं। पुरिस० ज० ए०। अज० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसू०। तिरिक्खगदितिगं ओघं[1]। मणुस०--समचदु०--वज्जरि०--मणु-साणु०--पसत्थ०--सुभग--सुस्सर--आदें०--उच्चा० ज० अज० णिरयोघं। देवगदि०-देवाणु० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी दे०। पंचिं०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। ओरालि०--तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०-णिमि० ज० अज० ओघं। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम०। अज० देवगदिभंगो। तित्थ० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णिसाग० सादि०।

चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, आहारकद्विक, आतप और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल सामान्य नारकियोंके समान है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग देवगतिके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल है। प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे इनका इतने काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्तप्रमाण कहा है। मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है, इसका हम पहले स्पष्टीकरण कर आये हैं। सातादिकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त यहाँ भी बन जाता है, क्योंकि ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, अतः यहाँ यह काल ओघके समान कहा है। कालकी दृष्टिसे यही बात स्त्रीवेद आदिके विषयमें जाननी चाहिए। जो नारकी सम्यग्दृष्टि होता है, उसके निरन्तर पुरुषवेदका बन्ध होता है। इसीसे यहाँ पुरुषवेदके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। ओघसे तिर्यञ्चगतित्रिकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल

---

१. ता० प्रतौ तिरिक्खगदि४ ओघं इति पाठः। ४. आ० प्रतौ पुव्वकोडि० पंचिं० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३७. अवगदवे० पंचणा०--चदुदंसणा०--सादा०--चदुसंज०--जस०--उच्चा०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० एग०, उक० अंतो० ।

५३८. कोधे पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०-भय०--दु०--अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० ज० एग० । अज० जं० उ० अंतो० । केसिंचि अज० ज० एग० । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०--बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि--तिरिक्ख०३--आहारदुग-तित्थ० ज० एग० । अजं० [ज०] एग०, उक० अंतो० । सादासाद०-चदुआयु०-तिण्णिगदि-

असंख्यात लोकप्रमाण बतलाया है। वह नपुंसकवेदी जीवोंके ही उपलब्ध होता है, क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीव, जिनके इतने काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता है, नपुंसकवेदी ही होते हैं, अतः यह काल ओघके समान कहा है। सामान्य नारकियोंमें मनुष्यगति आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर घटित करके बतला आये हैं। नारकी नपुंसकवेदी होनेसे यहाँ भी वह बन जाता है, अतः यह काल सामान्य नारकियोंके समान कहा है। जो नपुंसकवेदी मनुष्य पर्याप्त जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहता है, उसके निरन्तर देवगतिद्विकका बन्ध होता है। यह काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण होनेसे देवगतिद्विकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियिकद्विकके अजघन्य अनुभागबन्धका काल देवगतिके समान कहनेका यही कारण है। सातवें नरकके नारकीके वहाँ से मर कर नपुंसकवेदी तिर्यञ्च होने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक पञ्चेन्द्रियजाति आदिका नियमसे बन्ध होता रहता है। उत्कृष्टरूपसे यह काल साधिक तेतीस सागर होनेसे पञ्चेन्द्रिय जाति आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। औदारिकशरीर आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जो काल ओघमें कहा है, वह सबका सब नपुंसकवेदी जीवोंके ही घटित होता है। कारण कि अनन्त काल प्रमाण कायस्थिति नपुंसकवेदमें ही सम्भव है, अतः यह काल ओघके समान कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका नरकमें साधिक तीन सागर काल तक बन्ध सम्भव है, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है।

५३७. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ--बन्धके प्रकरणमें अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनमें सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

५३८. क्रोध कषायमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मात्र किन्हींके मतसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यञ्चगतित्रिक, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय,

१. ता० प्रतौ अज० ए० उ०, आ० प्रतौ अज० उ० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः एग०। उक० अज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम०। अज० मणजोगिभंगो। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-पंचिंदि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-दोअंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-आदाउज्जो०-तस०४-णिमि० ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० अंतो०। एवं माण-माया-लोभाणं।

५३६. मदि०-सुद० पंचणाणावरणादि याव पंचंतराइग त्ति ज० अज० सादादि-विदियदंडओ इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-तिरिक्खगदितिग-आदाउज्जो० ज० अज० ओघं। पुं० ज० ए०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। मणुसगं०-मणुसाणु० ज०

चार आयु, तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मान, माया और लोभ कषायमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अपनी स्वामित्वसम्बन्धी विशेषताके साथ दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके सम्बन्धमें भी यही बात जाननी चाहिए। अन्यत्र इन सब प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है। किन्तु क्रोध कषायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यद्यपि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका काल भी इसी प्रकार घटित किया जा सकता है, पर वहाँ पहले पाँच ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही कहा है। सो यहाँ किसी भी कषायके साथ जीव किसी भी गतिमें उत्पन्न हो सकता है और इसलिए क्रोध कषायका एक समय काल नहीं बनता। सम्भवतः इस मतको ध्यानमें रखकर यह विधान किया है। तथा 'केसिंचि' इत्यादि द्वारा जो अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है सो क्रोधकषायके साथ नरकगतिमें ही जाता है, अन्य गतिमें जानेवालेके क्रोधकषाय बदल जाता है। सम्भवतः इस मतको ध्यानमें रखकर यह निर्देश किया है, क्योंकि इस मतके अनुसार क्रोध कषायका जघन्य काल एक समय बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है। मात्र मान, माया और लोभ कषायमें काल कहते समय मरण और व्याघात दोनों प्रकारसे इनका जघन्य काल एक समय लेना चाहिए।

५३९. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणसे लेकर अन्तरायतककी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका तथा सातावेदनीय आदिक दूसरा दण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्यञ्चगतित्रिक, आतप और उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य

1. आ० प्रतौ ओघं। पुंसभंगो। मणुसग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ० एकत्तीसं० सादि० । देवग०-समचदु०--देवाणु०--पसत्थ०--सुभग--सुस्सर--आदेंज्ज--जस०--उच्चा० ज० ज० एग०, उ० [चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उ०] तिण्णिपलि० देसू० । पंचिंदि०-ओरालि०-अंगो०-पर०--उस्सा०--तस४ ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं[1] सा० सादि० । ओरालि०--तेजा०--क०--पसत्थ०४--अगु०--णिमि० ओघं । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० ज० एग०, उ० बेसम० । अज० देवगदिभंगो ।

५४०. विभंगे पंचणाणावरणादि याव पंचंतराइग त्ति ज० एग० । अज० ज०

और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है । देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका भङ्ग ओघके समान है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग देवगतिके समान है ।

विशेषार्थ--पाँच ज्ञानावरण दण्डक, सातावेदनीय दण्डक और स्त्रीवेद आदिका जो काल ओघसे कहा है वह यहां अविकल बन जाता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है । पुरुषवेदका सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिये यह जघन्य और उत्कृष्ट एक समय कहा है । तथा परावर्तमान प्रकृति होनेसे इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । मनुष्यगतिद्विकका अजघन्य अनुभागबन्ध नौवें ग्रैवेयकमें और वहाँसे आनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है, इसलिए उत्कृष्ट रूपसे यह साधिक इकतीस सागर कहा है। देवगति आदिका भोगभूमिमें पर्याप्त अवस्था होनेपर नियमसे बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है । पञ्चेन्द्रिय जाति आदिका सातवें नरकमें और वहाँसे निकलने बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । ओघसे औदारिकशरीर आदिका जो काल कहा है वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है । वैक्रियिकद्विकका बन्ध देवगतिके साथ होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका काल देवगतिके समान कहा है ।

५४०. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदिसे लेकर पाँच अन्तराय तककी प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य

१. ता० प्रतौ एग० तेत्तीसं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । णवरि मिच्छत्त० अज० जं० अंतो० । सादासाद०-चदुआयु०--णिरयगदि--देवगदि--चदुजादि--छस्संठा०--छस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-थावरादि४--थिरादिछयुगल-उच्चा० ज० ज० एग०, उ० चत्तारिसम० । अज० ज० एग०, उक्क० अंतो० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग--आदाउज्जो० ओघं । पुरिस०-हस्स-रदि० ज० ओघं० । अज० ज० एग०, उ० अंतो० । तिरिक्खगदि३ ज०[2] एग० । अज० णाणा०भंगो । मणुस०-मणुसाणु० ज० ओघं । अज० ज० एग०, उ० एक्कत्तीसं० देसू० । पंचिंदि०--ओरालि०--तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०--पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि० ज० ज० एग०, उक्क० वेसम० । अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं[3]० देसू० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० इत्थिभंगो ।

काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, नरकगति, देवगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, आतप और उद्योत का भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेद, हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। तिर्यञ्चगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका काल ज्ञानावरणके समान है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माण के जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। वैक्रियिक-शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है।

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः इसमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डककी प्रकृतियोंके तथा तिर्यञ्चगतित्रिक और पञ्चेन्द्रिय जाति आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मिथ्यात्व गुणस्थानका काल अन्तमुहूर्त है और मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तिम समयमें होता है। इसका ही यह अर्थ है कि शेष समयमें उसका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है। इसीसे इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है। यहाँ कही गई दो आयु यद्यपि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ नहीं हैं, पर उनका उत्कृष्ट बन्ध ही अन्तमुहूर्त काल तक होता है, अतः उनकी साता आदिके साथ परिगणना कर ली है। स्त्रीवेद आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल जो ओघके समान कहा है सो यहाँ भी अजघन्य अनुभाग-

---

१. ता० आ० प्रत्योः मिच्छत्त अधज० ज० इति पाठः । २. आ० प्रतौ तिरिक्खगदि०४ ज० इति पाठः । ३. ता० प्रतौ एग० तेत्तीसं० देसू० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४१. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० अंतो०, उक० छावट्ठि० सादि० । सादासाद०-दोआयु०-थिरादितिण्णियुग० ज० अज० ओघं । अपच्चक्खाणावर०४-तित्थ० ज० एग० । अज० ज० अंतो०, उक० तेंत्तीसं० सादि० । पच्चक्खाणा०४ जह० एग० । अज० [ज०] अंतो०, उक० बादालीसं सादि० । चदुणोक०-आहारदुगं ओघं । मणुसगदिपंचग० ज० एग० । अज० ज० अंतो०, उक० तेंत्तीस० साग[1]० । देवगदि०४ ज० एग० । अज० ज० एग०, उ० तिण्णिपलि० सादि० ।

बन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त लिया है। सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेसे यहाँ पुरुषवेद आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है,यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्यगतिद्विकका निरन्तर बन्ध नौवें ग्रैवेयकमें कुछ कम इकतीस सागर तक होता है। इससे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियिकद्विक यहाँ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका भङ्ग स्त्रीवेदके समान कहा है।

५४१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छियासठ सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। प्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर है। चार नोकषाय और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी आदिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छियासठ सागर प्रमाण होनेसे यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छियासठ सागर कहा है। सातावेदनीय आदिका काल ओघके समान है,यह स्पष्ट ही है। चतुर्थ गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल

1. ता० आ० प्रत्योः तेत्तीसं० सादि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. मणपज्जवे पंचणा–छदंसणा०–चदुसंज०-पुरिस०–भय०-दु०–देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०–समचदु०-वेउव्वियअंगो[1]०–पसत्थापसत्थ०४–देवाणु०-अगु०४–पसत्थवि०–तस०४–सुभग–सुस्सर–आदे०–णिमि०–तित्थ०-उच्चा०–पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। सेसं ओधिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०। एवं चेव परिहार०-संजदासं०। णवरि अज० ज० अंतो०। सुहुमसंपरा० अवगदवेदभंगो।

साधिक तेतीस सागर है, अतः यहाँ अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। चतुर्थ और पञ्चम गुणस्थानका मिलाकर जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर है। अतः यहाँ प्रत्याख्यानावरण चारके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर कहा है। चार नोकषाय और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। सम्यग्दृष्टि नारक और देवोंके मनुष्यगति पञ्चकका नियमसे बन्ध होता है। तथा इनका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और देवोंमें उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। सम्यग्दृष्टि मनुष्यका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है, और इनके निरन्तर देवगति चतुष्कका बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है।

५४२. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। शेष भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके पाँच ज्ञानावरणादिके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्मसांपरायसंयतका भङ्ग अपगतवेदियोंके समान है।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके पाँच ज्ञानावरणादि तथा जिनके तीर्थङ्कर प्रकृति बँधती है, उनके वह भी ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। साथ ही मनःपर्ययज्ञानमें उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेक्षा इनका एक समय तक भी बन्ध सम्भव है। कारण कि उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति होनेके बाद पुनः लौटते समय एक समय तक बन्ध होकर मरने पर मनःपर्ययज्ञानमें इनका अजघन्य अनुभागबन्ध एक समय तक देखा जाता है। तथा मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। यहाँ शेष प्रकृतियाँ अध्रुवबन्धिनी हैं। अतः उनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल जिस प्रकार अवधिज्ञानी जीवोंके कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी वह बन जाता है, अतः वह अवधिज्ञानी जीवोंके समान कहा है। संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयतोंके भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंके

१. ता० प्रतौ समचदु० [दो] अंगो० इति पाठः। २. ता० प्रतौ अगु० पसत्थ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४३. असंजदे पंचणाणावरणादिपढमदंडओ ओघं । सादादिविदियदंडओ इत्थिदंडओ[1] हस्स--रदि--तिरिक्खगदि०४ -देवगदि४ ओघं । पुरिस० ज० ओघं । अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । मणुसगदि०३ ओघं । पंचिंदियदंडओ मदि०भंगो । तित्थय० ओघं । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं । ओधिदं०-सम्मादि० ओधिभंगो ।

५४४. किण्णाए पंच णाणावरणादिपढमदंडओ णिरयभंगो । णवरि अज० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०--अणंताणुबंधि०४ ज० एग० । अज० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । सादासाद०-चदुआयु०-णिरय--देवगदि--चदुजादि--पंचसंठा०--पंचसंघ०--दोआणु०--अप्पसत्थ०-थावरादि४-थिरादितिण्णियुग०--दूभग--दुस्सर--अणादे[2]० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम० ।

जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान कहा है। परिहार-विशुद्धिसंयत और संयतासंयतोंमें भी ऐसे ही घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन दोनोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

५४३. असंयतोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीय आदि द्वितीय दण्डक, स्त्रीवेद दण्डक, हास्य, रति, तिर्यञ्चगतिचतुष्क और देवगतिचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनु-भागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगति-त्रिकका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रस पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय इन मार्गणाओंका जिस प्रकार स्पष्टीकरण किया है,उसे ध्यानमें रखकर तथा ओघ व अन्य जिन मार्गणाओंके समान यहाँ काल कहा है उसे भी ध्यानमें रखकर काल घटित किया जा सकता है, अतः यहाँ हमने अलगसे विचार नहीं किया है।

५४४. कृष्ण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार आयु, नरकगति, देवगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभाग-

---

१. ता० प्रतौ इत्थि० इत्थि (?) दंडओ इति पाठः। २. ता० प्रतौ देवगदिपंचसंठा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० ज० ए०, उक्क० अंतो० । इत्थि०--पुरिस०-णवुंस०-हस्स--रदि--अरदि--सोग-तिरिक्खगदि०३--मणुस०-समचदु--वज्जरि०--मणुसाणु०--आदाउज्जो०--पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० णिरयोघं। तित्थ० ज० एग०। अज० ज० उ० अंतो०। एवं णील-काऊणं। णवरि तिरिक्ख०३ सादभंगो। णीलाए तित्थय० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। काऊए तित्थ० णिरयोघं।

बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्यञ्चगतित्रिक, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच-संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्च-गतित्रिकका भंग सातावेदनीयके समान है। तथा नीललेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भंग सामान्य नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—कृष्ण लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और मिथ्यात्व गुणस्थानमें स्त्यानगृद्धि तीन आदिका निरन्तर बन्ध होता है। तथा कृष्ण लेश्याका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, अतः इसमें इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त तो बन जाता है, पर ज्ञानावरणादिका यह काल कैसे बनता है? यह अवश्य ही विचारणीय है, क्योंकि इनका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टिके कहा है, इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय नारकियोंके समान बन जानेसे इनके अजघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। यह नहीं हो सकता कि नरकमें और सातवें नरकमें तो इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय बन जावे और कृष्णलेश्यामें न बने और ऐसी अवस्थामें जब कि कृष्ण लेश्यामें इनके जघन्य अनु-भागबन्धका स्वामी सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि नारकी होता है। इस समस्त प्रकरण पर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ 'नवरि' कह कर जो अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, वहाँ वह एक समय होना चाहिए। इसकी पुष्टि अन्तरप्ररूपणासे भी होती है। सातावेदनीय आदि अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेद आदि हैं तो अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ, पर यहाँ सम्यग्दृष्टिके पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका ही बन्ध होता है। नारकियोंमें भी इसी प्रकार व्यवस्था है, अतः इन सब प्रकृतियोंकी कालप्ररूपणा नारकियोंके समान बन जानेसे वह सामान्य नारकियोंके समान की है। कृष्ण लेश्यामें मिथ्यात्वके अभिमुख हुए सर्व संक्लिष्ट मनुष्यके तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य अनुभाग-बन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहा है। नील और कापोत लेश्यामें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४५. तेऊए पंचणा०--छदंसणा०--बारसक०--भय--दु०--अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि०। थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ ज० [एग०]। अज० [ज०] एग० अंतो०, उक्क० णाणा०-भंगो। सादासाद०--तिण्णिआयु०–तिरिक्खग०--एइंदि०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थ०-थावर-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-दुस्सर-अणादे०[1]-णीचा० ज०ज० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-देवगदि०४–आदाउज्जो० ज० ज० ए०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। पुरिस० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० णाणा०भंगो। हस्स-रदि-आहारदुगं ओघं। मणुस०-समचदु०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० ज० ज० ए०, उक्क० चत्तारि सम०। अज० ज० एग०, उक्क० बे साग०[2] सादि०। पंचिंदि०--ओरालि०--तेजा०--क०--ओरालि०अंगो०–पसत्थ०४–अगु०३–

और सब काल तो कृष्ण लेश्या के समान है। मात्र दो विशेषताएँ हैं। प्रथम तो यह कि जहाँ कृष्ण लेश्याका उत्कृष्ट काल लिया है, वहाँ नील और कापोत लेश्याका काल कहना चाहिए। दूसरे तीर्थङ्कर प्रकृतिका काल अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार कहना चाहिए जो मूलमें कहा ही है।

५४५. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। स्त्यानगृद्धितीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट काल ज्ञानावरण के समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीन आयु, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, देवगतिचतुष्क, आतप और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद के जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ज्ञानावरणके समान है। हास्य, रति और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त

---

१. आ० प्रतौ अणादे० ज० इति पाठः। २. ता० प्रतौ बेस० साग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस०४–णिमि०-तित्थय० ज० ज० एग०, उक्क० बे सम० । अज० ज० एग०, उक्क० बेसाग० सादि० । एवं पम्माए । णवरि पंचिंदि०-तस० तेजइगभंगो[2] ।

५४६. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४–उपघा०-

वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण और तीर्थङ्कर के जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसचतुष्कका भङ्ग तैजसशरीरके समान है।

विशेषार्थ—पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि का जघन्य अनुभागबन्ध ऐसे सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके होता है जिसके वे परिणाम अन्तर्मुहूर्तके पूर्व नहीं प्राप्त हो सकते तथा पीत-लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है, इसलिए यहां प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर कहा है। पीतलेश्याके कालमें एक समय शेष रहने पर जो जीव सासादनसम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके पीतलेश्यामें स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धी चारका अजघन्य अनुभागबन्ध एक समय तक देखा जाता है। इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है पर इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानमें पीतलेश्याका एक समय काल घटित नहीं होता, इसलिए मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहां यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जीवस्थान कालप्ररूपणामें पीतादि लेश्याका जघन्य काल एक समय संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-संयत जीवोंके ही घटित करके बतलाया है, नीचके गुणस्थानोंमें नहीं। फिर भी यहां स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धी चारके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्य प्रकारसे नहीं बन सकता है। इससे हमने यह सम्भावना की है। आगे शुक्ललेश्यामें भी यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहां इन स्त्यानगृद्धि आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ज्ञानावरण के समान साधिक दो सागर है यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदि अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियां हैं इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यही बात स्त्रीवेद आदि के सम्बन्धमें जाननी चाहिए। यद्यपि सम्यग्दृष्टि मनुष्यके देवगतिचतुष्कका निरन्तर बन्ध होता है पर मनुष्य पर्यायमें लेश्या अन्तर्मुहूर्तके बाद बदलती रहती है इसलिए पीतलेश्यामें इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे इन प्रकृतियोंकी परिगणना स्त्रीवेद आदि के साथ की है। सम्यग्दृष्टि देवके निरन्तर पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल ज्ञानावरणके समान साधिक दो सागर कहा है। हास्यादि चार अध्रुव-बन्धिनी प्रकृतियां हैं, स्वामित्वकी अपेक्षा भी ओघसे यहां कोई विशेषता नहीं है, इसलिए इनका काल ओघके समान कहा है। सम्यग्दृष्टि देवके मनुष्यगति आदिका निरन्तर बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर कहा है। यही बात पञ्चेन्द्रियजाति आदिके सम्बन्धमें जाननी चाहिए। पद्मलेश्यामें यह सब व्यवस्था बन जाती है। मात्र यहां एकेन्द्रियजाति और स्थावरका बन्ध नहीं होनेसे पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसकी ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों के साथ परिगणना होती है। यही कारण है कि पद्मलेश्यामें इन दो प्रकृतियोंका भङ्ग तैजसशरीरके समान कहा है।

५४६. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा,

१. ता० प्रतौ बेसा०, आ० प्रतौ बे साग० इति पाठः । २. आ० प्रतौ तस०४ तेजइगभंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचंत० ज० एग०। अज[1]० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० एग०। अज० ज० एग० अंतो०, उक्क० एक्कत्तीसं० सादि०। सादासाद०--दोआयु०--पंचसंठा०-पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--थिरादितिण्णियुगल०--दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० ज० ज० एग०, उक्क० चत्तारिसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-देवगदि०४ ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० सादभंगो। पुरिस० ज० एग०। अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। हस्स-रदि-आहारदुगं ओघं। मणुसगदिपंचग० ज० ज० एग०, उक्क० बेस०। अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं०। पंचिंदि०--तेजा०--क०--पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि०-तित्थ०-ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० ज० ओघं[2]। अज० ज० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०।

अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक और देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। हास्य, रति और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ३५ प्रकृतियाँ, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रिय जाति आदि १६ प्रकृतियाँ, और समचतुरस्र आदि ६ प्रकृतियाँ इन ५८ प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागबन्धका किन्हींके ध्रुवबन्धिनी होनेसे तथा किन्हींके सम्यक्त्वीके नियमसे बँधनेवाली होनेसे उत्कृष्ट

१. ता० आ० प्रत्योः पंचंत० ज० एग०. अज० ज० एग०, अज० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः उच्चा० ओघं। ज० ओघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४७. भवसि० ओघं। अब्भवसि० धुवियाणं पसत्थापसत्थ०४ ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० अणंतका०। सेसाणं मदि०भंगो। णवरि सव्वाणं ज० अपज्जत्तभंगो[1]। अज० अणु०भंगो।

५४८. खइगसम्मा० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०--पुरिसं०[2]-भय--दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। सादासाद०--दोआयु०--तिण्णियुग० ज० अज० ओघं। हस्स--रदि०४-आहारदुगं

काल साधिक तेतीस सागर कहा है। जो द्रव्यलिंगी मुनि नौवें ग्रैवेयकमें उत्पन्न होता है, उसके स्त्यानगृद्धि ३ आदि ८ प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। साता आदि २५ और स्त्रीवेद आदि ८ ये अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ देवगति चतुष्कके विषयमें पीतलेश्यामें किया गया स्पष्टीकरण जान लेना चाहिए। हास्यादि ४ का भंग ओघके समान कहनेका यही अभिप्राय है। मनुष्यगति पञ्चकका सर्वार्थसिद्धिमें निरन्तर बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर कहा है।

५४७. भव्यमार्गणाका भङ्ग ओघके समान है। अभव्योंमें ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ, तथा प्रशस्त वर्णचतुष्क और अप्रशस्त वर्णचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवों के समान है। इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल अपर्याप्त जीवोंके समान है और अजघन्य अनुभागबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—ओघसे जो काल कहा है वह भव्यमार्गणामें अविकल बन जाता है, अतः इसे ओघके समान कहा है। अभव्य मार्गणामें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका अनन्त काल तक अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है, ऐसा कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि अभव्य नियमसे मिथ्यादृष्टि होते हैं, इसलिए मत्यज्ञानी जीवोंमें जो काल कहा है वह यहाँ बन जायगा। पर मत्यज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल यहाँ नहीं बन सकता, क्योंकि मत्यज्ञानी जीव परिणामोंकी विशुद्धि द्वारा क्रमसे सम्यक्त्व आदि गुणोंको भी उत्पन्न करते हैं। यह दूसरी बात कि इन गुणोंके सद्भावमें मत्यज्ञान नहीं होता पर अभव्योंमें ऐसी योग्यता नहीं होती, अतः उनमें शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल पूरी तरह किसके समान होता है,यह दिखलाते हुए कहा है कि अपर्याप्तकोंके शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जो काल कहा है, वह यहाँ उन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका काल जानना चाहिए और अजघन्य अनुभागबन्धका काल अपने ही अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके कालके समान जानना चाहिए।

५४८. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और तीन युगलके

१. ता० आ० प्रत्योः ज० अप्पसत्थभंगो इति पाठः। २. ता० प्रतौ बारसक० बारसक० (?) पुरिस० इति पाठः।

ओघं। मणुसगदिपंचग० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं। देवगदि०४ ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० सादि०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा[1]० ज० ज० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। तित्थकरं एवं चेव।

५४६. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक० पुरिस० भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०--समचदु०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०--तस०४-सुभग--सुस्सर--आदें०--णिमि०-उच्चा०-पंचंत० ज० एग०। अज० ज० अंतो०, उक्क० छावट्ठि०। अपच्च-क्खाणा०४ तेंत्तीसं सादि०। पच्चक्खाणा०४ बादालीसं० सादि०। सादासाद०-दोआयु०-तिण्णियुग० ज० अज० ओघं। देवगदि०४ ज० एग०। अज० [ज०]

जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। हास्य, रतिचतुष्क और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग इसी प्रकार है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि ३६, पञ्चेन्द्रियजाति आदि २१ और जिनके बन्ध होता है उनके तीर्थङ्कर ये ५८ प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है, क्योंकि संसार अवस्थामें इतने काल तक क्षायिक सम्यक्त्वकी उपलब्धि होती है। प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके स्वामित्वको देखनेसे विदित होता है कि उनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्वका जघन्य काल ही अन्तर्मुहूर्त है। दूसरे असंयत और संयमासंयम आदि गुण स्थानोंका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके कालका स्पष्टीकरण आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके जैसा किया है, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए।

५४६. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है। किन्तु अप्रत्याख्यानावरण चारका साधिक तेतीस सागर और प्रत्याख्यानावरण चारका साधिक ब्यालीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो आयु और तीन युगलके जघन्य और

---

1. ता० आ० प्रत्योः णिमि० तित्थ० उच्चा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू० । मणुसगदिपंचग० ज० एग० । अज० [ज०] अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० । तित्थ० ज० एग० । अज० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० । सेसं ओधिभंगो ।

५५०. उवसम० पंचणा०-छदंसणा०--बारसक०-पुरिस०-भय०-दु०--मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०--उच्चा०-पंचंत० ज० एग० । अज० ज० उ० अंतो० । सादादि० ओधिभंगो । एवं हस्स-रदि-अरदि-सोग-देवगदि०४-आहारदुगं ।

अजघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है । देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है । मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । शेष भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर होनेसे यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर कहा है । मात्र वेदक सम्यक्त्वके साथ असंयमका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर और असंयम व संयमासंयम दोनोंका मिलाकर उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस सागर होनेसे यहाँ अप्रत्याख्यानावरण चारके और प्रत्याख्यानावरण चारके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर और साधिक ब्यालीस सागर कहा है । सातादि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है । मनुष्य या तिर्यञ्चके वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य होनेसे यहाँ देवगति चतुष्कका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है । देवोंमें और नारकियोंमें वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और देवोंमें उत्कृष्ट काल तेतीस सागर होनेसे यहाँ मनुष्यगति पञ्चकके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है । मनुष्योंमें वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और मनुष्य व देवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवालेका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर होनेसे यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि नरक और देवमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका जिसके बन्ध होता है, वह नियमसे सम्यग्दृष्टि ही होता है, इसलिए यहाँ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त घटित नहीं होता । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानके समान है, यह स्पष्ट ही है ।

५५०. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सातावेदनीय आदिका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । इसी प्रकार हास्य, रति, अरति, शोक, देवगति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५१. सासणे पंचणा०--णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दु०-तिगदि०-पंचिंदि०-चदुसरीर०-दोअंगो०--पसत्थापसत्थव०४-तिण्णिआणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०--णीचा० पंचंत० ज० एग०। अज० ज० एग०, उ० छावलिगाओ। सादासाद०-तिण्णिआयु०--चदुसंठा०--पंचसंघे०--अप्पसत्थ०--थिरादितिण्णियुग०--दूभग--दुस्सर-अणादे० जह० ओघं। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। इत्थि०--अरदि-सोग०-उज्जो० ज० ज० एग०, उ० बेसम०। अज० ज० एग०, उ० अंतो०। पुरिस०-हस्स-रदि० ज० एग०। अज० इत्थि०भंगो। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० ज० ओघं। अज० ज० एग०, उ० छावलिगाओ।

५५२. सम्मामिच्छे पंचणाणावरणादिधुविगाणं ज० एग०। अज० ज० उ०

चतुष्क और आहारकद्विकका भङ्ग जानना चाहिए।

विशेषार्थ--प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५५१. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीन आयु, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, दुस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, अरति, शोक और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि है।

विशेषार्थ--सासादनगुणस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि होनेसे यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि कहा है। यहाँ सातावेदनीय आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण इनका अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ होना है। शेष कथन सुगम है।

५५२. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और

१. आ० प्रतौ चदुसंठा० चदुसंघ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो॰। सेसं॰ ओधि॰भंगो। मिच्छादिट्ठी॰ मदिय॰भंगो। सण्णी॰ पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो।

५५३. असण्णीसु धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ज॰ ज॰ एग॰, उक्क॰ बेसम॰। अज॰ ज॰ एग॰, उक्क॰ अणंतका॰। णवरि तिरिक्खगदि॰३ अजे॰ असंखेज्जा लोगा। तिण्णिवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग॰-पंचिंदि॰-ओरालि॰-वेउव्वि॰-दोअंगो॰-पर॰-उस्सा॰-आदाउज्जो॰-तस॰-४ ज॰ ज॰ एग॰, उक्क॰ बेसम॰। अज॰ ज॰ एग॰, उ॰ अंतो॰। णवरि ओरालि॰ अज॰ ज॰ एग॰, उक्क॰ अणंतका॰। सेसाणं अप्पज्जत्तभंगो।

उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी जीवों पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और पाँच अन्तराय। तथा देव और नारकियोंके मनुष्यगतिपञ्चक और मनुष्य व तिर्यञ्चोंके देवगतिचतुष्क। इनमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध जीवोंके और प्रशस्त प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके अभिमुख हुए सर्व संक्लिष्ट जीवोंके जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अन्यथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५५३. असंज्ञी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीरके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—असंज्ञियोंकी कायस्थिति अनन्त काल है। पर इनमें तिर्यञ्चगतित्रिकका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीव ही करते हैं और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इसीसे तिर्यञ्चगति त्रिकके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक कहा है। इसी प्रकार औदारिकशरीरका इनके निरन्तर बन्ध होता रहता है, क्योंकि यहाँ औदारिक आङ्गोपाङ्गके समान न तो अध्रुवबन्धिनी है और न सप्रतिपक्ष ही। इसीसे यहाँ इसके

---

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः ज॰ एग॰ उ॰ अंतो॰ इति पाठः। २. आ॰ प्रतौ णवरि तिरिक्खगदि॰३ अज॰ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५४. आहारे धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ज० ओघं। अज० ज० एग०, उ० अंगुल० असंखे०। सेसं ओघं। णवरि मिच्छ० अज० ज० खुद्दाभव०तिसमयूणं। तित्थ० अज० ज० एग०। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं कालं समत्तं।

१४ अंतरपरूवणा

५५५. अंतरं दुवि०-जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०--सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक्क०अणुभागबंधंतरं केव० १ ज० एग०, उक्क० अणंतकाल-

---

अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५५४. आहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवों के समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—ओघसे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका और तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभाग-बन्ध एक समय तक होता है। वह काल यहाँ भी सम्भव है, इसलिए यह ओघ के समान कहा है। तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिसे उतरते समय और सासादनमें एक समय तक होकर मरकर जीवके अनाहारक हो जाने पर अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय बन जाता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा आहारकोंकी कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें आहारक तीन समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण अवश्य रहता है, और इस कालमें मिथ्यात्वका अजघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल उक्त प्रमाण कहा है। उपशमश्रेणीसे उतर कर और एक समय तक तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्धकर मरणद्वारा जीवका अनाहारक हो जाना सम्भव है। इसीसे यहाँ इसके अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

१४ अन्तरप्ररूवणा

५५५. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका कितना अन्तर है। जघन्य अन्तर एक

---

१. ता० प्रतौ छदंसणा० चदुसंज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मसंखेंज्जा पोग्गलपरि० । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणुबं०४–इत्थि० उ० ज० एग०, उ० अणंतकालं० । अणु० ज० एग०, उ० बे छावट्ठि० देसू० । सादा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४–अगु०३–पसत्थवि०-तस०४–थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठ० उ० ज० एग०, उ० अणंतका० । अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडी देसू० । णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० णाणावरण-भंगो । अणु० ज० एग०, उ० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णिपलि० देसू० । णिरय-मणुसायु-णिरयगदि-णिरयाणु० उ० अणु० ज० एग०, उ० अणंतका० । तिरिक्खायु० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० सागरोवमसदपुध० । देवायु० उ० ज० एग०, उ० अद्धपोग्गल० । अणु० ज० एग०, उ० अणंतकालं० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० तेवट्ठिसागरोवमसदं । मणुस०-मणुसाणु० उ० ज०एग०, उ० अद्धपोग्गल० । अणु० ज एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा । देवगदि०४

समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छियासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है। नरकायु, मनुष्यायु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर

---

१. ता० आ० प्रत्योः सादासाद० पंचिंदि० इति पाठः। २. आ० प्रतौ अट्ठ० ज० एग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० अणंतका०। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ उक्क० णाणा०भंगो। अणु० ज० एग०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं[1]। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० उक्क० मणुसगदिभंगो। अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० सादि०। आहारदुग० उ० णत्थि० अंतरं[2]। अणु० ज० अंतो०, उ० अद्धपोग्गल०। उज्जो० उ० ज० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गलं०[3]। अणु० ज० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं। उच्चा० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनंत काल है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननके उत्कृष्ट अनुभागबंधका अंतर मनुष्यगति के समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गईं पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त जीव करता है। इसके ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और यदि इस पर्यायका त्याग कर निरन्तर एकेन्द्रिय आदि अन्य पर्यायोंमें परिभ्रमण करता रहे तो अनन्त कालके अन्तरसे भी हो सकते हैं। इसी प्रकार जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामवाला जीव है उन सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण घटित कर लेना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय है। तथा इनकी बन्धव्युच्छित्ति होकर पुनः इनका बन्ध करनेमें अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि आठ प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यात्वका मिथ्यात्वगुणस्थानमें और शेषका मिथ्यात्व व सासादनगुणस्थानमें होता है और मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो बार छियासठ सागर है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो बार छियासठ सागर कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा ये अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य

१. आ० प्रतौ उ० सागरोवमसद० इति पाठः। २. आ० प्रतौ अंतरं। ज० अंतो० इति पाठः। ३. ता० प्रतौ उज्जो० उ० ज० उ० अद्धपोग्ग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिका यह अन्तर लाते समय तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीवको उपशमश्रेणि पर आरोहण कराके और वहाँ क्रमसे एक समय काल तक और अन्तर्मुहूर्त काल तक अबन्धक रख कर यथाविधि पुनः बन्ध कराके यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। जो जीव संयमासंयम आदिका धारी होता है, उसके अप्रत्याख्यानावरण चारका और जो संयमका धारी होता है, उसके प्रत्याख्यानावरण चारका बन्ध नहीं होता और इन संयमासंयम व संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। इसके बाद जीव नियमसे असंयमी होता है, अतः यहाँ इन आठ कषायोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका द्वितीयादि गुणस्थानोंमें और शेषका तृतीयादि गुणस्थानोंमें बन्ध नहीं होता। साथ ही भोगभूमिमें भी पर्याप्त अवस्थामें इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए यदि कोई जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कुछ कम दो बार छियासठ सागर काल तक परिभ्रमण करनेके पूर्व उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो जाय तो कुछ कम तीन पल्य अधिक कुछ कम दो छियासठ सागर कालका अन्तर देकर इनका बन्ध होगा। यही कारण है कि यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक कुछ कम दो छियासठ सागर कहा है। एकेन्द्रिय पर्यायमें परिभ्रमण करते हुए नरकायु और नरकगतिद्विकका तो बन्ध होता ही नहीं। मनुष्यायुका बन्ध सम्भव है, पर तिर्यञ्च पर्यायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अनन्तप्रमाण होनेसे जो जीव इतने काल तक तिर्यञ्च है उसके मनुष्यायुका भी बन्ध नहीं होगा, अतः इन चारों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समान इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है, अतः यहाँ इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व-प्रमाण कहा है। देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले अप्रमत्तसंयत जीवके होता है और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, अतः यहाँ इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। तथा एकेन्द्रिय आदि चतुरिन्द्रिय तकके जीवके देवायुका बन्ध होता ही नहीं, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। जो दोबार छियासठ सागर काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के साथ रहकर अन्तिम ग्रैवेयकमें इकतीस सागर कालतक मिथ्यात्वके साथ रहता है, उसके तिर्यञ्च-गतिद्विकका इतने काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर कहा है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि देव, नारकीके होता है। यह अवस्था पुनः अधिकसे अधिक कुछ कम अर्ध-पुद्गल परिवर्तनके बाद उपलब्ध होती है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा इनका यदि अधिकसे अधिक काल तक बन्ध ही न हो तो अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके नहीं होता और यह उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। देवगति चतुष्कका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा अनन्त काल तक एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यायमें इनका बन्ध ही नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। चार जाति आदिका बाईस सागर तक छठे नरकमें, फिर वहाँसे सम्यक्त्वके साथ निकले हुए जीवके दो बार छियासठ सागर कालके भीतर फिर ३१ सागर आयुके साथ उत्पन्न हुए नौवें ग्रैवेयकमें बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५६. णिरयेसु पंचणा०-छदंसणा०--बारसक०--भय-दु०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण४-अगु०४-तस४-णिमि०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। अणु० ज० एग०, उक्क० बेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थ०-दूभग०-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उक्क० अणु० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं०

ही नहीं होता। इस कालका जोड़ एकसौ पचासी सागर है, अतः इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर कहा है। औदारिकशरीर आदि तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी मनुष्यगतिके समान है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल मनुष्यगतिके समान कहा है। जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है, उसके सम्यक्त्वके प्रारम्भ कालसे उत्तम भोगभूमिमें रहनेके काल तक इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य कहा है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इनके इसके अन्तरकालका निषेध किया है। अप्रमत्तसंयतका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल कहा है। उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध सातवें नरकके नारकीके होता है और सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमाण है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन कालप्रमाण कहा है। तथा जो जीव दो बार छियासठ सागर कालतक सम्यक्त्व और मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्वके साथ रहकर मिथ्यात्वके साथ अन्तिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न होता है, उसके इतने कालतक इसका बन्ध ही नहीं होता। अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर कहा है। उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणीमें होता है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके इसका बन्ध ही नहीं होता और इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। यहाँ सर्वत्र अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय एक समयके अन्तरसे दो बार उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके ले आना चाहिए। मात्र जहाँ उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है, वहाँ उपशमश्रेणिमें एक समयतक उन प्रकृतियोंका बन्ध न कराकर ले आना चाहिए। मात्र ऐसे जीवको उपशमश्रेणिमें एक समयतक उन प्रकृतियोंका अबन्धक रखकर और दूसरे समयमें मरण कराकर देवोंमें उत्पन्न कराकर उन प्रकृतियोंका बन्ध कराना चाहिए।

५५६. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसू० । दोआउ० उक्क० अणु० ज०एग०, उ० छम्मासं देसू० । मणुसग०--मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० अणु० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं देसू० । उज्जो० उक्क० ज० अंतो०, अणु० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसू० । सादासाद०-पंचणो०-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०--थिराथिर-सुभासुभ--सुभग--सुस्सर--आदेंज्ज-जस०--अजस० उ० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसू० । अणु० ज० एग०, उक्क० अंतो० । तित्थ० उ० ज० एग०, उ० तिण्णिसाग० सादि० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । एवं सत्तमाए पुढवीए । छसु उवरिमासु एसेव भंगो । णवरि मणुस०३ सादभंगो । उज्जो० णवुंसगभंगो । सेसाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी कादव्वा ।

अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीर्थङ्करप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और अन्तर साधिक तीन सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वीमें जानना चाहिए। प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यहाँ मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सातावेदनीयके समान है और उद्योतका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंकी अपनी-अपनी स्थिति करनी चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि नारकी और प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी सम्यग्दृष्टि नारकी है। ये एक समयके अन्तरसे या प्रारम्भमें और अन्तमें यदि इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करें और मध्यमें एक समय तक या कुछ कम तेतीस सागर काल तक अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता रहे तो इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई स्त्यानगृद्धि तीन आदिका मिथ्यादृष्टिके बन्ध होता है और सम्यग्दृष्टिके नहीं,इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ले आना चाहिए और प्रारम्भ व अन्तमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके और बीचमें सम्यग्दृष्टि रख कर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ले आना चाहिए। तथा दोनों प्रकारका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५७. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०--भय-दु०-अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणुबं०४--इत्थि० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० देसू०। सादा०-

जघन्य अन्तर पूर्ववत् एक समयके अन्तरसे बन्ध कराके ले आना चाहिए। दोनों आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रका सम्यग्दृष्टि नारकीके उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करावे। फिर कुछ कम तेतीस सागर काल तक मिथ्यात्वमें रखकर पुनः अन्तमें सम्यग्दृष्टि बनाकर वैसा ही बन्ध करावे, तो इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर आनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। यह दोनों प्रकारका जघन्य अन्तर एक समय एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट बन्ध कराके ले आवे। उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख नारकीके होता है। अतः यह अवस्था कमसे कम अन्तर्मुहूर्तका अन्तर देकर और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरका अन्तर देकर प्राप्त होती है, अतः उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा उद्योत अध्रुवबन्धिनी प्रकृति होनेसे इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और कोई मिथ्यादृष्टि नारकी प्रारम्भ और अन्तमें इसका बन्ध करता है और बीचमें कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्दृष्टि होकर उसका बन्ध नहीं करता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। सातावेदनीय आदिमेंसे किन्हींका मिथ्यादृष्टि और किन्हींका सम्यग्दृष्टि उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है। यह कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे करता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा ये सब सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरक तक ही होता है। उसमें भी साधिक तीन सागरकी आयुवाले नारकीसे अधिक स्थितिवालेके नहीं होता, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर कहा है, क्योंकि यहाँ एक समयके अन्तरसे या साधिक तीन सागरके अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है। तथा इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। सातवीं पृथिवीमें यह ओघ नारकप्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उसके कथनको सामान्य नारकीके समान कहा है। मात्र यहाँ से चौथी पृथिवी तक तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षा कथन नहीं करना चाहिए। शेष छह पृथिवियोंमें भी अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार यह अन्तर कालप्ररूपणा बन जाती है। इतनी विशेषता है कि इन पृथिवियोंमें मनुष्यगतित्रिक सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, अतः इनका अन्तर सातावेदनीयके समान कहना चाहिए। तथा इन पृथिवियोंमें उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि साकार-जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवालेके होता है, अतः इसका अन्तर काल नपुंसकवेदके समान बन जानेसे वह उसके समान कहा है।

५५७. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदि०-समचदु०-पर०उस्सा०-पसत्थ०-तस०४—थिरादिछ० उ० ज० एग०, उक्क० अद्धपोंग्गल० । अणु० ओघं । असादा०--पंचणोक०--अथिर--असुभ--अजस० उक्क० अणु० ओघं । अपच्चक्खाणा०४—णवुंस०--तिरिक्ख०--चदुजा०-ओरालि०-पंचसंठा०--ओरालि०अंगो०--छस्संघ०--तिरिक्खाणु०--आदाउज्जो०--अप्पसत्थवि०-थावरादि०४--दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडी देसू० । तिण्णिआयु० उ० अणु० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू० । तिरिक्खायु० उक्क० ओघं । अणु० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी सादि० । णिरय०--णिरयाणु० उ० अणु० ओघं । मणुस०-मणुसाणु० उ० ज० एग०, उ० अणंतका० । अणु० ओघं । देवगदि०४ उ० ज० एग०, उ० अद्धपोंग्गल० । अणु० ओघं । उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० अद्धपोंग्गलं० । अणु० ओघं । तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० उ० ज० [एग०, उ० अद्धपोंग्गल० । अणु० ज० एग०] उं० बेसम० ।

समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । अप्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । तीन आयुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है । तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तन है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है ।

१. ता० प्रतौ उच्चा० अद्धपोग्ग० इति पाठः । २. ता० प्रतौ उ० ज० ए० उ०, आ० प्रतौ उ० ज० उ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल ओघके समान बन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। दूसरे दण्डकमें कही कई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे होता है, इसलिए यह अन्तर एक समय कहा है। तथा तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है और इतने काल तक स्त्यानगृद्धि आदिका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। संयतासंयत सर्वविशुद्ध पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियजाति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है। यह एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके अन्तरसे भी सम्भव है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होनेसे वह ओघके समान कहा है। असातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ओघके समान यहाँ भी बन जाता है, अतः वह ओघके समान कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चार आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका ओघ के समान जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, यह स्पष्ट ही है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे होता है और कर्मभूमिज सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चके इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तिर्यञ्चोंमें तीन आयुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध त्रिभागके प्रारम्भमें और अन्तमें सम्भव है तथा कमसे कम एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट जो अन्तर ओघसे घटित करके बतला आये हैं, वह यहाँ भी बन जाता है, अतः वह ओघके समान कहा है। तथा इसके अनुत्कृष्ट अनुभागका कमसे कम एक समयके अन्तर बन्ध सम्भव है और पिछले भवमें पूर्वकोटिके त्रिभागमें एक पूर्वकोटि प्रमाण तिर्यञ्चायुका बन्ध करके वर्तमान पर्यायमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर तिर्यञ्चायुका बन्ध करे तो साधिक एक पूर्वकोटिके अन्तरसे भी तिर्यञ्चायुका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि कहा है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका ओघ से जो दोनों प्रकारका अन्तर बतलाया है वह तिर्यञ्चों की मुख्यतासे ही बतलाया है, अतः यह ओघके समान कहा है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और अधिकसे अधिक अनन्त कालके अन्तरसे होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे होता है और जो अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके प्रारम्भ और अन्तमें संयतासंयत हो इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, उसके अधिकसे अधिक इतने कालके अन्तरसे इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है। इसीसे इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण कहा है। इसी प्रकार उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५८. पंचिंदियतिरिक्ख०३ पंचणा०-छदंसणा-अट्ठक०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०उप०-णिमि०-पंचंत० उ० जह० एग०, उ० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणु० ज० एग०, उक्क० बेसम०। सादासाद०-पंचणोक०-देवगदि०४-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-उच्चा० उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि० उ० णाणा०भंगो। अणु० तिरिक्खोघं। अपचक्खाणा०४-णवुंस०-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिण्णि-आणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० णाणा०भंगो। अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडी देसू०। चदुआयु० तिरिक्खोघं। णवरि तिरिक्खायुग० उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं।

और उत्कृष्ट अन्तर घटित कर लेना चाहिए। तथा इन पाँचों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल ओघके समान है,यह स्पष्ट ही है। तैजसशरीर आदि का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयतासंयतके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है।

५५८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, देवगतिचतुष्क, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरण के उत्कृष्टके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। चार आयुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है।

विशेषार्थ—अबतक जो अन्तरकालका स्पष्टीकरण किया है, उससे यहाँसे लेकर आगेके अन्तरकालके समझनेमें बहुत कुछ सहायता मिलती है/अतः सर्वत्र जो विशेषता होगी,उसका ही निर्देश करेंगे। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य प्रमाण है। अतः किसी उक्त तिर्यञ्चके अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और भोगभूमिमें उत्पन्न होनेके

५५९. पंचिंदि०तिरि०अप० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० अंतो०। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। सेसाणं उ० अणु० जं० एग०, उ० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं चं सुहुमपज्जत्ताणं।

५६०. मणुस०३ पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०--भय-दु०--अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० पुव्वकोडिपुध०। अणु० ओघं। थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-

पूर्व प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेपर उसका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। भोगभूमिमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव न होनेसे उसकी स्थितिका यहाँ ग्रहण नहीं किया। इसी प्रकार सातावेदनीयदण्डक, स्त्यानगृद्धिदण्डक और अप्रत्याख्यानावरण चार दण्डकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर घटित कर लेना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण चारका संयतासंयतके और इस दण्डकमें कही गई शेष प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्व कोटि कहा है। यहाँ पर्यायके प्रारम्भमें और अन्तमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तर लाना चाहिए। सब आयुओंके अनुभागबन्धका अन्तर काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान बन जाता है। मात्र तिर्यञ्चायुमें विशेषता है। भोगभूमिको छोड़कर तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। यह सम्भव है कि कोई तिर्यञ्च इसके प्रारम्भ और अन्तमें तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करे और मध्यमें न करे, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है।

५५९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्त और सूक्ष्म पर्याप्तकोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। तथा शेष सब अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। स्थावर और त्रस सब अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्तकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है और स्वामित्वकी अपेक्षा भी कोई अन्तर नहीं है, अतः उनका कथन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है, यह कहा है।

५६०. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर

१. आ० प्रतौ उ० ज० इति पाठः। २. ता० प्रतौ तसाण च इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंताणुबं०४–इत्थि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। सादा०-देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०–देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थवि०-तस०४–थिरादिछ०–[उच्चा०] उ० णत्थि अंतरं। अणु० ओघं। असादा०-पंचणोक०-अथिर-असुभ-अजस० उ० णाणा०भंगो। अणु० सादभंगो। अट्ठक०-णवुंस-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४–दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० अणु० जोणिणिभंगो। तिण्णिआयु० उ० अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडितिभागं देसूणं। मणुसायु० उ० ज० एग०, उ० पुव्वकोडिपुध०। अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडी सादि०। आहारदुग० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपुधत्तं। तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु[२]०-णिमि०-तित्थ० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० उक्क० अंतो०।

ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। सातावेदनीय, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। आठ कषाय, नपुंसकवेद, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनीके समान है। तीन आयुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिके कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल जिस प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। मनुष्योंमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुागबन्धका अन्तर ओघके समान बन जानेसे वह वैसा कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध यहाँ क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके आठ कषाय आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तर कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यह पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान कहा है। तीन आयु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट

१. आ० प्रतौ उ० ज० एग० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः पसत्थवि०४ अगु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६१. देवेसु पंचणा०--छदंसणा०--बारसक०-भय--दु०--अप्पसत्थ०४–उप[1]०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० अट्ठारस० सादि०। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणुबं०४–इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उक्क० णाणा०भंगो। अणु० ज० एग०, उ० ऍक्कतीसं० देसू०। सादा०-मणुस०--पंचिंदि०-समचदु०--ओरालि०अंगो०--वज्जरि०--मणुसाणु०-पसत्थ०-तस०-थिरादिछ[2]०-उच्चा० उ० ज० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसू०। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। असादा०-पंचणोक०-अथिर-असुभ-अजस० उ० णाणा०भंगो। अणु० सादभंगो। दोआयु० णिरयभंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उ० अणु० ज० एग०, उ० अट्ठारस० सादि०। एइंदि०-आदाव-थावर० उ० अणु० ज० एग०,

अनुभागबन्धका अन्तर भी उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र तिर्यञ्चोंके तीन आयुओंमें तिर्यञ्चायु सम्मिलित न थी सो यहाँ तीन आयुओंसे मनुष्यायु अलग करनी चाहिए। आहारकद्विक और तैजसशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा आहारकद्विकका बन्ध न होकर पुनः बन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके बाद और अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्व कालके बाद ही सम्भव है, क्योंकि सातवेंसे छठेमें आनेपर पुनः सातवें गुणस्थानकी प्राप्ति अन्तर्मुहूर्तके बाद होती है तथा पूर्वकोटिपृथक्त्व कालके प्रारम्भ और अन्तमें सातवें गुणस्थानकी प्राप्ति होकर इनका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह भी सम्भव है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा तैजसशरीर आदिकी उपशम श्रेणिमें बन्धव्युच्छित्ति होकर पुनः उतरनेपर यदि इनका बन्ध हो तो अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तकालका अन्तर पड़ता है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

५६१. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्जर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर

१. आ० प्रतौ अप्पसत्थ० उप० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः तस०४ थिरादिछ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० बेसाग० सादि० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० उ० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० देसू० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो अंतरं णेदव्वं याव सव्वट्ठ त्ति ।

५६२. एइंदिएसु धुविगाणं उ० ज० एग०, उ० असंखेज्जा लोगा । बादर-अंगुल० असंखे० । पज्जत्ते संखेज्जाणि वाससहस्साणि । सुहुमे असंखेज्जा लोगा ।

के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धितकके सब देवोंके अपना-अपना अन्तर ले आना चाहिए ।

विशेषार्थ—देवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका ओघ उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक होता है, आगे नहीं, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है । स्त्यानगृद्धि आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके विषयमें यही बात है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है । तथा इनका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है । यहाँ नौवें ग्रैवेयकके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध करा के और मध्यमें उस जीवको सम्यग्दृष्टि रखकर यह अन्तर काल ले आना चाहिए । देवोंमें सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि सर्वविशुद्ध देवके होता है । सर्वार्थसिद्धिमें भी यह सम्भव है । अतः सर्वार्थसिद्धिमें प्रारम्भमें और अन्तमें इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करानेसे यह कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है । तथा ये सब सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । असातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है । तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान बन जानेसे वह उसके समान कहा है । दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है,यह स्पष्ट ही है । तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है । मात्र उत्कृष्ट अनुभागबन्धका यह अन्तर प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रारम्भ और अन्तमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके और मध्यमें अन्तरकाल तक सम्यग्दृष्टि रखकर यह अन्तर ले आना चाहिए । इसी प्रकार एकेन्द्रियजाति आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ले आना चाहिए । मात्र इनका बन्ध ऐशान कल्प तक होता है, इसलिए यह साधिक दो सागर कहना चाहिए । औदारिकशरीर आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सातावेदनीय आदिकी तरह घटित कर लेना चाहिए । इसी प्रकार सब देवोंके अपनी-अपनी स्थिति आदिको जानकर अन्तर काल प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए वह अलगसे नहीं कहा ।

५६२. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है । बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोक प्रमाण है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । तिरिक्खायु० उक्क० ओघं । अणु० ज० एग०, उ० बावीसं वाससहस्साणि सादि० । सुहुमाणं अंतो० । मणुसायु० उ० अणु० ज० एग०, उक्क० सत्तवाससहस्साणि सादि० । सुहुमाणं[1] अंतो० । मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उ० अणु० ज० एग०[2] उ० असंखेज्जा लोगा । बादरे० अंगुल० असं० । अणु० ज० एग०, उक्क० कम्मट्ठिदी० । पज्जत्ते उक्क० अणु० ज० एग०, उक्क० संखेज्जाणि[3] वाससहस्साणि । सुहुमे असंखेज्जा लोगा । उज्जो० उ० ज० एग०, उ० अणंतका० । बादरे अंगुल० असं० । पज्जत्ते संखेज्जाणि वाससहस्सा० । सुहुमे असंखेज्जा लोगा । सेसाणं उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० ।

तथा इन सबमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है । मात्र सूक्ष्मोंमें यह उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है । सूक्ष्मोंमें यह उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है । बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा बादरोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थिति प्रमाण है । बादर पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है । सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है । उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं और एकेन्द्रियोंमें बादर एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है । बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बादर पर्याप्तकोंकी संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंकी असंख्यात लोकप्रमाण है । अतः यहाँ यह अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है । मात्र यहाँ अपनी-अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके उत्कृष्ट अन्तरकाल लाना चाहिए । यहाँ यह शंका होती है कि जिस प्रकार इन बादर एकेन्द्रिय आदिमें यह अन्तर काल प्राप्त किया गया है, उसी प्रकार एकेन्द्रियोंमें यह अन्तरकाल अनन्तकाल क्यों नहीं कहा, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय आदिके समान एकेन्द्रियोंकी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल लानेमें कोई बाधा नहीं आती । प्रश्न ठीक है पर अनुभागबन्धके योग्य परिणाम असंख्यात लोकसे अधिक नहीं हैं, अतः इनमें उत्कृष्ट अन्तर बहुत ही अधिक हो तो वह असंख्यात

१. ता० प्रतौ -सहस्साणि । सादादि० सुहुमाणं, आ० प्रतौ -सहस्साणि । सादा० सुहुमाणं इति पाठः । २. आ० प्रतौ अणु० एग० इति पाठः । ३. ता० प्रतौ उ० संखेज्जाणि, आ० प्रतौ उक्क० असंखेज्जाणि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६३. विगलिंदि०-विगलिंदियपज्जत्तेसु[1] धुविगाणं उ० ज० एग०, उ० संखेंज्जाणि वाससहस्साणि। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। तिरिक्खायु० उ० णाणाभंगो[2]। अणु० ज० एग०, उ० पगदिअंतरं। मणुसायु० उ० अणु० ज० ए०, उ०

लोकप्रमाण होता है। यही कारण है कि एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इन सबके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है,यह स्पष्ट ही है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान कहा है,यह स्पष्ट ही है। इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष कहनेका कारण यह है कि बाईस हजार वर्षकी आयुवाले किसी पृथिवीकायिकने प्रथम त्रिभागमें तिर्यञ्चायुका अनुत्कृष्ट बन्ध किया। उसके बाद वह बाईस हजार वर्षकी आयुवाला पुनः पृथिवीकायिक हुआ और जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा,तब तिर्यञ्चायुका अनुत्कृष्ट बन्ध किया, तो इस प्रकार तिर्यञ्चायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष आ जाता है। किन्तु मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर एक ही भवमें लाना होगा, अतः बाईस हजार वर्षके त्रिभागको ध्यानमें रखकर वह दोनों प्रकारका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष कहा है। मात्र सूक्ष्मोंकी दो भवकी आयु मिलाकर और एक भवकी आयु अन्तर्मुहूर्त ही होती है, अतः इनमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगतित्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर यह दोनों ही असंख्यात लोकप्रमाण कहा है सो इसका कारण यह है कि इनका अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें बन्ध नहीं होता और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। मात्र इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान भी लाया जा सकता है। बादरोंकी कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेसे इनमें इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर तो उक्त प्रमाण घटित हो जाता है पर अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थिति प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि बादर एकेन्द्रियोंमें अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी कायस्थिति कर्मस्थिति प्रमाण होनेसे इतने अन्तरके बाद इनका नियमसे अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तो होने ही लगता है। इनके पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल संख्यात हजारवर्ष ले आना चाहिए। अर्थात् संख्यात हजार वर्षप्रमाण कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके इसका उत्कृष्ट अन्तर ले आना चाहिए और बीचमें संख्यात हजार वर्षतक अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें परिभ्रमण कराके इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष ले आना चाहिए। सूक्ष्मोंमें भी इसी प्रकार इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण ले आना चाहिए। उद्योत अध्रुवबन्धिनी प्रकृति होनेसे इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एकेन्द्रियोंमें अनन्तकाल बन जानेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५६३. विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट

---

१. आ० प्रतौ अंतो। विगलिंदियपज्जत्ते इति पाठः। २. आ० प्रतौ तिरिक्खायु० णाणा० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पगदिअंतरं । सेसाणं० उ० णाणावभंगो । अणु० जं० एग०, उ० अंतो० ।

५६४. पंचिंदि०-तस०२ पंचणा०-छदंसणा०-असाद०-चदुसंज०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उ० ज० एग०, उक० कायट्ठिदी० । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि० उ० णाणा०भंगो । अणु० ओघं । सादा०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ० उक० णत्थि अंतरं । अणु० ओघं । अट्ठक० उ० णाणा०भंगो । अणु० ओघं । णवुंसग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० णाणा०भंगो । अणु० ओघं । तिण्णिआयु० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० एग०, उ० सागरोवमसदपुध० । मणुसायु० उ० अणु० ज० एग०, उ० णाणा०भंगो । पज्जत्ते चदुआयु० उ० अणु० ज० एग०, उ० सागरो-

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तर के समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—विकलेन्द्रियोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इनमें मनुष्यायुके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। मात्र कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तर ले आना चाहिए। तथा तिर्यञ्चायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है सो प्रकृतिबन्धमें यहाँ इन प्रकृतियोंके अन्तरको देखकर यह खुलासा कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

५६४. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्त एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तीन आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। पर्याप्तकोंमें

१. आ० प्रतौ भंगो । अणु० ज० एग०, उ० पगदिअंतरं । सेसाणं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वमसदपुध० । णवरि तसपज्जत्ते तिण्णिआयु० उक्क० सागरोवमसदपुध० । मणुसायु०[1] उक्कस्समणुक्कस्सं सगट्ठिदी० । णिरय०-चदुजादि-णिरयाणु०-आदा०-थावरादि०४ उ० णाणा०भंगो। अणु० ज० एय०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं। तिरिक्खं०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघं। मणुस०-मणुसाणु० उ० णाणा०भंगो। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० सादि०। देवगदि०४—उच्चा० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० सादि०। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० उ० णाणा०-भंगो। अणु० ओघं। आहारदुग० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० ज० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०।

चार आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि त्रस पर्याप्तकोंमें तीन आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है। तथा मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनु-त्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्क और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, और वज्रर्षभ-नाराचसंहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है,यह स्पष्ट ही है; क्योंकि अपनी-अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यदि इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो तो यही अन्तर उपलब्ध होता है। तथा इनकी एक बार बन्धव्युच्छित्ति होने पर पुनः इनका बन्ध हो तो अन्तर्मुहूर्त काल अवश्य लगता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि तथा आगे और जितनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है,उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। अर्थात् अपनी-अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें अन्तमें उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तर ले आना चाहिए। तथा स्त्यानगृद्धि आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका ओघसे जो उत्कृष्ट अन्तर बतलाया है,वह यहाँ पर घटित होता है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि

1. ता० आ० प्रत्योः उक्क० बेसागरोवमसहस्सा० । मणुसायु० इति पाठः । 2. ता० आ० प्रत्योः अणु० ज० एयट्ठिदी तिरिक्ख० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६५. पुढवि०-आउ० धुविगाणं उ० ज० एग०, उक्क० अप्पप्पणो कायट्ठिदी कादव्वा। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। तिरिक्खायु० उ० णाणा०भंगो। अणु०

अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त सर्वत्र बन जाता है। देशसंयतके अप्रत्याख्यानावरण चारका और संयतके अप्रत्याख्यानावरण चार और प्रत्याख्यानावरण चार इन आठोंका बन्ध नहीं होता और संयमासंयम व संयम इन दोनोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान घटित हो जानेसे वह ओघके समान कहा है। नपुंसकवेद आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर भी ओघके समान बन जाता है, क्योंकि वह इन मार्गणाओंमें अविकलरूपसे घटित होता है, इसलिए वह भी ओघके समान कहा है। जीव त्रस और पञ्चेन्द्रिय रहते हुए यदि नारक, तिर्यञ्च या देव नहीं होता तो सौ सागर पृथक्त्व काल तक नहीं होता। इतने कालके बाद उसे यह पर्याय अवश्य ही धारण करना पड़ती है, परन्तु मनुष्यपर्यायके विषयमें यह बात नहीं है, इसलिए यहाँ तीन आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण कहा है और मनुष्यायुके अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपने उत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरके समान अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण कहा है। मात्र यह अन्तर सामान्य त्रस और सामान्य पञ्चेन्द्रियोंमें सम्भव है। इनके जो पर्याप्त हैं,उनमेंसे पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें तो चारों आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण ही है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई निरन्तर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त बना रहे तो सौ सागर पृथक्त्व कालके बाद उसे नारकादि विवक्षित पर्याय अवश्य ही धारण करनी पड़ेगी। पर त्रस पर्याप्तकोंमें तो तीन आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर यही रहेगा। मात्र मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपने उत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरके समान अपनी कायस्थितिप्रमाण होगा। नरकगति आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ओघसे जो एकसौ पचासी सागर बतलाया है वह इन मार्गणाओंमें ही सम्भव है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगति आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ओघमें इन्हीं मार्गणाओंकी मुख्यतासे कहा है, इसलिए वह ओघके समान कहा है। सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टि नारकीके व उसके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक मनुष्यद्विकका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। देवगतिचतुष्क और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसका अन्तर सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। तथा सातवें नरकके मिथ्यादृष्टि नारकीके और वहाँसे निकलने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। औदारिकशरीर आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ओघसे साधिक तीन पल्य बतलाया है वह यहाँ घटित हो जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनकी बन्धव्युच्छित्ति होने पर इन मार्गणाओंमें पुनः बन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमें और अधिकसे अधिक अपनी-अपनी कायस्थितिका अन्तर देकर सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है।

५६५. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण करना चाहिए। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० एग०, उ० पगदिअंतरं। मणुसायु० उ० अणु० ज० एग०, उ० पगदिअंतरं। सेसाणं उ० णाणा०भंगो। अणु० ज० एयसमयं, उ० अंतो०। एवं तेउ०-वाउ०। णवरि मणुसगदि०४ णत्थि। तिरिक्खगदि०४ धुवभंगो। वणप्फदिका० एइंदियभंगो। णवरि तिरिक्खायु० अणु० ज० एग०, उ० दसवस्ससहस्साणि सादि०। मणुसायु० उ० अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिवाससहस्साणि सादि०। मणुसगदितिगं सादभंगो। बादरवणप्फदिपत्ते० पुढविभंगो। णियोद० वणप्फदिभंगो। णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा।

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके मनुष्यगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होता। तथा तिर्यञ्चगतिचतुष्कका भङ्ग ध्रुव प्रकृतियोंके समान है। वनस्पतिकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन हजार वर्ष है। मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीवोंका भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। निगोद जीवोंका भङ्ग वनस्पतिकायिक जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

विशेषार्थ—कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो और मध्यमें न हो तो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण आता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार अन्य जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है, उसे घटित कर लेना चाहिए। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका और मनुष्यायुके उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर इनके प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान कहा है सो उसका यही अभिप्राय है कि प्रकृतिबन्धके समय इनका जो अन्तर बतलाया है, वह यहाँ उक्त अन्तर जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके और सब अन्तरकाल इसी प्रकार बन जाता है। मात्र इनके मनुष्यगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होनेसे तिर्यञ्चगतिचतुष्क ध्रुवप्रकृतियाँ हो जाती हैं। अर्थात् आयुबन्धके समय इनके तिर्यञ्चायुका ही बन्ध होता है और मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका बन्ध न होकर निरन्तर तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका ही बन्ध होता है। इसलिए यहाँ इन तीन प्रकृतियोंके अन्तरकालकी प्ररूपणा ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान करनी चाहिए और मनुष्यायुका अन्तरकाल न कहकर एकमात्र तिर्यञ्चायुका अन्तरकाल कहना चाहिए। वनस्पतिकायिक जीवोंकी कायस्थिति एकेन्द्रियोंके समान है, इसलिए इनका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान कहा है। मात्र इनकी भवस्थिति दस हजार वर्ष है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दस हजार वर्ष तथा मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन हजार वर्ष कहा है। तथा इनके तिर्यञ्चगतित्रिकके प्रतिपक्षरूपसे मनुष्यगतित्रिकका भी बन्ध होता रहता है, अतः इनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६६. पंचमण०--पंचवचि० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०-भय-दु०--चदुआयु०--अप्पसत्थ०४--उप०--पंचंत० उ० ज० एग०, उ० अंतो० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम०[1] । [सादा०-] देवगदि०४--पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०[2]-पसत्थ०-तस०४--थिरादिछ०-उच्चा० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । असादा०-सत्तणोक०-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०--आदाव०--अप्पसत्थ०--थावरादि०४--अथिरादिछ०-णीचा० उ० अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । आहार०[3]-तेजा०-क०-आहार०-अंगो०-पसत्थ०४--अगु०-णिमि०-तित्थ० उ० अणु० णत्थि अंतरं ।

भङ्ग सातावेदनीयके समान जानना चहिए । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंकी कायस्थिति व सब प्रकृतियोंका बन्ध बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है और निगोद जीवोंकी कायस्थिति व सब प्रकृतियोंका बन्ध वनस्पतिकायिक जीवोंके समान है, इसलिए यह कथन इनके समान किया है ।

५६६. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, चार आयु, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । सातावेदनीय, देवगति चार, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । असातावेदनीय, सात नोकषाय, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है ।

विशेषार्थ—इन योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है । तथा उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होता है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है । तथा ये सब अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । असातावेदनीय आदि भी अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ है और इनका एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है । तथा उसी योगके रहते हुए अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है और यदि बीचमें प्रतिपक्ष प्रकृतिका बन्ध होने लगे तो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धमें भी अन्तर्मुहूर्तका अन्तरकाल उपलब्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनु-

१. बेसम० इति स्थाने ता० प्रतौ बेस० सादि०, आ० प्रतौ बेसाग० इति पाठः । २. ता० प्रतौ पर० उज्जो० इति पाठः । ३. ता० आ० प्रत्योः आहारं० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६७. कायजोगीसु पंचणा०–छदंसणा०–असादा०–चदुसंज०–णवणोक०–दोगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसठा०–ओरालि०अंगो०–छस्संघ०–अप्पसत्थ०४–दो-आणु०-उप०-आदाव०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४–अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-बारसक०-णिरय-देवायु० उ० ज० एग०, उ० अंतो० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । सादा०-देवगदि ४–पंचिंदि०-तेजा०–क०–समचदु०–पसत्थ०४–अगु०३–उज्जो०–पसत्थवि०–तस०४–थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । तिरिक्खायु० उ० ज० एग०, उ० अंतो० । अणु० ज० एग०, उ० बावीसं वास-सहस्सा० सादि० । मणुसायु० उ० ज० एग०, उ० अंतो० । अणु० ओघं । मणुस०-मणुसाणु० उ० ज० एग०, उ० अंतो० । अणु० ओघं । आहारदुग० उ० अणु० णत्थि अंतरं । उच्चा० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ओघं ।

त्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । आहारक शरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए तो इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है । तथा इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद उसी योगके रहते हुए पुनः इनका बन्ध सम्भव नहीं है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है ।

५६७. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, नौ नोकषाय, दो गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय, नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । सातावेदनीय, देवगतिचतुष्क, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल नहीं है । उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—काययोगमें पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त-जीवके होता है और इनके काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए तो इसमें इन प्रकृतियोंके

१. ता० आ० प्रत्योः थिरादिछ० इति पाठः । २. ता० प्रतौ० उ० उ० अणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६८. ओरालियका० पंचणाणावरणादि० मणजोगिभंगो। णवरि तिरिक्ख-मणुसायु० उ० ज० एग०, उ० अंतो०। अणु० ज० एग०, उ० सत्तवाससह० सादि०।

५६९. ओरालियमि० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छत्त--सोलसक०--भय--दु०-

उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा उपशमश्रेणिमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका एक समयके लिए और अन्तमुहूर्तके लिए अबन्धक होकर मर कर देव होने पर एक समय या अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे इनका पुनः बन्ध सम्भव है, इसलिए ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है। तथा अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके बन्धके बाद एक समय तक या अन्तर्मुहूर्त तक इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध सम्भव है, इसलिए अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल तो ज्ञानावरणादिके समान ही घटित करना चाहिए। मात्र इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। यहाँ अन्य प्रकारसे अन्तर सम्भव नहीं है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, तथा उद्योतका सम्यक्त्वके अभिमुख सातवें नरकके नारकीके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा इनमें कुछ तो अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और कुछका उपशमश्रेणिकी अपेक्षा अन्तर सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है। तथा तिर्यञ्चायुका काययोगके रहते हुए एकेन्द्रियोंमें साधिक बाईस हजार वर्षके अन्तरसे बन्ध सम्भव होनेसे इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष कहा है और मनुष्यायुका ओघके समान साधिक सात हजार वर्षके अन्तरसे अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान कहा है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध पञ्चेन्द्रियपर्याप्तके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है। और एकेन्द्रियोंमें इनका ओघके समान असंख्यात लोकका अन्तर देकर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान कहा है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है तथा इनका एक बार बन्ध होनेके बाद पुनः बन्ध होनेके काल तक योग बदल जाता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है।

५६८. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल जिस प्रकार मनोयोगी जीवोंके घटित करके बतलाया है, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। मात्र औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष होनेसे यहाँ तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सात हजार वर्ष प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है।

५६९. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगदि०४–[तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवण्ण४–] अगु०-उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० उ० अणु० णत्थि अंतरं। आयु० अपज्जत्तभंगो। सेसाणं उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। एवं वेउव्वियमि०-आहारमि०। णवरि अप्पप्पणो पगदीओ भाणिदव्वाओ। आहारमि० देवायु० उ० णत्थि अंतरं। वेउव्वियका०-आहारका० मणजोगिभंगो। कम्मइ० सव्वाणं उ० अणु० णत्थि अंतरं। णवरिं सादासाद०-चदुणोक०-आदाउज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० उ० णत्थि अंतरं। अणु० एग०। एवं अणाहार०।

सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगतिचतुष्क, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और अन्तर अनुत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ कहलवाना चाहिए। तथा आहारकमिश्रकाययोगमें देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगका काल बहुत थोड़ा है। इसमें प्रथम दण्डकमें कही गई व अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाले, सर्वविशुद्ध व तत्प्रायोग्य विशुद्ध जीवके होता है, अतः दो आयुओंको छोड़कर सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है, क्योंकि ऐसे परिणाम पर्याप्त योगके सन्मुख हुए जीवके अन्तिम समयमें ही सम्भव हैं। तथा प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। यद्यपि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंमें देवगतिचतुष्क भी है, पर औदारिक-मिश्रकाययोगी सम्यग्दृष्टिके ये ध्रुवबन्धिनी ही हैं। इसी प्रकार जिसके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, उसके वह भी ध्रुवबन्धिनी है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका भी निषेध किया है। औदारिकमिश्रकाययोगमें अपर्याप्तकोंके ही दो आयुओंका बन्ध होता है, अतः इनका कथन अपर्याप्तकोंके समान किया है। अब शेष रही परावर्तमान प्रकृतियाँ सो इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें यह अन्तर इसी प्रकार है सो इसका यह अभिप्राय है कि इन दोनों योगोंमें जो ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका तो अन्तर है नहीं। हाँ जो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर न होकर मात्र अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पर इस प्रकार देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर प्राप्त होता है, इसलिए

१. ता० आ० प्रत्योः अंतरं। एवं अणाहार० णवरि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७०. इत्थिवे०[1] पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० ज० एग०[2], उ० कायट्ठिदी०। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग[3]-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी०। अणु० ज० ए०, उ० पणवण्णं[4] पलि० देसू०। सादा०-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ-तस०४-थिरादिछ०-उच्चा० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। आसादा०-पंचणोक०-अथिरादि० उ[5]० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी०। अणु० सादभंगो। अट्ठक० उ० ज० ए०, उ० कायट्ठिदी०। अणु०

उसका निषेध किया है। वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा स्वामित्व सम्बन्धी परिणामों की समता भी देखी जाती है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धकी प्ररूपणा मनोयोगी जीवों के समान बन जानेसे वह उनके समान कही है। कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय होनेसे यहाँ सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं बनता, यह स्पष्ट ही है। मात्र सातावेदनीय आदि कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका यहाँ पर भी परिवर्तन सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। यहाँ शेष परावर्तमान प्रकृतियाँ बन्धकी विशेषताके कारण परावर्तमान नहीं होतीं, ऐसा यहाँ अभिप्राय समझना चाहिए। उदाहरणार्थ, यहाँ जिसके त्रससम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध होता होगा, उसके एक साथ बादर स्थावर सम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होगा। कार्मणकाययोगी अनाहारक ही होते हैं, अतः इनका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान कहा है।

५७०. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाय और अस्थिर आदि तीन के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर

१. ता० आ० प्रत्योः एग० इत्थिवेद० इति पाठः। २. ता० प्रतौ उ० ए० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः थावर० सुहुम० अपज्जत्त साधार० दूभग० इति पाठः। ४. ता० प्रतौ ज० ए० पणपण्णं इति पाठः। ५. ता० आ० प्रत्योः अथिरादिछ० उ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं। णिरयायु० उ० अणु० तिरिक्ख०भंगो[1]। दोआयु० उ० अणु० ज० एग०, उ० पलिदोवमसदपुध०। देवायु० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी। अणु० ज० एग०, उ० अट्ठावण्णं पलि० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। [णिरयग०-तिण्णिजादि-णिरयाणु०-सुहुम०-अपज्जत्त-साधार० उ० ज० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अणु० ज० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि०।] मणुसगदिपंच० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी०। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिपलिदो० देसू०। देवगदि०४ उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० पणवण्णं पलिदो० सादि०। आहारदुग० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि०-तित्थ० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं।

कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। नरकायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर तिर्यञ्चोंके समान है। दो आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्वप्रमाण है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य है। नरकगति, तीन जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काय-स्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है, उनका कायस्थितिके प्रारम्भ और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तर-काल ले आना चाहिए। जो देवी सम्यग्दर्शनके साथ कुछ कम पचपन पल्य तक रहती है, उसके स्त्यानगृद्धि तीन आदिका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य कहा है। सातावेदनीय आदिका क्षपकश्रेणिमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-र्मुहूर्त कहा है। असातावेदनीय आदि भी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। आठ कषायोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ओघसे कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है, वह यहाँ भी बन जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है। तिर्यञ्चोंके नरकायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तर कह आये हैं, वह यहाँ बन जाता है, अतः यह अन्तर उनके समान कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका किसीने काय-

---

१. ता० आ० प्रत्योः तिरिक्खगदिभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७१. पुरिस० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंजं० पंचंत० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी० । अणु० ज० एग०, उ० बेस० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी० । अणु० ओघं । णिद्दा-पचला०-असादा०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी० । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । सादा०-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-उच्चा० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० ।

स्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया और मध्यमें अन्य आयुओंका बन्ध किया । अर्थात् तिर्यञ्चायुका बन्ध करनेवालेने मनुष्यायु और देवायुका मध्यमें बन्ध किया और मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले ने मध्यमें तिर्यञ्चायु और देवायुका बन्ध किया यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है । कोई देवायुका बन्ध करके पचपन पल्यकी आयुवाली देवी हुई । पुनः वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटि पृथक्त्व काल तक मनुष्यनी और तिर्यञ्चयोनिनी होकर तीन पल्यकी आयुके साथ उत्पन्न हुई । और वहाँ अन्तमें देवायुका बन्ध किया, तो इस प्रकार पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पचपन पल्य देवायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है । नरकगति आदिका देवीपर्यायमें बन्ध नहीं होता और इसमें अन्तर्मुहूर्त काल मिलाने पर इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है । मनुष्यगतिपञ्चकका उत्तम भोगभूमिके पर्याप्त जीवोंके बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है । देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक और तैजसशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा देवी पर्यायमें और वहाँसे आकर अन्तर्मुहूर्त काल तक देवगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य कहा है । कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें आहारकद्विकका बन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है । तैजसशरीर आदि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे इसका भी निषेध किया है ।

५७१. पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट

१. ता० प्रतौ पंचणा० चदुसंज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठक० पंचिंदियभंगो। णिरणायु० मणुसि०भंगो। तिरिक्ख०-मणुसायु० उ० अणु० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। देवायु[1]० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी०। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० सादि०। णिरय०-तिरिक्ख०-चदुजादि-दोआणु०-आदावुज्जो०-थावरादि०४ उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी०। अणु० ज० एग०, उ० तेवट्ठि-सागरोवमसद०। मणुसगदिपंचग० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी०। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णि पलि० सादि०। देवगदि०४ उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं० सादि०। णवुंसग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उ० ज० एग०, उ० कायट्ठिदी०। अणु० ओघं। आहारदुगं उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि०-तित्थ० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०।

अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। नरकायुका मनुष्यिनीके समान भङ्ग है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग पञ्चेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके समान है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकगति, तिर्यञ्चगति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसो त्रेसठ सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है, आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है, अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है, उनका कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट बन्ध कराके वह अन्तर ले आना चाहिए। स्त्यानगृद्धि तीन आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो उत्कृष्ट अन्तर काल ओघसे कुछ कम दोछियासठ सागर बतलाया है, वह पुरुषवेदीके ही सम्भव है, अतः यह ओघके समान कहा है। उपशमश्रेणिमें निद्रा और प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होने पर मरण द्वारा कमके कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे पुरुषवेदीके इनका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और

---

1. आ० प्रतौ मणुसि०भंगो देवायु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा असाता आदि शेष परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके भी अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। असातावेदनीयके समान सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर घटित कर लेना चाहिए। तथा इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तर कालका निषेध किया है। पञ्चेन्द्रियोंके आठ कषायोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जो अन्तर काल कहा है वह पुरुषवेदीके बन जाता है, अतः यह पञ्चेन्द्रियोंके समान कहा है। पहले मनुष्यिनियोंके नरकायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण घटित करके बतला आये हैं। यहाँ पुरुषवेदियोंके भी यह इतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि नारकी पुरुषवेदी न होनेसे एक पर्यायमें त्रिभागकी अपेक्षा ही यह घटित करना पड़ता है, अतः यह मनुष्यिनियोंके समान कहा है। पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण बतला आये हैं। पुरुषवेदियोंके यह अन्तर बन जाता है, क्योंकि पुरुषवेदियोंकी जो कायस्थिति है, उसके प्रारम्भमें और अन्तमें दो आयुओंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः यह अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। मात्र देवायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरसे अधिक नहीं बनता; क्योंकि पूर्वकोटिकी आयुवाले किसी मनुष्यने अपने प्रथम त्रिभागमें देवायुका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया। पुनः वह तेतीस सागर काल तक विजयादि देवपर्यायमें रहा और वहाँसे आकर पुनः पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य हुआ। तथा आयुके अन्तमें देवायुका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया तो यह साधिक तेतीस सागर ही होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। पुरुषवेदी रहते हुए नरकगति आदिका एकसौ त्रेसठ सागर काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर प्रमाण कहा है। जो मनुष्य प्रथम त्रिभागमें आयुबन्धके बाद क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करता है और मरकर तीन पल्य की आयुके साथ मनुष्य होता है, उसके इतने काल तक मनुष्यगतिपञ्चकका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। देवगति चतुष्कका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्तिके अन्तर्मुहूर्त बाद मर कर जो तेतीस सागरकी आयुके साथ देवपर्यायमें जन्म लेता है उसके साधिक तेतीस सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। नपुंसकवेद आदिका कुछ कम दो छियासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य काल तक बन्ध नहीं होता, यह ओघमें घटित करके बतला आये हैं। इनका यह अन्तर यहाँ भी घटित हो जाता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान कहा है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तर कालका निषेध किया है। इनका कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे बन्ध होता है और यदि कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान हो, तो कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे बन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तैजसशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद एक समयके अन्तरसे या अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे मरण होकर देवपर्यायमें इनका बन्ध होने लगता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७२. णवुंस० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० बेसमं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि-णवुंस०-तिरिक्ख०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थवि०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं देसू०। सादा०-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। असादा०-पंचणोक०-अथिर-असुभ-अजस० उ० अणु० ओघं। अट्ठक०-तिण्णिआयु०-वेउव्वियछ०-मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० [उक्क०] अणु[2]० ओघं। देवायु० मणुसभंगो[3]। चदुजा०-आदाव-थावरादि०४ उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० पुव्वकोडी दे०। आहारदुगं उ० अणु० ओघं। [तेजा०-क०-पसत्थवण्ण४-अगु०-णिमि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं।] उज्जो० उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। तित्थ० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० उ० अंतो०।

५७२. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क और स्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषाय, तीन आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। देवायुका भङ्ग मनुष्यके समान है। चार जाति, आतप, और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम

१. ता० प्रतौ ए० बेसम० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः उच्चा० अणु० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः मणुसादिभंगो इति पाठः।

तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। यह अन्तर नपुंसकवेदीके बन जाता है और नपुंसकवेदकी कायस्थिति अनन्त काल है, अतः यह अन्तर ओघके समान कहा है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धि तीन आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा जो नारकी कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्दृष्टि रहता है उसके इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यहाँ सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तरका निषेध किया है। इसी प्रकार आगे जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अन्तरका निषेध किया है, उसका यही कारण जानना चाहिए। तथा इनके परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। असातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। कारण कि इनका एक समयके अन्तरसे और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करानेसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान बन जाता है और परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान बन जाता है। आठ कषाय आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर अलग-अलग जैसा ओघसे कहा है, उसके अविकलरूपसे यहाँ प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती; अतः यह भी ओघके समान कहा है। यद्यपि नपुंसकवेदकी कायस्थिति अनन्तकाल है पर देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयत जीवके होता है और देवायुका पूर्वकोटिके त्रिभागके प्रारम्भमें उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध होनेपर और फिर अन्तमें बन्ध होनेपर मनुष्योंके समान कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर घटित हो जाता है। इसलिए यहाँ देवायुके अनुभागबन्धका अन्तर मनुष्योंके समान कहा है। चार जाति आदिके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल ओघसे बतलाया है। वह यहाँ बन जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है। तथा नारकीके और नरकमें जानेके पूर्व और बादमें अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। औदारिकशरीर आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण ओघसे बतलाया है, वह यहाँ भी बन जाता है। कारण कि इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि देव नारकीके होता है, अतः यह ओघके समान कहा है। तथा सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चके इनका बन्ध नहीं होता। पर यहाँ अन्तर लाना है, अतः पूर्वकोटिके आयुवाले तिर्यञ्चको मिथ्यादृष्टि रख कर प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध करावे और कुछ कम पूर्वकोटि काल तक सम्यग्दृष्टि रखकर अबन्धक रखे, तो इस प्रकार इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तरकाल ओघसे कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, अतः ओघके समान कहा है। तैजसशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और नपुंसकवेदमें इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सम्भव नहीं है। कारण कि जो नपुंसकवेदी उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति करता है, वह यदि लौटकर इनका बन्ध करता है तो बीचमें अपगतवेदी होकर फिर नपुंसकवेदी होनेके पूर्व मरकर देव होता है तो नपुंसकवेदी नहीं रहता, अतः यहाँ इनके दोनों प्रकारके अन्तरका निषेध किया है। जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला नपुंसकवेदी मनुष्य मरकर दूसरे तीसरे नरकमें उत्पन्न होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७३. अवगदवे० सव्वपगदीणं उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० उक्क० अंतो० ।[1]

५७४. कोधे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-चदुआयु०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० अंतो० । अणु० ज० एग०, उ० बेसम० । णिद्दा-पचला-असादा०-णवणोक०-तिगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०४-तिण्णिआणु०-उप०-आदाव०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-अथिरादिछ०-णीचा० उ० अणु० ज० एग०, उ० अंतो[2]० । सादा०-देवगदि०४-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । आहारदुग० उ० अणु० णत्थि[3] अंतरं ।

उसके अन्तर्मुहूर्त काल तक इसका बन्ध नहीं होता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

५७३. अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले अपगतवेदीके अन्तिम समयमें सम्भव है और शेष तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें सम्भव है, अतः सबके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तर का निषेध किया है । तथा उपशान्तमोहमें इनका बन्ध नहीं होता और इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

५७४. क्रोधकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, चार आयु और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, नौ नोकषाय, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, उपघात, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सातावेदनीय, देवगतिचतुष्क, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम और द्वितीय दण्डकमें अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध

---

१. ता० प्रतौ णत्थि । अंत० अणु० ज० उ० अंतो० । ॐ अवगद० सव्वपगदीणं० उ० णत्थि अंत० अणु० उ० ज० अंतो० ॐ [ॐएतच्चिह्नान्तर्गतः पाठोऽधिकः] कोधे, आ० प्रतौ णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो०, ज० उक्क० अंतो०, कोधे इति पाठः । २. ता० प्रतौ णीचा० उ० अणु० ज० ए० उ० । अणु० ज० उ० (?) अंतो० इति पाठः । ३. आ० प्रतौ० उ० णत्थि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७५. माणे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-पण्णारसक०-पंचंत० [कोध०भंगो।] णवरि कोधसंजल० अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। मायाए पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-चोंद्दसक०-पंचंत० [कोध०भंगो।] णवरि कोध-माणसंज० अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। लोभे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-बारसक०-पंचंत० उ० ज० एग०, उ० अंतो०। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। णवरि चत्तारिसंज० अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। सेसाणं कोधभंगो।

कराके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। प्रथम दण्डकमें अन्य सब प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। मात्र चार आयुका अन्तर्मुहूर्त कालतक ही बन्ध होता है, फिर भी इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई अन्य सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। रहीं निद्रा और प्रचला दो प्रकृतियाँ सो क्रोध कषायसे उपशमश्रेणिपर चढ़े हुए जीवके इनकी बन्धव्युच्छित्ति कराकर कमसे कम एक समयतक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक उपशमश्रेणिमें रखकर मरण करावे तथा क्रोधकषायके साथ ही देवपर्यायमें उत्पन्न कराकर इनका बन्ध करावे। इस प्रकार यहाँ निद्रा और प्रचलाके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि तथा आहारकद्विकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और आहारकद्विकका बन्ध करनेवाला अप्रमत्तसंयत प्रमत्तसंयत होकर पुनः जबतक अप्रमत्तसंयत होकर आहारकद्विकका बन्ध करता है तबतक क्रोधकषाय बदल जाता है, अतः यहाँ आहारकद्विकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका भी निषेध किया है।

५७५. मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय और पाँच अन्तरायका भङ्ग क्रोधकषायके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोधसंज्वलनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मायाकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, चौदह कषाय और पाँच अन्तरायका भङ्ग क्रोधकषायके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध और मानसंज्वलनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग क्रोधके समान है।

विशेषार्थ—मानकषायमें क्रोधसंज्वलनकी, मायाकषायमें क्रोध और मान संज्वलनकी तथा लोभकषायमें चारों संज्वलनोंकी बन्धव्युच्छित्ति होकर इन कषायोंका सद्भाव बना रहता है, अतः कोई जीव इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद एक समयतक उपशमश्रेणिमें रहकर दूसरे समयमें विवक्षित कषायके साथ मरकर देव हो जावे या अन्तर्मुहूर्तकालतक उपशमश्रेणिमें रहकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७६. मदि-सुद० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०--भय०-दु०-अप्प-सत्थ०४–उप०-पचंत० उक्क० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० बेसम०। सादा०-पंचिंदि०-समचदु०--पर०-उस्सा०-पसत्थवि०-तस०४–थिरादिछ० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० एग०, उ० अंतो०। असादा०-छण्णोक०-अथिर-असुभ-अजस० उ० अणु० ओघं। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०--दूभग-दुस्सर--अणादें०--णीचा० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तिण्णिपलि० देसू०। तिण्णिआयु०-णिरयगदि-णिरयाणु० उक्क० अणु० ज० एग०, उ० अणंतका०। तिरिक्खायु० ओघं। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० ऍक्कत्तीसं० सादि०[1]। मणुसगदि०३ उ० णत्थि अंतरं। अणु० ओघं। देवगदि०४ उ० णत्थि[2] अंतरं। अणु० ओघं। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ [उक्क०] ओघं[3]। अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। ओरालि०--ओरालि०अंगो०--वज्जरि० उ० णत्थि अंतरं। अणु०

विवक्षित कषायके साथ मर कर देव हो जावे, तो विवक्षित कषायमें उन-उन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन क्रोधकषायके समान है, यह स्पष्ट ही है।

५७६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क और स्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, छह नोकषाय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। तीन आयु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चायुका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। मनुष्यगतित्रिकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट

१. ता० प्रतौ बेस० सादि०। पंचिं० इति पाठः। २. ता० प्रतौ देवगदि०४ णत्थि इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः थावरादि४ ओघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० एग०, उ० तिण्णिपलि० देसू० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० उ० अणु० णत्थि[1] अंतरं । उज्जो० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० एक्कत्तीसं० सादि० ।

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है ।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है । वह इन दोनों अज्ञानोंमें बन जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है । यहाँ सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । किन्तु ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । असातावेदनीय आदिका एक समयके अन्तरसे और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो यह सम्भव है, ओघसे भी यह अन्तर इतना ही उपलब्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान कहा है । परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ओघसे कहा है । यहाँ भी यह बन जाता है, अतः यह भी ओघके समान कहा है । नपुंसकवेद आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल ओघसे कहा है । वह यहाँ भी बन जाता है, अतः यह भी ओघके समान कहा है । तथा पर्याप्त भोगभूमियाके इनका बन्ध नहीं होता और यह काल कुछ कम तीन पल्य है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है । अनन्त काल तक तिर्यञ्च पर्यायमें रहते हुए तीन आयु आदिका बन्ध प्रारम्भ न भी हो, क्योंकि तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यता है और ये एक मात्र तिर्यञ्चायुका ही बन्ध करें । तथा कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है,अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है । इसी प्रकार तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल अनन्त काल घटित करना चाहिए । तथा इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वसे अधिक नहीं प्राप्त होता । कारण कि तिर्यञ्च पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर इतना ही है । ओघसे भी तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर इतना ही है, अतः यह प्ररूपणा ओघके समान की है । तिर्यञ्चगतिद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका ओघसे जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है । वह यहाँ बन जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है । तथा नौवें ग्रैवेयकमें इकतीस सागर काल तक और वहाँ जानेके पूर्व और बादमें अन्तर्मुहूर्त कालतक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है । मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए देव नारकीके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । ओघसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण घटित करके बतला आये हैं । यहाँ भी वह बन जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है । संयमके अभिमुख हुए जीवके देवगति चारका उत्कृष्ट अनु-

---

१. आ० प्रतौ उ० णत्थि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७७. विभंगे पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय--दु०--अप्प-सत्थ०४--उप०-पंचंत०- उ० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं[1]० देसू० । अणु० ज० एग०, उ० बेस० । सादा०--दुगदि[2]-पंचिंदि०-दोसरीर०-समचदु०--दोअंगो०--वज्जरि०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०--अप्पसत्थ०--तस०४--थिरादिछ०--उच्चा० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । असादा०-सत्तणोक०-अथिरादि०३ उँ[3]० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । अणु० ज० एग०, उ० अंतो० । णिरय-देवायु० मणजोगिभंगो । तिरिक्ख-मणुसायु० उ० ज० एग०, उ० अंतो० । अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं देसू० । णिरयगदि--तिण्णिजादि--णिरयाणु०-सुहुम-अपज्जत्त-साधा० उ० अणु० ज०

भागबन्ध होता है, अतः इसके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा ओघसे इनके अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है । वह यहाँ बन जानेसे ओघके समान कहा है । ओघसे चार जाति आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तर कहा है, वह यहाँ भी बन जाता है, अतः यह भी ओघके समान कहा है । तथा नरकमें और नरकमें जानेके पूर्व और निकलनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है । औदारिकशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए देव नारकीके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है । तथा पर्याप्त अवस्थामें भोगभूमिमें इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है । संयमके अभिमुख हुए जीवके तैजसशरीर आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है तथा ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सातवें नरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए नारकीके होता है, अतः इसके अन्तरका निषेध किया है । तथा इसका नौवें ग्रैवेयकमें और वहाँ जानेसे पूर्व और बादमें अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है ।

५७७. विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । सातावेदनीय, दो गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, दो शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । असातावेदनीय, सात नोकषाय और अस्थिर आदि तीन के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । नरकायु और देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है । नरकगति,

१. ता० प्रतौ पंचंत० उ० तेत्तीसं इति पाठः । २. ता० प्रतौ उ० बेस० सादि० । दुगदि इति पाठः । ३. आ० प्रतौ अथिरादिछ० उ० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए०, उ० अंतो० । तिरिक्खग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०--अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० असाद०भंगो। एइंदि०-आदाव-थावर० उ० ज० एग०, उ० बेसा० सादि० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । तेजा०-क०-पसत्थ०४–अगु०-णिमि० उ० अणु[1]० णत्थि अंतरं ।

५७८. आभि०–सुद०--ओधि० पंचणा०--छदंसणा०--सादासाद०--चदुसंज०-

तीन जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका भङ्ग असातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है। इसके प्रारम्भमें और अन्तमें पाँच ज्ञानावरण आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करानेपर इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर कहा है, यह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। इसी प्रकार तैजसशरीर आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर न कहनेका कारण जानना चाहिए। मात्र सातादण्डकमें मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए देव नारकीके जानना चाहिए। ये सब प्रकृतियाँ और असाता आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्रमसे तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त तिर्यञ्च और मनुष्यके तथा सर्वविशुद्ध मनुष्यके होता है और ऐसे जीवोंके विभङ्गज्ञानका काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल मनोयोगी जीवोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तिर्यञ्चों और मनुष्योंके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध देव और नारकियोंके भी सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। नरकगति आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चगति आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर असातावेदनीयके समान बन जानेसे वह उसके समान कहा है। ऐशान कल्प तक एकेन्द्रियजाति आदिका बन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

५७८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह

---

1. ता० प्रतौ णिमि० अणु० इति पाठः ।

पुरिस०–अरदि–सोग–भय–दु०–पंचिंदि०–तेजा०–क०–समचदु०–पसत्थापसत्थ०४–अगु०४–पसत्थ०–तस०४–थिराथिर–सुभासुभ–सुभग–सुस्सर–आदेंज्ज०–जस०–अजस०–णिमि०–तित्थ०–उच्चा०–पंचंत० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। अट्ठक० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे०। हस्स-रदि० उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि॰[1] सादि०। [अणुक्क०] ओघं। मणुसायु० उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि॰[2] सादि०। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं सादि०। देवायु० उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि० देसू०। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। मणुसगदिपंचग० उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी सादि० दोहि समएहि०। देवगदि०४–आहारदु० णत्थि अंतरं०। अणु० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि०।

दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय अधिक एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके और साता आदिका क्षपकश्रेणिमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकाल निषेध किया है। तथा इनमें जो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, यह तो स्पष्ट ही है। शेष रहीं यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ सो उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति होनेके बाद एक समय या अन्तर्मुहूर्त काल तक इन्हें उपशमश्रेणिमें रख कर एक समयवालेका मरण

---

१. ता० प्रतौ ए० छावट्ठि० इति पाठः। २. ता० प्रतौ उ० ज० ए० छावट्ठि, आ० प्रतौ उ० ए०, उ० छावट्ठि० इति पा।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

५७९. मणपज्ज० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पंचिंदि०-चदुसरीर-समचदु०-दोअंगो०-पसत्थापसत्थ०४--देवाणु०-अगु०४--पसत्थवि०-तस०४ -सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उ० णत्थि अंतरं। अणु०

कराके और अन्तर्मुहूर्तवालेको नीचे उतार कर और उनका बन्ध कराके इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ले आना चाहिए। आठ कषायोंका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा संयतासंयत और संयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम एक पूर्वकोटि होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। इन ज्ञानोंकी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हास्य और रतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर कहा है। अन्य जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर हो,वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका ओघके समान जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। देवके मनुष्यायुका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके, पूर्वकोटिके आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अनन्तर तेतीस सागरकी आयुवाला देव होकर आयुके अन्तमें पुनः मनुष्यायुका बन्ध करने पर मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है सो इसका कारण यह है कि सम्यक्त्वकी छियासठ सागरसे अधिक जो कायस्थिति बतलाई है, उससे कुछ पूर्वकोटियाँ ही ली गई हैं और ऐसा जीव नियमसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है, अतः उसका अन्तिम भव देव न होकर मनुष्य ही होगा। किन्तु इस भवमें आयुबन्ध सम्भव नहीं है, अतः इससे देव भवका अन्तर देकर पिछले मनुष्यभवमें देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराना होगा। विचार कर देखने पर यह कालछियासठ सागरसे कम होता है, अतः यहाँ देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है,यह स्पष्ट ही है। कारण कि प्रथम और तीसरे मनुष्य भवमें देवायुका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करानेसे और बीचमें तेतीस सागर काल तक देव पर्यायमें रखनेसे यह अन्तरकाल आ जाता है। एक पूर्वकोटि मनुष्य भवका और दो समय उत्कृष्ट अनुभागबन्धके इस प्रकार मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय अधिक एक पूर्वकोटि कहा है। देवगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होनेसे इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाने पर उतरते समय पुनः इनका बन्ध अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे होता है और यदि इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद जीव मर कर तेतीस सागरकी आयुवाला अहमिन्द्र हो जावे तो वहाँसे आने पर देवगतिचतुष्कका और संयम ग्रहण करने पर आहारकद्विकका बन्ध सम्भव है, मध्यमें नहीं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है।

५७९. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० उ० अंतो०। सादासाद०--अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०--अजस० णत्थि उ० अंतरं[2]। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। हस्स-रदि० उ० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी देसू०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। देवायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० पगदि०अंतरं। एवं संजदा०।

५८०. सामाइ०-छेदो० धुविगाणं उ० अणु० णत्थि अंतरं। सेसाणं मणपज्जव-भंगो। परिहार० सामाइगच्छेदा० भंगो। सुहुमसंप० सव्वाणं उ० अणु० णत्थि अंतरं। संजदासंजदे परिहार०भंगो। णवरि अप्पप्पणो पगदीओ णादव्वाओ।

मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध असंयमके अभिमुख हुए जीवके और सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनका उपशमश्रेणिसे उतरते समय अन्त-र्मुहूर्तके अन्तरसे बन्ध कराने पर इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और असातावेदनीय आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध असंयमके अभिमुख जीवके होता है, अतः इनके भी उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। कुछ कम पूर्वकोटिके प्रारम्भमें और अन्तमें हास्य और रतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव होनेसे इसका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा ये भी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर एक भवकी अपेक्षा ही घटित किया जा सकता है और प्रकृतिबन्धमें इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण बतलाया है। वही यहाँ दोनों बन्धोंका बन जाता है, अतः यह प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान कहा है। संयत जीवोंमें मनःपर्ययज्ञानी जीवोंसे इस अन्तर प्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए वह उनके समान कही है।

५८०. सामायिक और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानके समान है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सामायिक और छेदोपस्थानासंयत जीवोंके समान भङ्ग है। सूक्ष्म-साम्परायिकसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

१. ता० आ० प्रत्योः ज० ए०, उ० अंतो० इति पाठः। २. आ० प्रतौ णत्थि अंतरं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८१. असंजदे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०--अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थिदंडओ णवुंसगभंगो। सादा०-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ओघं। असादा०-पंचणोक०-अथिर--असुभ-अजस० उ० अणु० ओघं। तिण्णिआयु०-वेउव्वियछ०-मणुसगदिपंचग०[1] उ० अणु० ओघं। देवायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० अणंतका०। चदुजादि-आदाव-थावरादि४ उ० ओघं। अणु० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। तेजा०-क०--पसत्थव०४-अगु०-णिमि० उ० अणु० णत्थि अंतरं। उज्जो० उ० ओघं। अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। [तित्थय० उ० ओघं। अणु० ज० उ० अंतो०।] उच्चा० उ० अणु० ओघं।

विशेषार्थ—जो सामायिक और छेदोपस्थानासंयमके साथ उपशमश्रेणि पर चढ़ता है, उसके नौवेंके आगे संयम बदल जाता है, अतः यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसका अन्तर काल सम्भव नहीं यह स्पष्ट ही है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो भङ्ग मनःपर्ययज्ञानीके कहा है वह यहाँ सम्भव है, अतः यह मनःपर्ययज्ञानके समान कहा है। सूक्ष्म-साम्परायसंयममें प्रशस्त प्रकृतियोंका क्षपकश्रेणिमें और अप्रशस्त प्रकृतियोंका उतरते समय अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। परिहारविशुद्धिसंयतोंके सामायिक छेदोपस्थापना संयतोंके समान और संयतासंयतोंके परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार सब व्यवस्था बन जाती है, अतः यह कथन उनके समान कहा है। मात्र जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उसे ध्यानमें लेकर यह व्यवस्था बनानी चाहिए।

५८१. असंयतोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेददण्डकका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क और स्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तीन आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान

१. ता० प्रतौ मणुसगदि० (?) उ० इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः चदुसंघ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८२. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० ओघं। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। असंयतोंकी कायस्थिति अनन्त काल होनेसे उनके यह अन्तर बन जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है। परन्तु असंयतोंके इनका निरन्तर बन्ध होते रहनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। यहाँ स्त्रीवेददण्डकसे स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र ये १९ प्रकृतियाँ ली गई हैं। इनके तथा स्त्यानगृद्धि तीन आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर नपुंसकवेदी जीवोंके समान यहाँ भी बन जाता है, अतः यह इनके समान कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध यहाँ संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः यहाँ इसके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा ये सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका ओघके समान जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह ओघके समान कहा है। ओघसे असातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह यहाँ भी सम्भव है, अतः यह ओघके समान कहा है। इसी प्रकार आगे जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट या दोनोंका अन्तर ओघके समान कहा है वह देखकर घटित कर लेना चाहिए। देवायुका असंयतोंके एक समयके अन्तरसे और अनन्त कालके अन्तरसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इसके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। असंयतोंमें तेतीस सागर काल तक नारक पर्यायमें रहते हुए और वहाँसे आकर तथा जानेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक चार जाति आदिका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। तैजसशरीर आदि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। नारक सम्यग्दृष्टिके कुछ कम तेतीस सागर काल तक उद्योतका बन्ध नहीं होता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। संयमके अभिमुख हुए जीवके तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः ओघके समान इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा द्वितीय और तृतीय नरकमें जानेवाला जीव मिथ्यादृष्टि होकर इसका अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं करता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

५८२. चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है और अवधिदर्शनी जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—त्रसपर्याप्त प्रायः चक्षुदर्शनी होते हैं। मात्र द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीव चक्षुदर्शनी नहीं होते। अचक्षुदर्शन व्यापक मार्गणा है। इसमें एकेन्द्रियादि सभी जीव सम्मिलित हैं और अवधिदर्शन अवधिज्ञानका सहचर है, अतः चक्षुदर्शनी जीवोंका त्रसपर्याप्तकोंके समान, अचक्षुदर्शनी जीवोंका ओघके समान और अवधिदर्शनी जीवोंका अवधिज्ञानी जीवोंके समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८३. किण्णाए पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४–उप०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३–मिच्छ०—अणंताणुबं०४–णवुंस०—हुंडसंठा०—अप्पसत्थ०—दूभग—दुस्सर—अणादे०-णीचा० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०, अंतोमुहुत्तं लभदि पविसंतस्स। अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं देसू०। सादा०—पुरिस०—हस्स-रदि—पंचिं०-ओरालि०—समचदु०—ओरालि०अंगो०—वज्जरि०—पर०—उस्सा०—पसत्थ०—तस०४–थिरादिछ० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ०-अजस० उ० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। अणु० सादभंगो०। इत्थि०—तिरिक्ख-मणुस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उच्चा० उ० अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू०। णिरय-देवायु० उ० ज० ए०, उ० अंतो०। अणु० ज० ए०, उ० बेस०। तिरिक्ख-मणुसायु० उ० ज० ए०, उ० अंतो०। अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं देसू०। णिरयग०-देवगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव-थावरादि४

भङ्ग है,यह स्पष्ट ही है।

५८३. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है, क्योंकि प्रवेश करनेवालेके अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क और स्थिर आदि छहके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। स्त्रीवेद, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, चार संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। नरकगति, देवगति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट और

१. ता० आ० प्रत्योः चदुसंघ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। वेउव्वि०-वेउव्विअंगो० उ० ज० ए०, उ० अंतो०। अणु० ज० ए०, उ० बावीसं साग०। [तेजा०-क०-पसत्थवण्ण ४-अगु०-णिमि० उ० ज० एग०, उक्क० तेत्तीस देसू०। अणु० ज० एग०, उक्क० बेसम०।] उज्जो० उ० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं देसू०। अणु० ज० एग०, उ० तेत्तीसं देसू०। तित्थय० णिरयायुभंगो[1]।

अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नरकायुके समान है।

विशेषार्थ—कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, अतः यहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं, इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। कारण कि कृष्णलेश्याके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके इतना अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका अविरत सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता है। अब किसी कृष्णलेश्यावालेने इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके सम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्तर्मुहूर्तमें पुनः मिथ्यादृष्टि होकर इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया तो इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यहाँ प्रवेश करनेवालेके अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, यह वचन कहा है। कृष्णलेश्यामें सम्यक्त्वका काल कुछ कम तेतीस सागर है। अतः यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहनेका यही कारण है। मात्र यहाँ सम्यग्दृष्टिके प्रारम्भमें और अन्तमें ही इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कराके यह अन्तरकाल लाना चाहिए। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। और इसी कारण असातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होनेसे वह सातावेदनीयके समान कहा है। स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अपने स्वामित्वके अनुसार नरकमें ही होता है, इसलिए तो इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यद्यपि स्त्रीवेद, चार संस्थान और पाँच संहननका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं, पर नरकके सन्मुख कृष्णलेश्यावालेके इनका बन्ध नहीं होता, अतः यह कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रका और सम्यग्दृष्टिके शेषका बन्ध न होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें कृष्णलेश्याका काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और

1. ता० प्रतौ णिरयभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८४. णील-काऊणं पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्था-पसत्थ०४-अगु०-उप०णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू०। अणु० ज० ए०, उ० बेस०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थिवे०-णवुंस०-तिरिक्ख०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०--उज्जो०--अप्पसत्थ०--दूभग०--दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० अणु० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू०। सादासाद०-पंचणोक०-मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-पर०-उस्सा०--पसत्थवि०--तस०४-थिराथिर-सुभासुभ--सुभग--सुस्सर--आदें०--जस०-

---

मनुष्यके ही होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध नरकमें भी होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। नरकगति आदिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्यके होता है, तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसी प्रकार वैक्रियिकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित कर लेना चाहिए। जो जीव सातवें नरकसे निकलेगा वह नियमसे मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च होता है, अतः वह पहिले अन्तर्मुहूर्तमें वैक्रियिकद्विकका बन्ध नहीं कर सकता है और उसके बाद उसके लेश्या बदल जायेगी। किन्तु छठें नरकसे सम्यक्त्व सहित भी निकल सकता है और सम्यक्त्व सहित मनुष्य अपर्याप्त कालमें भी वैक्रियिकद्विकका बन्ध करेगा, अतः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर कहा है। तैजसशरीर आदिका सम्यग्दृष्टि नारकीके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है और ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है और इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। सातवें नरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा सम्यग्दृष्टिके इसका बन्ध नहीं होता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। कृष्णलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्योंके ही होता है, अतः इसके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नरकायुके समान घटित हो जानेसे वह उसके समान कहा है।

५८४. नील और कापोतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजस०-उच्चा० उ० णाणा०भंगो। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। चदुआयु०-वेउव्विय-छ०-चदुजादि--आदाव--थावरादि०४--तित्थ० किण्णभंगो। णवरि काउ० तित्थ० णिरयोघं।

५८५. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-ओरालि०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० बे साग० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि०-णवुंस-तिरिक्ख-एइंदि०-पंचसंठा०-पंच-संघ०-तिरिक्खाणु०-आदावुज्जो०-अप्पसत्थ० थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० उ० अणु० ज० एग०, उ० बे साग० सादि०। सादा०-पंचिंदि०-समचदु०-पसत्थ०-तस०-थिरादिछ०-उच्चा० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। असादा०पंच-

---

सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयु, वैक्रियिक छह, चार जाति, आतप, स्थावर आदि चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि कापोतलेश्यामें तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नारकीके होता है, अतः यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर कहा है। तथा दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी इतना ही कहा है। यद्यपि उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तीन गतिके जीवके होता है, पर नरकके सन्मुख जीवके नहीं होता। अतः इसे भी दूसरे दण्डकमें परिगणित किया है। साता आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नारकीके ही होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है और ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। चार आयु आदिका कृष्णलेश्यामें जैसा स्पष्टीकरण किया है, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। उससे यहाँ कोई विशेषता नहीं है, अतः यह कृष्णलेश्याके समान कहा है। मात्र सामान्य नारकियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तर कहा है वह कापोतलेश्यामें ही घटित होता है, अतः कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान कहा है।

५८५. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, अप्रशस्त वर्ण चार, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थिर आदि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, पाँच नोकषाय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णोक०-मणुस०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-अथिर-असुभ-अजस० उ० ज० ए०, उ० बे साग० सादि० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । तिरिक्ख-मणुसायु० देवभंगो। देवायु० उ० ज० ए०, उ० अंतो० । अणु० ज० ए०, उ० बेसम० । देवगदि०४ उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० । तेजा०-क०-आहार०दुग-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० उ० णत्थि अंतरं । अणु० एग० । पम्माए पढमदंडए[2] ओरालियअंगोवंगो भाणिदव्वो । पंचिंदि०-तस० वेउव्वि० भंगो[3] । सेसं तेउ०भंगो ।

मनुष्यगति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है । देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर-काल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । तैजसशरीर, कार्मणशरीर, आहारकद्विक, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय है । पद्मलेश्यामें प्रथम दण्डकमें औदारिक आङ्गोपाङ्ग कहलाना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय जाति और त्रसका भङ्ग वैक्रियिकशरीरके समान है । तथा शेष भङ्ग पीतलेश्याके समान है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डक और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध पीतलेश्याके प्रारम्भमें और अन्तमें हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनु-भागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है, तथा स्त्यानगृद्धि आदिका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, अतः आदिमें और अन्तमें मिथ्यादृष्टि रखकर इनका बन्ध करानेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भी उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर बन जाता है । सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध ऐसे अप्रमत्तसंयतके होता है जो आगे बढ़ रहा है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धके अन्तरका निषेध किया है । तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । इसी प्रकार असाता-वेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए । तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर ज्ञानावरणके समान घटित कर लेना चाहिए । देवोंके तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना घटित करके बतला आये हैं । वह यहाँ भी बन जाता है, अतः देवोंके समान कहा है । देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयतके होता है, और यहाँ पीतलेश्याका काल अन्तमुहूर्त है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । देवगतिचारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी सातावेदनीयके समान है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है । तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्यके साधिक

१. आ० प्रतौ उ० बेस० साग० तेजाक० इति पाठः । २. आ० प्रतौ पढमदंडओ इति पाठः । ३. ता० प्रतौ तेऊभंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८६. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०--अथिर--असुभ--अजस०--पंचंत० उ० ज० ए०, उ० अट्ठारससा० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणु०४--इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर--अणादें०--णीचा० उ० ज० ए०, उ० अट्ठारससा० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० देसू०। सादा०--पंचिंदि०-तेजा०--क०--समचदु०--पसत्थ०४--अगु०३--पसत्थवि०--तस०४--थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। मणुसायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं देसू०। देवायु० उ० ज० ए०, उक० अंतो°[1]। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-मणुसायु० उ० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं देसू०। अणु० ज० ए०, उ० बेस०। देवगदि०४ उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० अंतो०,

दो सागरके अन्तरसे इनका बन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। देवगतिके समान तैजसशरीर आदिके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धका स्वामी है, अतः इनके भी उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा इनका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धका यह काल एक समय है,अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। पद्मलेश्यामें औदारिकशरीरके साथ औदारिक आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध होता है, क्योंकि इसके एकेन्द्रियजाति और स्थावरका बन्ध नहीं होता, अतः यहाँ औदारिक आङ्गोपाङ्गको प्रथम दण्डकमें परिगणित करनेको कहा है। तथा पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसका भी नियमसे बन्ध होता है, अतः इनका अन्तर वैक्रियिकशरीरके समान प्राप्त होनेसे उसके साथ इनकी परिगणना की है। शेष स्पष्ट ही है।

५८६. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। मनुष्यगति औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका

1. आ० प्रतौ० ए० अंतो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० तेंत्तीसं० सादि० । आहारदुग० उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० उ० अंतो०। वज्जरि० उ० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं [देसू०]। [अणु०] ज० ए०, उ० अंतो०[2]।

जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वज्रर्षभनाराच संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादिका व स्त्यानगृद्धि तीन आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। तथा प्रथम दण्डकोक्त पाँच ज्ञानावरणादिका उपशमश्रेणिकी अपेक्षा और असातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके परावर्तमान होनेके कारण इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका अन्तिम ग्रैवेयक तक ही बन्ध होता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। यहाँ प्रारम्भमें और अन्तमें बन्ध कराके और मध्यमें अबन्धक रखकर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। सातावेदनीय आदिका क्षपक श्रेणिमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा इन सब प्रकृतियोंका उपशमश्रेणिमें अपनी बन्धव्युच्छित्तिके बाद मरणकी अपेक्षा एक समय और वैसे अन्तर्मुहूर्त अन्तरकाल उपलब्ध होना सम्भव होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध देवोंके होता है और वहाँ आयुबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है, अतः यहाँ मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। देवायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मनुष्योंके होता है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सर्वार्थसिद्धिके देवके मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध आयुके प्रारम्भमें और अन्तमें हो यह सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकका क्षपकश्रेणिमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इसके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा यहाँ मनुष्योंमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे इनका बन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। किन्तु यहाँ आहारकद्विकका अन्तर्मुहूर्तके बाद ही पुनः बन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगतिके समान वज्रर्षभनाराच संहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिए। तथा वज्रर्षभनाराचसंहनन सप्रतिपक्ष प्रकृति है, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

---

१. आ० प्रतौ ज० ए० उ० अंतो० इति पाठः। २. ता० प्रतौ तेत्तीसं। दोअ (आ) णु० ज० ए० उ० अंतो०, आ० प्रतौ तेत्तीसं दोआणु० उ० ज० ए० अंतो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८७. भवसिद्धि० ओघं० । अब्भवसि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०--भय-दु०--तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०-उप०-णिमि०--पंचंत० उ० ज० ए०, उ० अणंतका० । अणु० ज० ए०, उ० बेसम० । सादासाद०-छण्णोक०-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४--थिराथिर-सुभासुभ--सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । णवुंस०-ओरालि०--पंचसंठा०--ओरालि०अंगो०--छस्संघ०--अप्पस०--दूभग--दुस्सर--अणादें०--णीचा० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० दे० । तिण्णिआयु०-वेउव्वियछ० उक्क० अणु० ज० ए०, उ० अणंतका० । तिरिक्खायु० उ० अणु० ओघं । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उ णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० एँक्कत्तीसं० सादि० । मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ उ० णाणा०भंगो । अणु० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० ।

५८७. भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है । अभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, छह नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । नपुंसकवेद, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । तीन आयु और वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—भव्योंमें ओघके समान व्यवस्था बन जाती है, अतः यह ओघके समान कहा है । अभव्योंमें ओघके समान अनन्त कालके अन्तरसे ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध

१. ता० आ० प्रत्योः सत्तणोक० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८८. खइग० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्प-सत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। सादादिदंडओ ओघो। अट्ठक० उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघो। मणुसायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० छम्मासं देसू०। देवायु० उ० अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडितिभागा देसू०। मणुसगदिपंचग० उ० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। देवगदि०४-आहारदु० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि०।

सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। एक तिर्यञ्चायुको छोड़कर अन्य सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका यह अन्तर प्राप्त होता है, अतः वह ज्ञानावरणके समान कहा है। सातावेदनीय आदि सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नपुंसकवेद आदिका भोगभूमिमें पर्याप्त अवस्थामें बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। एकेन्द्रिय अवस्थामें अनन्तकाल तक तीन आयु और वैक्रियिक छहका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल तथा अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण ओघसे कह आये हैं। वह यहाँ सम्भव होनेसे ओघके समान कहा है। नौवें ग्रैवेयकमें और अन्तर्मुहूर्त काल तक आगे पीछे तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतित्रिकका बन्ध नहीं होता और इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। चार जाति आदिका नरकमें और अन्तर्मुहूर्त तक आगे पीछे बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है।

५८८. क्षायिकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातादिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। देवगति चतुष्क और आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—क्षायिकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। इसके प्रारम्भमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८६. वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०--पुरिस०--भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० उ० अणु० णत्थि अंतरं। सादा०-थिर-सुभ-जस० उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि० देसू० सत्थाणे। अथवा णत्थि अंतरं। यदि दंसणमोहक्खवगस्स उक्कस्ससामित्ते[1] णत्थि अंतरं। अधापवत्तसंजदस्स कीरदि तदो छावट्ठि सा० देसू०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। असादा०-अरदि०-सोग०-अथिर-असुभ-अजस० उ० णत्थि अंतरं। अणु० सादभंगो। अट्ठक० उ० णत्थि अंतरं। अणु० ओघं। णवरि ज०

और अन्तमें यथा सम्भव पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो और बीचमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। अन्य जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र देवगति आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका यह अन्तर लाते समय बीचमें उनका बन्ध न करावे। उसमें भी देवगतिचतुष्क और आहारकद्विककी उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्ति करावे और अन्तर्मुहूर्तकालतक वहाँ रखकर इनका बन्ध होनेके पहले मरण करावे। तथा तेतीस सागर आयु तक देवपर्यायमें रखकर देवगतिचतुष्कका तो मनुष्य होनेके प्रथम समयसे बन्ध करावे और आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत होनेपर बन्ध करावे। यहाँ भी अधिकसे अधिक काल बाद संयम धारण करावे। पाँच ज्ञानावरणादिका उपशमश्रेणिमें कमसे कम एक समयतक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्ततक बन्ध न होनेसे तथा असातावेदनीय आदिका इसके पूर्व बन्ध न होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। किन्तु जिसने असातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियोंकी छठे गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति की है, उसे अप्रमत्तसंयत होनेके बाद उपशमश्रेणिमें ले जाकर पुनः उतारकर इनका बन्ध करावे और जघन्य अन्तर एक समय परावर्तन द्वारा प्राप्त करे। सातादण्डकमें सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और तीर्थङ्कर ये प्रकृतियाँ ली गई हैं। इनका ओघसे जो अन्तर कहा है, वह यहाँ बन जानेसे यह ओघके समान कहा है। आठ कषायोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका ओघसे जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। वह यहाँ भी घटित होता है, अतः यह ओघके समान कहा है। यहाँ मनुष्यायुका देवोंके और देवायुका मनुष्योंके बन्ध होता है। अतः मूलमें जो अन्तर कहा है, उसकी स्वामित्वके अनुसार संगति बिठा लेनी चाहिए। सर्वार्थसिद्धिमें प्रारम्भमें और अन्तमें मनुष्यगतिपञ्चकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है।

५८६. वेदकसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचार, उपघात और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर स्वस्थानमें कुछ कम छियासठ सागर है। अथवा अन्तर काल नहीं है। यदि दर्शनमोहनीयके क्षपकके उत्कृष्ट स्वामित्व करते हैं तो अन्तरकाल नहीं है। और अधःप्रवृत्तके करते हैं तो कुछ कम छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध का भङ्ग सातावेदनीयके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

१. ता० प्रतौ उक्कस्ससामित्तं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो० । हस्स-रदि उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि० दे० । अणु० ज० ए०, उ० अंतो० । दोआयु० उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि० दे० । अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । मणुसगदिपंचग० उ० ज० ए०, उ० छावट्ठि० दे० । अणु० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी सादि० । देवगदि०४–आहारदु० उ० मणुसगदिभंगो । अणु० ज० ए०, उ० तेत्तीसं सा० । णवरि आहारदुगं तेत्तीसं सादि० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४–अगु०३–पसत्थ०-तस०४–सुभग–सुस्सर–आदे०–णिमि०–तित्थ०–उच्चा० उ० णत्थि अंतरं । अथवा तेत्तीसं० सादि०, छावट्ठि० देसू० । अणु० ए०[1] । अथवा ज० ए०, उ० बेसम० ।

अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विकका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अथवा साधिक तेतीस सागर और कुछ कम छियासठ सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अथवा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वमें ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। वेदकसम्यक्त्वके प्रारम्भमें और अन्तमें सातादिकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर कहा है। अन्य जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर कहा है, वह भी इसी प्रकार घटित करना चाहिए। किन्तु यह अन्तर स्वस्थान की अपेक्षा कहा है। अर्थात् स्वस्थान अधःप्रवृत्तसंयत यदि उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो ही जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर बनता है। और यदि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला उत्कृष्ट स्वामित्व करता है तो इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। असातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके अन्तिम समयमें होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा परा-

---

1. ता० आ० प्रत्योः छावट्ठि० दो आयु० ए० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६०. उवसम० अट्ठक०-देवगदि०४—आहारदु० उ० णत्थि० अंतरं। [अणु० ज० उ० अंतो०। हस्स-रदि० उ०] अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। मणुसगदिपंचग० उ० ज० ए०, उ० अंतो०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। सेसाणं उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०।

वर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरके निषेधका यही कारण है जो असातावेदनीयका कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान देखकर यह ओघके समान कहा है। मात्र यहाँ आठ कषायोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय सम्भव न होकर अन्तर्मुहूर्त है, अतः यह अलगसे कहा है। इसका कारण यह है कि ओघसे इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सम्भव होनेसे ध्रुवबन्धिनी होने पर भी इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय बन गया था पर यहाँ उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर सम्भव नहीं है, इसलिए संयतासंयत और संयत गुणस्थानका जघन्य काल ही यहाँ जघन्य अन्तर समझना चाहिए। हास्य और रति परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। देवायुका मनुष्योंके और मनुष्यायुका देवोंके बन्ध होता है और दोबार प्रत्येक आयुके बन्धमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है, अतः दोनों आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरका स्पष्टीकरण हम आभिनिबोधिक मार्गणामें कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ कर लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार साधिक पूर्वकोटि अन्तरकाल घटित हो, वैसा करना चाहिए। देवगति चतुष्क और आहारकद्विकका देवोंके बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर कहा है। परन्तु आहारकद्विकका संयम की प्राप्तिके पूर्व मनुष्योंके भी बन्ध नहीं होता, अतः यह साधिक तेतीस सागर कहा है। दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके अभिमुख हुए जीवके पञ्चेन्द्रियजाति आदिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। और यदि स्वस्थानमें इनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मानते हैं, तो उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पञ्चेन्द्रियजाति आदिका कुछ कम छियासठ सागर और तीर्थङ्कर प्रकृतिका साधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका काल एक समय मानने पर इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर एक समय प्राप्त होता है और जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय मानने पर जघन्य अन्तर एक समय उत्कृष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है सो विचार कर आगमके अनुसार व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

५६०. उपशमसम्यक्त्वमें आठ कषाय, देवगतिचतुष्क और आहारकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य व रतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—उपशमसम्यक्त्वमें मनुष्यगतिपञ्चकका सर्वविशुद्ध देव नारकीके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं बनता। कारण स्वामित्वको देखकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६१. सासणे पंचणा०--णवदंसणा०--सोलसक०--भय-दु०-तिगदि-पंचिंदि०-चदुसरीर०--समदु०--दोअंगो०--वज्जरि०--पसत्थापसत्थ०४--तिण्णिआणु०--अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-णीचुच्चा०-पंचंत० उ० अणु० णत्थि अंतरं। तिण्णिआउ० उ० ज० ए०, [उ० अंतो०। अणु० ज० ए०] उ० बेसम०। हस्स-रदि० उ० अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसाणं उ० णत्थि अंतरं। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०। अथवा सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दु०-तिण्णिआउ०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० अंतो०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। सेसाणं उ० अणु० ज० ए०, उ० अंतो०।

५६२. सम्मामि० धुविगाणं उ० अणु० णत्थि अंतरं। सेसाणं सासण०भंगो।

जान लेना चाहिए। तथा प्रथम दण्डक व मनुष्यगतिपञ्चकको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अलग-अलग कारणसे बन जाता है। कारणका खुलासा प्रकृतिको देखकर कर लेना चाहिए।

५६१. सासादनसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तीन आयुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अथवा सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन आयु, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ सासादनमें पहले तीन आयु और हास्य-रतिको छोड़कर शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध ऐसे परिणामोंसे और ऐसे समयमें मानकर अन्तरका निर्देश किया है जिससे उनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ही सम्भव नहीं। ऐसी अवस्थामें जो ध्रुवबन्धिनी हैं, उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका तो अन्तर बनता ही नहीं। हाँ, जो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, उनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका इस कारणसे अवश्य ही अन्तर बन जाता है, अतः वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होनेसे उक्त प्रमाण बतलाया है। इसके बाद विकल्परूपसे सब प्रकृतियोंका जो अन्तर कहा है, वह पहले निर्दिष्ट स्वामित्वको ध्यानमें रख कर कहा है। शेष स्पष्ट ही है।

५६२. सम्यग्मिथ्यात्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। मिथ्यादृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादिट्ठी० मदिभंगो[1]। सण्णी० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णी० धुविगाणं उ० ज० ए०, उ० अणंतका०। अणु० ज० ए०, उ० बेसम०। चदुआउ०-वेउव्वियछ०-मणुस०३ तिरिक्खोघो। सेसाणं उ० ज० ए०, उ० अणंतका०। अणु० ज० ए०, उ० अंतो०।

५६३. आहारगे पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उ० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखें०। अणु० ओघं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-इत्थि० उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघं। सादादिदंडओ ओघो। अट्ठकसा० उ० णाणा०भंगो। अणुक्कस्सं ओघं। णवुंसगदंडओ उ० णाणा०भंगो। अणु० ओघं। तिण्णिआयु[2]०-णिरय-मणुस०-

---

जीवोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। संज्ञी जीवोंका पञ्चेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ अप्रशस्त ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके और प्रशस्त ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष परावर्तमान प्रकृतियोंका जैसा सासादनमें अन्तरकाल कहा है, वैसा यहाँ भी बन जाता है, अतः यह उसके समान कहा है। मत्यज्ञानी मुख्यरूपसे मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अतः मिथ्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान बन जानेसे उनके समान कहा है। संज्ञियोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी मुख्यता है, अतः संज्ञियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान कहा है। असंज्ञियोंकी कायस्थिति अनन्तकाल है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। मात्र चार आयु आदिके भङ्गको सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहनेका कारण भिन्न है सो जान कर समझ लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५६३. आहारकोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डक ओघके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका भङ्ग ओघके समान है। नपुंसकवेददण्डकके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तीन आयु, नरकगति, मनुष्यगति और दो

---

१. ता० प्रतौ सेसाणं मिच्छादिट्ठिमदिभंगो इति पाठः। २. ता० प्रतौ भंगो तिण्णिआयु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोआणु० उ० अणु० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखें० । तिरिक्खाउ० उ० णाणा०-भंगो । अणु० ओघं । देवगदि०४ उ० णत्थि अंतरं । अणु० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखें० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० उ० णाणा०भंगो । अणु० ओघं । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ उ० णाणा०भंगो । अणु० ओघं । उज्जो० उ० ज० अंतो०, उ० अंगुल० असं० । अणु० ओघं ।

एवमुक्कस्समंतरं समत्तं ।

आनुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। देवगति चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है।

विशेषार्थ—आहारकोंकी कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसके प्रारम्भमें और अन्तमें ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आगे जिन प्रकृतियोंका यह अन्तर कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्रीवेद आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर यहाँ भी बन जाता है, अतः यह ओघके समान कहा है। सातादिदण्डक, आठ कषाय और नपुंसकवेददण्डकका भी जो अन्तर ओघके समान कहा है, वह इसी प्रकार ओघके अनुसार घटित कर लेना चाहिए। तिर्यञ्चायुका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक सौ सागर-पृथक्त्वके अन्तरसे आहारकके अवश्य ही होता है। ओघसे यह अन्तर इतना ही है, अतः यह भी ओघके समान कहा है। देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, अतः इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा आहारकके इनका बन्ध अङ्गुलके असंख्यातवें भाग काल तक न हो यह सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। आहारकके औदारिकशरीर आदिका ओघके समान उत्कृष्टसे साधिक तीन पल्य तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान कहा है। इसी प्रकार यहाँ चार जाति आदिका ओघके समान अधिकसे अधिक एकसौ पचासी सागर तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान कहा है। उद्योतका सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, अतः इसके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और इसका उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। इसका अधिकसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर तक बन्ध नहीं होता। ओघसे इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर इतना ही है। अतः यह भी ओघके समान कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर समाप्त हुआ।

---

१. ता प्रतौ वज्जरि० णाणा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६४. जह० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०--अप्पसत्थ०४--उप०--तित्थ०--पंचंत० ज० अणुभागं० केवचि० ? णत्थि अंतरं। अज० ज० एग०, णिद्दा-पचला० ज० अंतो०, उ० अंतो०। थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० ज० अंतो०, उ० बेछावट्ठि० देसू०। सादासाद०-समचदु०-पसत्थ०-थिराथिर--सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। अट्ठक० ज० ज० अंतो०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी देसू०। इत्थिवे० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० बेछावट्ठि० देसू०। णवुंस० ज० इत्थि०भंगो। अज० अणु०भंगो। अरदि-सोग० ज० ज० ए०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। तिण्णिआयु०-वेउव्वि०छ० ज० अज० ज० ए०, उ० अणंतका०। तिरिक्खाउ० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। अज० ज० ए०, उ० सागरोवमसदपुधत्तं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु[3]० ज० ज०

५६४. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका कितना अन्तर है ? अन्तर नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, निद्रा और प्रचलाका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन आयु और वैक्रियिक छहके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य

१. ता० प्रतौ पंचंत० अणुभाग० इति पाठः। २. आ० प्रतौ अज० ज० सागरो० इति पाठः। ३. ता० प्रतौ पुधत्तं। तिरिक्खाणु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उ० अद्धपोंग्गल० । अज० ज० ए०, उ० तेवट्ठिसागरोवमसदं । मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० अज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । चदुजादि-थावरादि०४ ज० ज० ए[1]०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० ज० ए०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं । पंचिंदि०--तेजा०-क०--पसत्थवण्ण०४--अगु०३--तस०४--णिमि० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । ओरालि०-ओरालि०अंगो० ज० ज० ए०, उ० अणंतकाल० । अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० सादि० । आहारदुग० ज० अज० ज० अंतो०, उ० अद्धपोंग्गल० । पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पस०-दूभग-दुस्सर-अणादें० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० अणु०भंगो । वज्जरि० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० सादि० । आदाव० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं[3]० । उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० तेवट्ठि-

अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है । तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । चार जाति और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है । पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है । आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है । आतपके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है । उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ

१. ता० प्रतौ थावरादि४ ज० ए० इति पाठः । २. आ० प्रतौ अंगो० ज० ज० ए, उ० तिण्णि इति पाठः । ३. ता० आ० प्रत्योः साग० पंचसदं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागरोवमसदं । णीचा० ज० ज० अंतो०, उ० अद्धपोंग्गल० । अज० ज० ए०, उ० बेछावट्टि० सादि० तिण्णिपलिदो० देसू० ।

सागर है । नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छियासठ सागर है ।

विशेषार्थ—तीर्थङ्करके सिवा यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें और तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त मनुष्यके अन्तिम समयमें होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा उपशमश्रेणिमें अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके बाद एक समयके लिए इनका अबन्धक होकर मरकर देव होनेपर पुनः इनका बन्ध होने लगता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है । मात्र निद्रा और प्रचलाकी उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्ति होने पर अन्तर्मुहूर्तकालतक मरण नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा इन सबके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है । संयमके अभिमुख हुए मनुष्यके मिथ्यात्व आदिका जघन्य अनुभागबन्ध होता है और संयमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है । तथा मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है । सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है और ऐसे परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे होते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है । तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । आगे भी ओघ और आदेशसे जहाँ जो प्रकृतियाँ हों, उनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए । क्योंकि परावर्तमान प्रकृतियोंका कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तकालके अन्तरसे नियमसे बन्ध होता है । यद्यपि समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, सुस्वर और आदेयका मिश्रगुणस्थानसे आगे नियमसे बन्ध होता है और वहाँ ये परावर्तमान नहीं रहतीं, फिर भी उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति होने पर वहाँ भी मरणकी अपेक्षा एक समय और आरोहण-अवरोहणकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त तक इनका बन्धाभाव देखा जाता है, इसलिए इस दृष्टिसे भी इनका यही अन्तर प्राप्त होता है । संयमके अभिमुख हुए जीवके अपनी-अपनी व्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें मध्यकी आठ कषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है और संयमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है । तथा संयमासंयम और संयमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है । स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है और इस पर्यायका

१. आ० प्रतौ खीचा० ज० अंतो० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, अतः स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। यहाँ जघन्य अनुभागबन्धके बाद एक समयतक अजघन्य अनुभागबन्ध हो कर पुनः जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है,इतना विशेष जानना चाहिए। तथा आगे भी जहाँ जिस प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है,वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा इसी प्रकार अजघन्य अनुभागबन्धका भी जघन्य अन्तर एक समय ले आना चाहिए। मात्र जहाँ कुछ विशेषता होगी,उसका हम स्वयं स्पष्टीकरण करेंगे। जहाँ विशेषता न होगी,उसे स्पष्टीकरण किये बिना छोड़ते जावेंगे। स्त्रीवेदके अजघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरकालका खुलासा स्त्यानगृद्धि तीनके समान है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी स्त्रीवेदके समान है, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर स्त्रीवेदके समान कहा है। तथा नपुंसकवेदका अधिकसे अधिक बन्ध तीन पल्य अधिक कुछ कम दो छियासठ सागर काल तक नहीं होता, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण बतला आये हैं। यह अन्तर यहाँ भी बन जाता है, अतः यह अनुत्कृष्टके समान कहा है। अरति और शोकका जघन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तसंयत जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल अनन्त है। इतने काल तक इस जीवके तीन आयु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। तिर्यञ्चायुका जघन्य अनुभागबन्ध अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे नियमसे होता है, क्योंकि अनुभागबन्धके योग्य परिणाम ही इतने हैं, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है और तिर्यञ्चायुका बन्ध अधिकसे अधिक सौ सागर पृथक्त्व कालके अन्तरसे नियमसे होता है, क्योंकि यदि कोई जीव निरन्तर अन्य तीन गतियोंमें परिभ्रमण करता है,तो वह उन गतियोंमें अधिकसे अधिक इतने काल तक ही रहता है उसके बाद वह नियमसे तिर्यञ्च होता है,ऐसा नियम है, अतः तिर्यञ्चायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगतिद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवीं पृथिवीका नारकी करता है, यतः पुनः इस अवस्थाके उत्पन्न होनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और उस अवस्थाके पुनः उत्पन्न होनेमें अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल लगता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा अधिकसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर कहा है। मनुष्यगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतिके जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करते हैं, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और असंख्यात लोकप्रमाण काल तक अग्नि और वायुकायिक जीवोंके इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनके जघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरका स्पष्टीकरण पाँच संस्थान आदिके अन्तरके स्पष्टीकरणके समय करेंगे। चार जाति और स्थावर आदि चारका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है और ऐसे परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे होते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा इनका बन्ध अधिकसे अधिक एकसौ पचासी सागर तक नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागबन्ध चारों गतिके जीव संक्लेश परिणामोंसे करते हैं। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी हो सकते हैं और अनन्त कालके अन्तरसे भी हो सकते हैं, अतः इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। इसी प्रकार औदारिक शरीरद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल जानना चाहिए। इन प्रकृतियोंका कमसे कम एक समय तक बन्ध नहीं होता और जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है, उसके साधिक तीन पल्य तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तीन पल्य कहा है। आहारकद्विक का कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनके अन्तरसे बन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। पाँच संस्थान आदि प्रकृतियोंका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। यहाँ एक बात अवश्य ही विचारणीय है कि पाँच संस्थान आदिका जघन्य अनुभागबन्ध चारों गतिका संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करता है, ऐसा स्वामित्व प्ररूपणासे ज्ञात होता है और पञ्चेन्द्रिय पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल अर्थात् असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण क्यों नहीं कहा है? जो प्रश्न इन प्रकृतियोंके इस अन्तरके विषयमें उठता है, वही प्रश्न मनुष्यगतिद्विक, वज्रर्षभनाराच संहनन और उच्चगोत्रके विषयमें भी उठता है। साधारणतः यह समाधान किया जा सकता है कि अनुभागबन्धके योग्य कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, इसलिए यह अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। किन्तु यह उत्तर तो तब सम्भव था, जब इस अन्तरमें पर्यायकी मुख्यता न होती और परिणामोंकी मुख्यता होती। ऐसा विदित होता है कि इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वके निर्देशमें या तो कुछ गड़बड़ है या फिर इस विषयमें दो सम्प्रदाय रहे हैं, अतएव एक सम्प्रदायका संग्रह स्वामित्व अनुयोगद्वारमें किया है और दूसरा यहाँ अन्तर प्रकरणमें उल्लिखित किया है। आगे इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका परिमाण अनन्त बतलाया है। यह तभी सम्भव है जब एकेन्द्रियोंको भी इनके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामी माना जावे। इससे भी हमारे कथनकी पुष्टि होती है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है, यह स्पष्ट ही है। वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य अनुभागबन्ध का अन्तर पाँच संस्थान आदिके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा इसके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर जिस प्रकार औदारिकशरीरके अजघन्य अनुभागबन्ध का अन्तर घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। आतपका जघन्य अनुभागबन्ध, देव और उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध देव और नारकी करते हैं। इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। तथा आतपका १८५ सागर तक और उद्योतका १६३ सागर तक बन्ध न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे १८५ और १६३ सागर कहा है। नीचगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी करता है। यह अवस्था कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके अन्तरसे प्राप्त होती है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा जो उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ है, उसके वहाँ कुछ कम तीन पल्य तक और दो छियासठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९५. णिरएसु धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०, उ० बेसम० । थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० अज० ज० अंतो[1]०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । सादासाद०--पंचणोक०--समचदु०-वज्जरि०--पसत्थवि०-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस० [ज०] ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० ज० अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । दोआउ० ज० अज० ज० ए०, उ० छम्मासं देसू० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं देसू० । मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० बावीसं सा० देसू० । अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । तित्थ० ज० ज० ए०, उ० तिण्णिसाग० सादि० । अज० ज० ए०, उ० बेसम० । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणु०४–दोगदि०-दोआणु०-दोगोद० ज० अज० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं [देसू०] । छसु उवरिमासु णिरयोघं ।

सागर काल तक मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्व होकर सम्यक्त्वके साथ रहने पर इतने काल तक नीचगोत्रका बन्ध नहीं होता, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है ।

५९५. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । दो आयुओंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, दोगति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य

१. आ० प्रतौ ज० अज० अंतो० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि तिरिक्खग०३ णवुंसगभंगो। मणुसग०३ पुरिसभंगो[1]।

५६६. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंसणा०--अट्ठक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४–उप०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० अद्धपोंग्गल०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ओघं। अज० ज० अंतो०, उ० तिण्णिपलि० दे०। सादंदंडओ ओघो। अप्पचक्खा०४ ओघं। इत्थि० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० दे०। णवुंस०-तिरिक्खग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-तिरि-

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। पहलेकी छह पृथिवियोंमें सामान्य नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग नपुंसकवेद प्रकृतिके समान है और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग पुरुषवेद प्रकृतिके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ अन्य सब खुलासा स्वामित्वको देखकर जान लेना चाहिए। जो विशेषताएँ कही हैं, उनका स्पष्टीकरण करते हैं। सातवें नरकमें मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए नारकीके होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर बन जाता है। सामान्य नारकियोंमें यही अन्तर स्त्यानगृद्धि आदि व तिर्यञ्चगति आदि कुल ग्यारह प्रकृतियोंका कहा है। यहाँ यह सब अन्तर एक समान होनेसे इसको एक साथ कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि आदि ११ का मिथ्यात्वमें बन्ध कराते हुए और मनुष्यगति आदि तीनका सम्यक्त्वमें बन्ध कराते हुए क्रमशः सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल तक रखकर यह अन्तर लाना चाहिए। तथा प्रारम्भ की छह पृथिवियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका मिथ्यात्व और सासादनमें तथा मनुष्यगतित्रिकका चतुर्थ गुणस्थान तक बन्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंका सामान्य नारकियोंके जो अन्तर कहा है उसमें कुछ विशेषता आ जाती है, क्योंकि वहाँ वह सातवें नरककी मुख्यतासे कहा गया है। विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है। बात यह है कि सम्यक्त्वके होने पर मनुष्यगतित्रिकका ही बन्ध होता है, अतः पुरुषवेदके समान इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अपने-अपने नरककी कुछ कम आयुप्रमाण और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा तिर्यञ्चगतित्रिकका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता। यही हाल नपुंसकवेदका है, अतः इनका नपुंसकवेदके समान अन्तर कहा है। प्रत्येक पृथिवीमें अन्तरकाल कहते समय जहाँ कुछ कम तेतीस सागर कहा है, वहाँ कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति लेनी चाहिए, यहाँ इतनी और विशेषता जाननी चाहिए।

५६६. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। सातादण्डकका भङ्ग ओघके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चारका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिक

१. आ० प्रतौ० मणुस० पुरिसभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खाणु०-आदावुज्जो०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतको०[1]। अज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। पंचणोक० ज० ज० ए०, उ० अद्धपोग्गल०। अज० साद-भंगो। तिण्णिआउ० ज० अज० उक्कस्सभंगो। तिरिक्खाउ० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी सादि०[2]। वेउव्वियछ०-मणुस०३ ज० अज० ओघं। चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४—दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ओघं[3]। अज० सादभंगो। तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०-णिमि० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० बेसम०।

आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। पाँच नोकषायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। तीन आयुके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान है। तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका भङ्ग ओघके समान है। चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्व-कोटि है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध संयतासंयतके होता है। और संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, अतः यहाँ इन प्रकृ-तियोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। तथा एक समयके अन्तरसे इनका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए वह एक समय कहा है। इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, अतः इनके अजघन्य अनु-भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। आगे सर्वत्र चौदह मार्गणाओं और उनके अवान्तर भेदोंमें जहाँ जिन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य अन्तर एक समय कहा हो और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा हो, वहाँ कालका विचार कर यह अन्तर ले आना चाहिए। यदि कहीं इससे भिन्न कोई विशेषता होगी, तो हम उसका अलगसे निर्देश करेंगे। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता और तिर्यञ्चोंमें वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है, अतः यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य कहा है। मात्र यहाँ तिर्यञ्च

१. ता० प्रतौ ज० ज० ए० अणंतका० इति पाठः। २. आ० प्रतौ पुव्वकोडिदे० इति पाठः। ३. ता० आ० प्रत्योः ज० ज० ओघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९७. पचिं०तिरि०३ थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपुधत्तं०। अज० तिरिक्खोघं। सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० ज० ज० ए०, उ० तिण्णि० पलि० पुव्वकोडिपुधत्ते०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। अपच्चक्खाणा०४ ज० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपुधत्तं०। अज० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी देसू०। इत्थि० ज० सादभंगो। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० देसू०। सेसं उक्क०भंगो।

पर्यायमें ही सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें ले जाकर यह अन्तर काल ले आना चाहिए। इसी प्रकार स्त्रीवेदके अजघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति अनन्त काल होनेसे यहाँ नपुंसकवेद आदिके जघन्य अनुभागबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। मात्र कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभाग-बन्ध करा कर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। तथा कर्मभूमिमें तिर्यञ्चके सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है और ऐसे तिर्यञ्चके नपुंसकवेद आदिका बन्ध नहीं होता, अतः यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तिर्यञ्च अर्धपुद्गल परिवर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें संयतासंयत होकर पाँच नोकषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध करे यह सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। इनके अज-घन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है, यह स्पष्ट ही है। उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय नर-कायु, मनुष्यायु और देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका जो अन्तर बतला आये हैं, वही यहाँ क्रमसे जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर प्राप्त होता है, अतः यह प्ररूपणा उत्कृष्ट के समान कही है। ओघसे तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर तिर्यञ्चोंकी मुख्यतासे ही कहा है, अतः इसे जिस प्रकार वहाँ घटित करके बतला आये हैं, उसप्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। जो तिर्यञ्च पूर्वकोटिके त्रिभागमें तिर्यञ्चायुका बन्ध करके मरता है और पुनः तिर्यञ्च होकर पूर्वकोटिमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर तिर्यञ्चायुका बन्ध करता है, उसके साधिक एक पूर्वकोटि काल तक तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता, यह स्पष्ट है। यह देख कर यहाँ तिर्यञ्चायुके अजघन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चके चार जाति आदिका बन्ध नहीं होने से इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। शेष कथन सुगम है, क्योंकि ओघ प्ररूपणामें उसका स्पष्टीकरण कर आये हैं। इस लिए वहाँ देख कर यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

५९७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अप्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अजघन्य अनुभाग बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। शेष भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें संयमासंयमके अभिमुख तिर्यञ्चके ही स्त्यानगृद्धि आदिका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६८. पंचिं० तिरि० अप० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०--भय--दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। सेसाणं ज० अज० ज० ए०, उक्क० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्ताणं।

अनुभागबन्ध होता है, अतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व-प्रमाण कहा है। तथा सामान्य तिर्यञ्चोंमें इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-त्रिककी मुख्यतासे ही प्राप्त होता है, अतः यह सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी कायस्थितिको देखकर इनमें सातावेदनीय आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है और कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें यह बन्ध हो यह सम्भव है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। जिस तिर्यञ्चने संयमासंयमके अभिमुख होकर अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध किया है और अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः नीचे आकर अति शीघ्र संयमासंयमको ग्रहण करनेके पूर्व पुनः जघन्य अनुभागबन्ध किया है, उसके इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर उपलब्ध होता है और जो कायस्थितिके प्रारम्भ में और अन्तमें संयमासंयमको ग्रहण करते हुए जघन्य अनुभागबन्ध करता है, उसके इन प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध होता है, अतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण कहा है। तथा संयमा-संयमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागबन्ध अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हो यह सम्भव है। सातावेदनीयका भी यह जघन्य अनुभागबन्ध इसी प्रकार सम्भव है, इसलिए स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। तथा उत्तम भोगभूमिमें प्रारम्भमें और अन्त में जो मिथ्यादृष्टि है और मध्यमें कुछ कम तीन पल्य तक जो सम्यग्दृष्टि है, उसके इतने काल तक स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। यहाँ जिन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर कहा है, उनके सिवा जो शेष प्रकृतियाँ बचती हैं, उनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरमें उत्कृष्ट प्ररूपणा के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धके अन्तरसे कोई विशेषता नहीं है, अतः यह उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान कहा है।

५६८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर आदि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तकोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सब अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरको छोड़कर शेष सब उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र ध्रुव प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय है, अतः यहाँ अजघन्य अनु-

1. ता० आ० प्रत्योः उ० अंतो०। दोपदं आउगाणं। एवं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९९. मणुस०३ खविगाणं ज० णत्थि अंतरं। अज० पगदिअंतरं। आहार-दु० ज० अज० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडिपुध०। तित्थय० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० उ० अंतो०। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि तेजा०-क०-पसत्थ-वण्ण०४-अगु०-णिमि० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

६००. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणागिद्धि०३-

---

भागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

५९९. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके समान है। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें जिन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, वे क्षपक प्रकृतियाँ हैं। उनके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सम्भव नहीं, यह स्पष्ट ही है। तथा प्रकृतिबन्धमें इनके बन्धका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है, वही यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए। इसलिए यह अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान कहा है। क्षपक प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघात। इनमेंसे पुरुषवेद, हास्य और रतिको छोड़कर शेष सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और इनका उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए। तथा शेष तीन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए। स्वामित्वको देखते हुए आहारकद्विकका कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वके अन्तरसे जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है और ऐसा जीव मनुष्यगतिमें पुनः सम्यक्त्वका सम्पादन नहीं करता, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशम-श्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त काल तक इसका बन्ध नहीं होता, अतः इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। मात्र तैजसशरीर आदिके अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि मनुष्यत्रिकमें उपशमश्रेणिमें इन तैजसशरीर आदिका अन्तर्मुहूर्तकाल तक बन्ध नहीं होता, अतः यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंसे यहाँ यही विशेषता है।

६००. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० अज० ज० अंतो०, उ० ऍकत्तीसं० देसू०। सादासाद०-पंचणोक०-थिरादितिण्णियुग० ज० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। इत्थि०--णवुंस०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--अप्पस०--दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० ज० अज० ज० ए०, उ० ऍकत्तीसं० देसू०। दोआयु० णिरयभंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० ज० अज० ज० ए०, उ० अट्ठारस० सादि०। मणुस०-पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-मणुसाणु०-तस० ज० ज० ए०, उ० अट्ठारस० सादि०। अज० सादभंगो। एइंदि०-आदाव-थावर० ज० अज० ज० ए०, उ० बेसागरो० सादि०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३--बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ० ज० ज० ए०, उ० अट्ठारस० सादि०। अज० ज० ए०, उ० बेस०। समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०--सुभग--सुस्सर--आदें०--उच्चा० ज० ज० ए०, उ० ऍकत्तीसं० देसू०। अज० सादभंगो। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो पगदिअंतरं णेदव्वं।

और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पाँच नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार सब देवोंमें जिनके जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है,उनका अन्तरकाल जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्व विशुद्ध किसी भी सम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका बन्ध अन्तिम ग्रैवेयक तक ही होता है, इसलिए इनके बन्धकी चरमावधि ३१ सागर है। उसमें भी सम्यग्दृष्टिके इनका बन्ध नहीं होता और नौवें ग्रैवेयक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०१. एइंदिएसु धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। बादरे अंगुल० असंखें०। पज्जत्ते संखेंज्जाणि वाससह०। सुहुमे असंखेंज्जा लोगा। अज० ज० ए०, उ० बेस०। तिरिक्खाउ० [ज०] णाणा०भंगो। अज० ज० एग०, [उक्क०] पगदिअंतरं। मणुसायु० ज० अज० उक्कस्सभंगो।

में सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल ३१ सागर है। उसमें भी यहाँ कुछ कम ३१ सागर विवक्षित है, क्योंकि प्रारम्भमें और अन्तमें मिथ्यादृष्टि रख कर इन प्रकृतियोंका बन्ध कराना है। इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। मात्र इनका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख जीवके होता है, इतना समझ कर अन्तर काल लाना चाहिए। यह सम्भव है कि साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध भवके प्रारम्भमें और अन्तमें हो मध्यमें न हो, अतएव इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनका अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेद आदिका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। यहाँ मध्यमें कुछ कम इकतीस सागर काल तक सम्यग्दृष्टि रख कर यह अन्तर लाना चाहिए। दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है,यह स्पष्ट ही है। तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। मात्र अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर लाते समय मध्यके कालमें सम्यग्दृष्टि रखना चाहिए और जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर लाते समय मध्यमें जघन्य अनुभागबन्धके योग्य परिणाम नहीं कराने चाहिए। मनुष्यगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है और परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सातावेदनीयके समान अन्तर्मुहूर्त कहा है। एकेन्द्रियजाति आदिका बन्ध ऐशान कल्प तक होता है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। मात्र जघन्य अनुभागबन्धकी दृष्टिसे इतने काल तक बीचमें जघन्य अनुभागबन्धके योग्य परिणाम न करावे और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर लानेके लिए मध्यमें उसे सम्यग्दृष्टि रखे। औदारिकशरीर आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वसंक्लिष्ट परिणामोंसे होता है और ये परिणाम सहस्रार कल्प तक ही सम्भव हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। समचतुरस्रसंस्थान आदिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टिके होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। यह अन्तर काल सामान्य देवोंकी अपेक्षा कहा है। भवनवासी आदि प्रत्येक देवनिकायमें और विमानवासी देवोंके अवान्तर भेदोंमें कहाँ कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है और स्वामित्वसम्बन्धी क्या विशेषता है,इसे जानकर अन्तरकाल साध लेना चाहिए।

६०१. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु[1]०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० सादभंगो । मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० अज० ओघं । बादर० ज० णाणा०भंगो । अज० ज० ए०, उ० कम्मट्ठिदी० । पज्जत्ते ज० अज० ज० ए०, उ० संखेंज्जाणि वास० । सुहुमे असंखेज्जा लोगा । एदेसिं तिरिक्खगदितिगं मणुसगदिभंगो । णवरि अज० साद-भंगो । सेसं ज० णाणा०भंगो । अज० सादभंगो । सव्वविगलिंदिय-पज्जत्त० धुविगाणं ज० अज० उ०भंगो । सेसाणं पि तं चेव ।

उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। बादरोंमें जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण है। पर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके तिर्यञ्च-गतित्रिकका भङ्ग मनुष्यगतिके अन्तरके समान है। इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागबन्ध का अन्तर सातावेदनीयके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। सब विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगतिद्विक और नीचगोत्रको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध बादर एकेन्द्रिय जीव करते हैं और इनकी कायस्थितिका अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है, अतः इनमें प्रायः सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। यह जो विशेषता है उसका अलगसे स्पष्टीकरण किया है। शेष बादर एकेन्द्रिय आदिके उनकी कायस्थितिके अनुसार यह अन्तर कहा है। यहाँ तिर्यञ्चायुका यदि बन्ध न हो तो साधिक बाईस हजार वर्ष तक नहीं होता, क्योंकि जिस एकेन्द्रियने पृथिवीकायिक होकर २२ हजार वर्षके प्रथम त्रिभागमें आयु बन्ध किया। बादमें मरकर वह पुनः २२ हजार वर्षकी आयुवाला पृथिवीकायिक हुआ और वहाँ आयुमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर उसने आगामी तिर्यञ्चायुका बन्ध किया, तो उसके साधिक बाईस हजार वर्ष तक तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान कहा है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर जिस प्रकार उत्कृष्ट प्ररूपणाके समय स्पष्ट कर आये हैं उस प्रकार जान लेना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीव करते हैं और इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साता-वेदनीयके समान अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीव नहीं करते, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर

१. ता० आ० प्रत्योः तिरिक्खगदिभंगो तिरिक्खाणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०२. पंचिंदि० तेसिं पज्ज० पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०-पंचणोक०-अप्प-सत्थ०४–उप०-तित्थ०-[पंचंत०] ज० णत्थि अंतरं । अज० ओघं । थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी० । अज० ओघं । सादासाद०-अरदि-सोग०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४–अगु०३–पसत्थवि०-तस०४–थिराथिर०-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस०-णिमि० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठिदी० । अज० ओघं । अट्ठक० ज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी० । अज० ओघं । इत्थि० ज० अज० उक्क०भंगो० । णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० ज० अज० उक्क०भंगो । णवरि णीचागो० ज० ज० अंतो० । चदुआयु० ज० अज० उ०भंगो । णिरयग०-चदुजादि-णिरयाणु०-आदाव-थावरादि०४ ज० अज० उ०भंगो । तिरिक्खगदितिगं ज० ज० अंतो०, उ० काय-

---

ओघके समान असंख्यात लोक कहा है। मात्र बादर एकेन्द्रिय आदिमें यह अन्तर उनकी कायस्थितिके अनुसार होनेसे तत्प्रमाण कहा है। इसी प्रकार इनके तिर्यञ्चगतित्रिकके सम्बन्धमें भी जानना चाहिए। मात्र तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध सब एकेन्द्रियोंके सम्भव है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। यहाँ अन्य जितनी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, उनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिए। सब विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके अन्तरका विचार जिस प्रकार उत्कृष्ट प्ररूपणामें कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। उससे इसमें कोई विशेषता न होनेसे यहाँ उसके अनुसार जानने मात्रकी सूचना की है।

६०२. पञ्चेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। स्त्रीवेदके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयुओंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदी० । अज० ओघं । मणुस०३-देवगदि०४ ज० ज० ए०, उ० कायट्ठिदी० । अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० ज० अज० उ०भंगो । आहारदुग० ज० अज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी० ।

अन्तर ओघके समान है । मनुष्यगतित्रिक और देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है । आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है । मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए सम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है,अतः यह सब अवस्था पुनः सम्भव नहीं है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । स्त्यानगृद्धि आदिका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता । एक तो सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, दूसरे इसकी प्राप्ति कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें होना सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण कहा है । सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हो यह सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है । आठ कषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके सन्मुख हुए क्रमशः सम्यग्दृष्टि और संयतासंयतके होता है । यह अवस्था अन्तर्मुहूर्त और कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे प्राप्त हो सकती है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है । यद्यपि स्वामित्वको देखते हुए नपुंसकवेद आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान बन जाता है, परन्तु नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होने के कारण यहाँ इसके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि इतने अन्तरके बिना पुनः उस अवस्थाकी प्राप्ति सम्भव नहीं है । तिर्यञ्चगतिद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध सातवें नरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए नारकीके और उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले देव नारकीके होता है । यह स्वामित्व कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कायस्थितिके अन्तर से प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है । मनुष्यगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तमान मध्यम परि-णामोंसे होता है । ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे हो सकते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है । तथा सातवें नरकमें और वहाँ से निकलने और प्रवेश करनेके समय अन्तर्मुहूर्त तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है । आहारकद्विकका बन्ध अन्तर्मुहूर्त और कुछ कम कायस्थितिके अन्तरसे होना सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है । शेष विवेचन जो ओघके समान हो उसे ओघ प्ररूपणा देखकर और जो उत्कृष्टके समान हो उसे उत्कृष्ट प्ररूपणा देखकर घटित कर लेना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०३. पुढवि०-आउ० धुविगाणं ज० ज० ए०, उ० सव्वेसिं अप्पप्पणो कायट्ठिदी० । अज० ज० ए०, उ० बेसम० । सेसाणं ज० णाणा०भंगो । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । दोआउ० ज० अज० ज० ए०, उ० पगदिअंतरं । एवं तेउ०-वाउ० । णवरि तिरिक्खगदि०३ धुवभंगो । वणप्फदि० धुवियाणं ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा, अंगुल० असं०, संखेंज्जाणि वाससह०, असंखेंज्जा लोगा । अज० ज० ज० ए०, उ० बेसम० । सेसाणं ज० णाणाभंगो । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । तिरिक्खायु० ज० णाणा०भंगो । अज० पगदिअंतरं । मणुसाउ० ज० अजं० उक्कस्सभंगो । बादरपत्तेय० पुढवि०भंगो । णियोदे धुवियाणं सेसाणं पुढविभंगो । णवरि दोआयु० ज० अज० अपज्जत्तभंगो ।

६०३. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सबके अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । दो आयुओंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है । इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ध्रुव प्रकृतियोंके समान कहना चाहिए । वनस्पतिकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । बादरोंमें अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूक्ष्मोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है । मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उत्कृष्ट प्ररूपणाके समान है । बादर प्रत्येकवनस्पतिकायक जीवों का भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है । बादर निगोद जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि दो आयुओंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर अपर्याप्त जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंकी और उनके अवान्तर भेदोंकी जो कायस्थिति है उसके आदिमें और अन्तमें दो आयुको छोड़कर सब प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध हो यह सम्भव है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है । ध्रुवबँधनेवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर जघन्य अनुभागबन्धके काल की अपेक्षा कहा है और शेष प्रकृतियाँ परिवर्तमान होनेके कारण उनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर एक समय व अन्तर्मुहूर्त घटित हो जाता है । अग्निकायिक व वायुकायिक जीवोंमें भी यही भङ्ग अविकल रूपसे घटित हो जाता है । मात्र उनमें यह विशेषता है

1. ता० आ० प्रत्योः मणुसाउ० एइंदिय० तिरिक्खकायणियोदाणं च ज० अज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०४. तस-तसपज्जत्त० पंचिंदियभंगो। णवरि अप्पप्पणो कायट्ठिदी भाणिदव्वा।

६०५. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-०दु०-अप्पसत्थ०४--आहारदुग०-उप०--तित्थ०--पंचंत० ज० अज० णत्थि० अंतरं। सादासाद०-चदुणोक०-तिगदि--पंचजादि--दोसरीर--छस्संठा०--दोअंगो०--छस्संघ०-तिण्णि-आणु०--पर०-उस्सा०-आदावुज्जो०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-उच्चा० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस०--हस्स-रदि--तिरिक्ख०३ ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। चदुआउ० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० चदुसमयं। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण४--अगु०-णिमि० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेस०।

कि उनके मनुष्यगतिद्विक व ऊँचगोत्रका बन्ध नहीं होता है। इस कारण उनके तिर्यञ्चगतिद्विक व नीचगोत्र ध्रुवबन्धिनी हैं। सामान्य वनस्पतिकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध बादरोंके होता है और उनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है और शेष अवान्तर भेदोंमें अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण अन्तर उपरोक्त रूपसे होता है। अतः जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर घटित हो जाता है। अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरके सम्बन्ध जो पूर्वमें लिखा है, वही यहाँ पर भी विचार कर लेना चाहिये। वनस्पतिकायिक जीवोंके पूर्वके कथनमें बादर प्रत्येक व बादर निगोदका भङ्ग नहीं आया था, वह अविकल रूपसे पृथिवीकायिक जीवोंके समान घटित हो जाता है। जो विशेषता है वह मूल में खोल दी गई है।

६०४. त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी कायस्थिति कहनी चाहिए।

विशेषार्थ--पहले पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल कह आये हैं। यहाँ भी वह उसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र वहाँ जो अन्तर उनकी कायस्थिति प्रमाण कहा हो, उसे यहाँ इनकी कायस्थितिप्रमाण जानना चाहिए।

६०५. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, आहारकद्विक, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, तीन गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर दस युगल और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य, रति और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्ध का अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०६. कायजोगीसु पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--पंचणोक०--तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०-तित्थ०--णीचा०-पंचंत० ज० णत्थि अंतरं । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०--बारसक०--आहारदुगं ज० अज० णत्थि अंतरं । सादासाद०--चदुजादि--छस्संठा०--छस्संघ०--दोविहा०-थावरादि४--थिरादिछयुग० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-णिरय--देवगदि-पंचिंदि०--ओरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-दोअंगो०--पसत्थ०४--दोआणु०--अगु०३--आदावुज्जो०--तस४--णिमि० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो० । णिरय-देवायु० ज० अज० मण०भंगो । तिरिक्खाउ० ज० ज० ए०,[3] उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० ज० ए०, उ० बावीसं वाससह० सादि० । मणुसायु०

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका स्वामित्व देखनेसे विदित होता है कि यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ उसका निषेध किया है । सातावेदनीय आदि एक तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और दूसरे इन योगोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । पुरुषवेद, हास्य और रतिका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें तथा तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके सम्मुख हुए सातवें नरकके जीवके होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है,यह स्पष्ट ही है । इन योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए दो त्रिभागोंकी यहाँ प्राप्ति सम्भव नहीं है, अतः यहाँ चारों आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर चार समय कहा है । तैजसशरीर आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होनेका कारण इन योगोंका उत्कृष्ट काल ही है ।

६०६. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, तीर्थङ्कर, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । नरकायु और देवायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका

१. ता० आ० प्रत्योः चदुदंसणा इति पाठः । २. ता० आ० प्रत्योः बारसकसाय३ इति पाठः । ३. ता० आ० प्रत्योः ज० अज० ए० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० अज० ज० ए०, उ० अणंतका० । मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० अज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा ।

६०७. ओरालियका० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय--दु०-आहारदुग-- अप्पसत्थ०४—उप०--तित्थ०--पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं । सादा-

जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि ३० प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। तिर्यञ्चगतित्रिका सातवें नरकमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है और तीर्थङ्कर प्रकृतिका मनुष्यके मिथ्यात्वके अभिमुख होनेपर होता है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। यद्यपि तिर्यञ्चगतित्रिकका अन्तर्मुहूर्त कालके बाद पुनः जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है,पर उस समय तक योग बदल जाता है। तथा जो उपशमश्रेणिमें काययोगके रहते हुए एक समय या अन्तर्मुहूर्तके लिए इनका अबन्धक होकर और मरकर देव होने पर इनका बन्ध करता है,उनकी अपेक्षा इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र तिर्यञ्चगतित्रिकका यह अन्तर परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे प्राप्त होता है। तथा पुरुषवेद, हास्य और रतिका भी यह अन्तर इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। काययोगके रहते हुए स्त्यानगृद्धि आदि प्रकृतियोंका दो बार जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध उपलब्ध नहीं होता, अतः इनके अन्तरका निषेध किया है। यद्यपि काययोगकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल प्रमाण है, पर ओघसे इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण ही बतलाया है। इसलिए इन प्रकृतियोंके स्वामित्वको जानकर यह घटित कर लेना चाहिए। विशेषताका निर्देश हम ओघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेद आदि सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। जहाँ इनमेंसे कुछ प्रकृतियोंका दीर्घकाल तक निरन्तर बन्ध भी होता है,वहाँ काययोग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक उपलब्ध नहीं होता, इसलिए भी यहाँ वही अन्तर प्राप्त होता है। नरकायु और देवायुका पञ्चेन्द्रियके बन्ध होता है और वहाँ काययोगका काल मनोयोगके समान है, इसलिए इन दो आयुओंका भङ्ग मनोयोगियोंके समान कहा है। ओघसे तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक कह आये हैं। वही यहाँ जानना चाहिए। मात्र मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल इसलिए कहा है कि मनुष्यायुका जघन्य अनुभागबन्ध करके लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य हुआ, फिर अनन्तकाल तक तिर्यञ्च रहा और अन्तमें मनुष्यायुका जघन्य अनुभागबन्ध किया। इस प्रकार मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल प्राप्त हो जाता है। तिर्यञ्चायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है,यह स्पष्ट ही है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतित्रिकका बन्ध नहीं होता, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है।

६०७. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके

१. ता० आ० प्रत्योः चदुसंघ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादं०--मणुसगदि--चदुजादि-छस्संठा०--छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०--थावरादि०४--थिरादिछयुग०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० बावीसं वाससह० दे०। अज० ज० ए०, उं० अंतो०। इत्थि०-णवुंस०--अरदि--सोग--णिरयगदि-देवगदि--पंचिंदि०--ओरालि०-वेउव्वि०-दोअंगो०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस४ ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस०-हस्स-रदि० ज० णत्थि अंतरं। अज० सादभंगो। णिरय-देवायु० मणजोगिभंगो। तिरिक्ख-मणुसायु० ज० अज० ज० ए०, उ० सत्तवाससह० सादि०। तिरिक्खग०--तिरिक्खाणु०--णीचा० ज० ज० ए०, उ० तिण्णिवाससह० दे०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०-णिमि० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेस०।

जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। नरकायु और देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगमें पाँच ज्ञानावरणादि कुछ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और जिनका अन्यत्र होता है, उनका यदि पुनः जघन्य अनुभागबन्ध प्राप्त होता है तो तब तक योग बदल जाता है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। यह सम्भव है कि सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध इसके आदिमें और अन्तमें हो, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेद आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त दो कारणसे कहा है। एक तो जहाँ इनका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, वहाँ औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। दूसरे ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। पुरुषवेद, हास्य और रतिका जघन्य अनुभागबन्ध

---

१. आ० प्रतौ अज० ज० उ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०८. ओरालियमि० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-देवग०-ओरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०--वेउव्वि०अंगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणुपु०-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। पुरिस०-हस्स-रदि-तिरिक्ख०४--ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसाणं ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। नरकायु और देवायुका स्पष्टीकरण जिस प्रकार मनोयोगी जीवोंके कर आये हैं,उस प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। कुछ कम बाईस हजार वर्ष का त्रिभाग साधिक सात हजार वर्ष होता है, इसलिए तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु के जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। तात्पर्य यह है कि त्रिभागके प्रारम्भमें और आयुमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर आयु बन्ध कराने पर यह अन्तर उपलब्ध होता है। औदारिककाययोगमें तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध अग्निकायिक और वायु-कायिक जीव करते हैं और वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष है, अतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है। तथा परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तैजसशरीर आदि का जघन्य अनुभागबन्ध संज्ञी जीव करते हैं और इनके औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६०८. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यञ्चगतिचतुष्क, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात और उच्छ्वासके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—स्वामित्वके अनुसार प्रथम दण्डकमें कही गई और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध औदारिकमिश्रकाययोगके रहते हुए अन्तर देकर दो बार सम्भव नहीं,इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। इसी प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध भी अन्तर देकर दो बार सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रथम दण्डककी प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्ति पूर्ण कर अन्य योगवाला होगा,उसके पहले समयमें होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका भी निषेध किया है। मात्र दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके औदारिकमिश्रयोग रहता है, अतः परावर्तमान होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा शेष प्रकृतियाँ भी परावर्तमान हैं और उनके जघन्य अनुभागबन्धके लिए शरीर पर्याप्ति प्राप्त होनेमें एक समय पूर्वका कोई नियम नहीं है, अतः उनके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०९. वेउव्वियका० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थवण्ण४-अगु०-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबं०४ ज० अज० णत्थि अंतरं। पुरिस०-हस्स-रदि० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। तिरिक्ख०३ ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। दोआउ० मणजोगिभंगो। सेसाणं ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

६१०. वेउव्वियमि० पंचणाणावरणादिधुवियाणं तित्थ० ज० अज० णत्थि अंतरं। पुरिस०-हस्स-रदि-तिरिक्खगदि३-पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-आदाउज्जोव-तस-णीचा० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसाणं सादादीणं ज० अज०[1] ज० ए०, उ० अंतो०।

६०९. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। पुरुषवेद, हास्य और रतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर तिर्यञ्चगतित्रिकका नारकीके सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके अन्तरका निषेध किया है। पुरुषवेद, हास्य और रतिका यद्यपि सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि देव और नारकीके जघन्य अनुभागबन्ध होता है, पर इनका जघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। दो आयुका स्पष्टीकरण मनोयोगियोंके समान कर लेना चाहिए। शेष प्रकृतियाँ अध्रुवबन्धिनी हैं यह स्पष्ट ही है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

६१०. वैक्रियिकमिश्रकायोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यञ्चगतित्रिक, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत, त्रस और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष सातावेदनीय आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका

1. आ० प्रतौ सादादीणं अज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६११. आहारका० पंचणाणावरणादिधुवियाणं ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। सेसाणं मणजोगिभंगो। आहारमि० धुविगाणं देवायु०-तित्थय० ज० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं आहारकायजोगिभंगो। कम्मइगे सव्वाणं उक्कस्सभंगो।

६१२. इत्थिवेदेसु पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थ०-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी०। अज० ज० अंतो०, उ० पणवण्णं पलि० दे०। सादासाद०-अरदि-सोग-पंचिं०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठिदी०।

जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ध्रुवबन्धवाली और तीर्थङ्कर प्रकृति इनका जघन्य अनुभागबन्ध वैक्रियिकमिश्र-काययोगके अन्तमें होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है और इसी कारण पुरुषवेद आदिके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका भी निषेध किया है। किन्तु ये पुरुषवेद आदि परावर्तमान और अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। और इसी कारण शेष सातादि प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उक्त प्रकारसे अन्तर कहा है।

६११. आहारककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली, देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंके समान है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्ट के समान है।

विशेषार्थ—आहारककाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका बन्ध स्वामित्वको देखते हुए इस योगके कालमें दो बार बन्ध सम्भव है और इस योगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष प्रकृतियोंकी सब विशेषताएँ मनोयोगके समान होनेसे उनका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। आहारकमिश्र-काययोगमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका, देवायु और तीर्थङ्करका अपने-अपने परिणामोंके अनुसार जघन्य अनुभागबन्ध अन्तिम समयमें होता है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका निषेध किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६१२. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० ज० ए०, उ० अंतो०। अट्ठक० ज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी०। अज० ओघं। इत्थि०--णवुंस०--तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदा-वुज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि०। अज० ज० ए०, उ० पणवण्णं पलिदो० देसू०। पुरिस०--हस्स-रदि० ज० णत्थि अंतरं। अज० सादभंगो। णिरयाणु० मणुसिभंगो। तिरिक्ख०-मणुसायु० ज० अज० ज० ए०, उ० कायट्ठिदी०। देवायु० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि०। अज० ज० ए०, उ० अट्ठा०वण्णं पलि० पुव्वकोडिपु०। णिरय-देवगदि-तिण्णिजादि-[वेउव्वि०-] वेउव्वि०अंगो०-दोआणु०-सुहुम-अपज्ज०-साधार० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठिदी०। अज० ज० ए०, उ० पणवण्णं पलिदो० सादि०। मणुसगदिपंचग० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठिदी०। अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० देसू०। आहार-दुग० ज० अज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी०। [तेजा०--क०--पसत्थवण्ण४--अगुरु०-णिमि० ज० ज० एग०, उक० कायट्ठिदी। अज० ज० ज० एग०, उक० बेसम०।]

यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। पुरुषवेद, हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। नरकायुका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य है। नरकगति, देवगति, तीन जाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है। इस अवस्था की प्राप्ति कमसे कम अन्तमुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कायस्थितिके अन्तरसे सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तथा यहाँ सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है, अतः उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य कहा है। सातादिकका जिन परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है, वे एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कायस्थितिके अन्तरसे सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आठ कषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए यथायोग्य जीवके होता है। यह अवस्था अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे भी सम्भव है और कायस्थिति के अन्तरसे भी सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। स्त्रीवेद आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तर का खुलासा सातादण्डकके समान कर लेना चाहिए। पुरुषवेद, हास्य और रतिका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नरकायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका खुलासा जिस प्रकार मनुष्यिनियोंके कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए। यह सम्भव है कि कोई स्त्रीवेदी जीव कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें तिर्यञ्चायु या मनुष्यायुका बन्ध करे, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु के जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। देवायुका जघन्य अनुभागबन्ध कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हो यह सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। किसी स्त्रीवेदी जीवने देवायुका पचपन पल्य प्रमाण आयुबन्ध किया। फिर वहाँ से आकर पूर्वकोटिपृथक्त्व काल तक परिभ्रमण कर तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें स्त्रीवेदी हुआ और भवके अन्तमें देवायुका बन्ध किया। इस प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंमें देवायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। नरकगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हो यह सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तथा देवीके और वहाँ उत्पन्न होने के पूर्व और बादमें अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य कहा है। मनुष्यगतिपञ्चक और तैजसशरीर आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर नरकगति दण्डकके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा भोगभूमिमें पर्याप्त अवस्थामें मनुष्यगतिपञ्चकका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१३. पुरिसेसु पंचणा०—चदुदंसणा०—चदुसंज०—पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। थीणगि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी०। अज० ओघं। णिद्दा-पचला०-पंचणोक०-अप्पसत्थव०४—उप०-तित्थ० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, णिद्दा-पचला० अंतो०, उ० अंतो०। सादासाद०-अरदि-सोग-पंचिंदि०—तेजा०—क०—समचदु०—पसत्थ०४—अगु०३—पसत्थवि०—तस०४—थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस०-णिमि०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। अट्ठक० ज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठि०। अज० ओघं। इत्थि० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि०। अज० ओघं। णवुंस०—पंचसंठा०—पंचसंघ०—अप्पसत्थ०—दूभग—दुस्सर—अणादें०—णीचा० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि०। अज० ओघं। णिरयाणु० इत्थिभंगो। दोआउ० ज० अज० ज० ए०, उ० कायट्ठि०। देवाउ० ज० ज० एग०, उ० कायट्ठि०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। णिरयगदि-चदुजादि-णिरयाणु०-आदाव०-थावरादि०४ ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि०। अज० अणु०भंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० ज० ज०

६१३. पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। निद्रा, प्रचला, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, निद्रा और प्रचलाका अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। नरकायुका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। दो आयुओंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए०, उ० कायट्ठि० । अज० ओघं । मणुसगदिपंच० ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि० । अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० सादि० । देवगदि०४ ज० ज० ए०, उ० कायट्ठि० । अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । आहारदुग० ज० अज० ज० अंतो०, उ० कायट्ठिदी० ।

६१४. णवुंसगेसु पंचणाणावरणादिदंडओ इत्थिभंगो । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ओघं । अज० णिरयभंगो । सादादिदंडओ तिण्णिआउ०-अट्ठक०-वेउव्वियछ०-मणुस०३ ज० अज० ओघं । इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू० । पुरिस०-हस्स-रदि० । ज० णत्थि अंतरं । अज० सादभंगो । अरदि-सोग० ज० ज० ए०, उ० अद्धपोग्गल० । अज०

है । अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है । देवगति चतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ सब अन्तरकाल पर प्रकाश न डाल कर जो विशेषता है, उसीका निर्देश करेंगे । कारण कि अब तक ओघ व आदेशसे सब प्रकृतियोंके अन्तरका जो स्पष्टीकरण किया है, उसीसे इसका बोध हो जाता है । यहाँ निद्रा और प्रचलाके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि जो अपूर्वकरण उपशामक इनकी व्युच्छित्ति कर और अन्तर्मुहूर्तमें सवेदभागमें ही मर कर देव हो जाता है, उसके इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तर्मुहूर्त अन्तरकाल देखा जाता है । देवायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहनेका कारण यह है कि जो पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य प्रथम त्रिभागमें देवायुका अजघन्य अनुभागबन्ध करके तेतीस सागरकी आयुवाला विजयादिक चार अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होता है और वहाँसे च्युत होकर पुनः पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य होकर अपने भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर देवायुका अजघन्य अनुभागबन्ध करता है, उसके देवायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण ही देखा जाता है ।

६१४. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नारकियोंके समान है । सातावेदनीय आदि दण्डक, तीन आयु, आठ कषाय, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्ध का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । पुरुषवेद, हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । तथा अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर साता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादभंगो। देवाउ० मणुसि०भंगो। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० सादभंगो। ओरालि०-ओरालि०अंगो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी देसू०। आहार०२ ज० अज० ओघं। पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ-दूभग-दुस्सर-अणादें० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० देसू०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उक्क० बेस०। तित्थ० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो[1]०।

वेदनीयके समान है। अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीय के समान है। देवायुका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीच-गोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजाति, पर-घात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। औदारिकशरीर और औदारिकआङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदी जीवोंमें भी अन्य सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तर पिछले कहे गये अन्तर को ध्यानमें रखकर घटित कर लेना चाहिए। जो अन्तर विशेषताको लिए हुए है, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। अरति और शोकका जघन्य अनुभागबन्ध छटे गुणस्थानमें होता है और नपुंसक-वेदमें इसका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगति आदिका बन्ध सम्यग्दृष्टि नारकीके नहीं होता। इसलिए इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। चार जाति आदिका बन्ध नरकमें तथा अन्तर्मुहूर्त काल तक नरकके पूर्व और बादमें नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका

1. आ० प्रतौ ओघं। अज० ज० ए० उ० अंतो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१५. अवगदवेदेसु सव्वाणं ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० उ० अंतो०[1]।

६१६. कोधकसा० पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-आहारदुग-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। णिद्दा-पचला०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थ० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। एवं तिरिक्ख०३। णवरि णिद्दा-पचला० अज० ज० उ०[2] अंतो०। चदुआउ० मणजोगिभंगो। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसाणं सादादीणं ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध जिन परिणामोंसे होता है, उनका अनन्त कालके अन्तरसे होना सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। औदारिकद्विकके विषयमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए, क्योंकि इनका जघन्य अनुभागबन्ध नारकीके होता है और नरक पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्चके इनका बन्ध नहीं होता और नपुंसकवेदके साथ इनमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। उसमें भी सम्यक्त्व प्राप्त कराकर अन्तमें बन्ध करानेके लिए मिथ्यात्वमें ले जाना है, क्योंकि ऐसा किये बिना अन्तर नहीं प्राप्त होता। अतः यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। पाँच संस्थान आदिका बन्ध सम्यग्दृष्टि नारकीके नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६१५. अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें पाँच ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका उपशमश्रेणिमें गिरते समय अपगतवेदके अन्तिम समयमें होता है, अतः सब प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा अपगतवेदी जीव इन प्रकृतियोंका अबन्धक होकर उपशमश्रेणिसे उतरते हुए पुनः इनका बन्ध करता है। अतः अबन्ध अवस्थाका काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

६१६. क्रोधकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, आहारकद्विक और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। निद्रा, प्रचला, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतित्रिकके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि निद्रा और प्रचलाके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष साता आदि प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका जघन्य

---

१. आ० प्रतौ अज० ज० ए०, उ० अंतो० इति पाठः। २. आ० प्रतौ ज० ए० उ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१७. माणे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-पण्णारसक०-आहारदुग-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। णवरि कोधसंजल० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

६१८. मायाए पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-चोदसक०-आहारदुग-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। णवरि कोध-माणसंज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए तो इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तर कालका प्रश्न ही नहीं। अब रही प्रथम दण्डककी शेष प्रकृतियाँ सो उनमें से स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, आठ कषायोंका संयमके अभिमुख हुए जीवके जघन्य अनुभागबन्ध होता है और आहारकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध अप्रमत्तसंयतके अभिमुख हुए जीवके होता है, यतः इन प्रकृतियोंका क्रोध कषायके रहते हुए दूसरी बार जघन्य अनुभागबन्ध प्राप्त होना सम्भव नहीं है, क्योंकि क्रोध कषायका काल थोड़ा है, इसलिए यहाँ इनके भी जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकाल का निषेध किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा निद्रादिक प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध भी क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। रही तीर्थंकर प्रकृति सो इसके जघन्य स्वामित्वको देखते हुए उसका अन्तरकाल भी सम्भव नहीं है, अतः इसके भी जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें इनका एक समय या अन्तर्मुहूर्त तक अबन्धक होकर और मरकर देव पर्यायमें इनका बन्ध सम्भव है। अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र निद्रा और प्रचला की बन्धव्युच्छित्ति होनेपर अन्तर्मुहूर्त काल तक मरण नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए। तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकके नारकीके होता है। यतः यह जघन्य अनुभागबन्ध क्रोधकषायमें दो बार सम्भव नहीं और ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनका अन्तर कथन पाँच नोकषाय आदिके समान होनेसे उनके समान कहा है। शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियाँ एक तो परावर्तमान हैं और दूसरे इनका जघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

६१७. मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय, आहारकद्विक और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि क्रोधसंज्वलनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणिमें मानकषायके उदयमें क्रोध संज्वलनकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए इसमें क्रोध संज्वलनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। शेष कथन क्रोधकषायके समान है।

६१८. मायाकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, चौदह कषाय, आहारकद्विक और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि क्रोध और मान संज्वलनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—माया कषायके उदयमें क्रोध और मान कषायकी बन्धव्युच्छित्ति होकर एक समयके अन्तरसे या अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे मरकर इसके देव होने पर पुनः इनका बन्ध होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१९. लोभे पंचणा०-सत्तदंसणा०-मिच्छ०-बारसक०--आहारदुग-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। णवरि चदुसंजलणाणं अज० ज० ए०, उ० अंतो०। सेसाणं सव्वपगदीणं कोधभंगो।

६२०. मदि-सुद० पंचणाणावरणादिधुविगाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। सादादिदंडओ ओघो। इत्थि०--अरदि-सोग--पंचिं०--पर०-उस्सा--तस०४ ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। पुरिस०-हस्स--रदि० ज० णत्थि अंतरं। अज० सादभंगो। चदुआउ०--वेउव्वियछ०--मणुस०३ ज० अज० ओघं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० एक्कत्तीसं० सादि०। णवुंस० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि०दे०। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० ओघं। अज० णवुंसगभंगो। ओरालि०-ओरालि०अंगो० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० दे०। तेजा०-क०-पसत्थवण्ण४--अगु०-

---

लगता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६१९. लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, सात दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, आहारकद्विक और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष सब प्रकृतियोंका भङ्ग क्रोधकषायके समान है।

विशेषार्थ—लोभकषायके उदयकालमें चारों संज्वलनोंकी बन्धव्युच्छित्ति होकर एक समय या अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे मर कर इस कषायवाले जीवके देव होने पर पुनः बन्ध होने लगता है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६२०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य, और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तथा अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिमि० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० बेस०। पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० देसू०। उज्जो० ज० ओघं। अज० ज० ए०, उ० एक्कत्तीसं० सादि०। णीचा० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० तिण्णि पलि० देसू०।

६२१. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं। सादासाद०-चदुणोक०-पंचिंदि०-ओरालि०-

प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली जिन प्रकृतियोंका प्रथम दण्डकमें ग्रहण किया है,उनका जघन्य अनुभागबन्ध यहाँ संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है।अतः उनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। स्त्रीवेद आदिका जघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और यदि ऐसा जीव अनन्तकाल तक एकेन्द्रिय पर्यायमें परिभ्रमण करता रहे तो उतने कालके अन्तरसे भी सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। पुरुषवेद आदिका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए सातवें नरकमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। मात्र तिर्यञ्चगतिद्विकका नौवें ग्रैवेयकमें इकतीस सागर तक और आगे-पीछे अन्तर्मुहूर्त तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इन दोके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। तथा नीचगोत्रका बन्ध उत्तम भोगभूमिमें कुछ कम तीन पल्य तक नहीं होता, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। इसी प्रकार नपुंसकवेद, चार जाति आदि, औदारिकद्विक और पाँच संस्थान आदिके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य घटित कर लेना चाहिए। तथा उद्योतके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर तिर्यञ्चगतिद्विकके समान घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

६२१. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति,

१. आ० प्रतौ चदुणोक० ओरालि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छस्संठा०--ओरालि०अंगो०--छस्संघ०--पर०--उस्सा०--उज्जो०--दोविहा०--तस०४--थिरादिछयु० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । पुरिस०-हस्स-रदि-तिरिक्ख०३ ज० णत्थि अंतरं । अज० सादभंगो । णिरय-देवायु० मणजोगिभंगो । दोआउ० ज० ज० ए०, उ० अंतो० । अज० ज० ए०, उ० छम्मासं देसू० । दोगदि-तिण्णिजादि-दोआणु०-सुहुम-अपज्ज०-साधार० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो० । मणुस०-मणुसाणु० ज० ज० ए०, उ० बावीसं० । अज० सादभंगो[1] । एइंदि०-आदाव-थावर० ज ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० देवगदिभंगो । तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०-णिमि० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०, उ० बेस० । उच्चा० ज० ज० ए०, उ० एक्कत्तीसं० देसू० । अज० सादभंगो ।

औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्‌वास, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क और स्थिर आदि छह युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य, रति और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। नरकायु और देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। दो गति, तीन जाति, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका भङ्ग देवगतिके समान है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। विभङ्गज्ञानके प्रारम्भमें और अन्तमें सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तैजसशरीर आदिके जघन्य अनु•

---

१. ता० प्रतौ बावीसं। [दोआ० जह०] सादभंगो, आ० प्रतौ बावीसं। दोआउ० ज० सादभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२२. आभि०--सुद०--ओधि० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--पंचणोक०--पंचिंदि०--तेजा०--क०-समचदु०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०४--पसत्थ०--तस०४--सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, [णिद्द-पचला० ज० अंतो०] उ० अंतो०। सादासाद०--अरदि-सोग--थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० छावट्ठि० सादि०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। अट्ठक० ज० ज० अंतो०, उ० छावट्ठि० सादि०। अज० ओघं। मणुसाउ० ज० ज० ए०, उ० छावट्ठि० सादि०। अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०। देवाउ० ज० ज० ए०, उ० छावट्ठि० देसू०। अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं

भागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। पुरुषवेद आदिका जघन्य अनुभागबन्ध यथायोग्य संयम और सम्यक्त्वके अभिमुख होनेपर होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। दो गति आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनका जघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे सम्भव है, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगतिद्विकका बन्ध सातवें नरकमें नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर कहा है, क्योंकि छठे नरकमें विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल इतना ही है। एकेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सौधर्म-ऐशान कल्पमें होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। उच्चगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध नौवें ग्रैवेयकमें सम्भव है, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६२२. आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, किन्तु निद्रा, प्रचलाका अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादि० । मणुसगदिपंचग० ज० णत्थि[1] अंतरं । अज० ज० वासपुध०, उ० पुव्वकोडि० । देवगदि०४ ज० णत्थि अंतरं । अज० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० । आहारदुगं ज० अज० ज० अंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० ।

है । मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि प्रमाण है । देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका क्षपकश्रेणिमें तथा शेषका मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा उपशमश्रेणिमें एक समय तक इनका अबन्धक होकर और दूसरे समयमें मरकर देव होने पर इनका पुनः बन्ध होने लगता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक इनका बन्ध न होकर पुनः उतरते समय बन्ध होने पर इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । मात्र निद्रा और प्रचलाके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त जैसा पहले घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए । इन मार्गणाओंका उत्कृष्ट काल साधिक छियासठ सागर है । यह सम्भव है कि सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध इसके प्रारम्भमें और अन्तमें हो मध्यमें न हो, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर साधिक छियासठ सागर कहा है । इसी प्रकार आठ कषाय और मनुष्यायुके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर घटित कर लेना चाहिए । मात्र देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर न होकर कुछ कम छियासठ सागर कहा है, क्योंकि यहाँ साधिकसे चार पूर्वकोटियाँ ली गई हैं। परन्तु जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य अन्तमें देवायुका बन्ध करेगा, वह पल्योपमसे कम नहीं हो सकती और फिर देव होनेके बाद मनुष्य भवका काल भी सम्मिलित करना है, इसलिए यह साधिक छियासठ सागर न होकर कुछ कम छियासठ सागर ही हो सकता है । जो देव छह महीना शेष रहने पर मनुष्यायुका अजघन्य अनुभागबन्ध करके मनुष्य हुआ और इसके बाद तेतीस सागरकी आयुवाला देव होकर अन्तमें उसने पुनः मनुष्यायुका अजघन्य अनुभागबन्ध किया, उसके मनुष्यायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर देखा जाता है; इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है । इसी प्रकार देवायुके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर ले आना चाहिए । मात्र मनुष्य द्वारा देवायुका अजघन्य अनुभागबन्ध कराके और तेतीस सागरकी आयुवाले विजयादिक में उत्पन्न कराकर पुनः मनुष्य होने पर देवायुका अजघन्य अनुभागबन्ध कराना चाहिए । मनुष्यगतिपञ्चकका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए देव और नारकी करते हैं, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है । तथा सम्यग्दृष्टि देवका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटि है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है । देवगतिचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए मनुष्य और तिर्यञ्च करते हैं, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा उपशमश्रेणिमें देवगति-

1. ता० प्रतौ पंचग० णत्थि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२३. मणपज्जवे पंचणा०--छदंसणा०-चदुसंज०--पुरिस०--भय-दु०--देवगदि-पंचिंदि०--वेउव्वि--तेजा०-क०--समचदु०--वेउव्वि०अंगो०--पसत्थापसत्थ०४--देवाणु०-अगु०४--पसत्थ०-तस०४--सुभग--सुस्सर-आदें०--णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० ज० णत्थि० अंतरं । अज० ज० उं० अंतो० । सादासाद०-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी देसू० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । हस्स-रदि० ज० णत्थि अंतरं । अज० सादभंगो । देवाउ० ज० अज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी तिभागा देसू० । आहारदुग० ज० ज० अंतो०, उ० पुव्वकोडी दे० । अज० ज० उ० अंतो० । एवं संजदा० ।

चतुष्ककी बन्ध व्युच्छित्तिकर उतरते समय पुनः उनका बन्ध होनेमें अन्तर्मुहूर्तकाल लगता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति कर और उतरते समय इनका बन्ध होनेके पूर्व मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले देव होने पर इनका साधिक तेतीस सागर काल तक बन्ध नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तसंयत गुणस्थानके अभिमुख हुए जीवके होता है, अतः यह अवस्था अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः प्राप्त हो सकती है। अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। और यदि आहारकद्विकका बन्ध करनेवाला जीव मर कर तेतीस सागरकी आयुवाला देव हुआ, तथा वहाँ से च्युत होकर जब संयमको ग्रहण कर पुनः आहारकद्विकका बन्ध करता है, तब इसके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। यतः यह काल साधिक तेतीस सागर है, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

६२३. मनःपर्ययज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। देवायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। आहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार संयतोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें और शेषका असंयमके अभिमुख होने पर जघन्य अनुभागबन्ध होता है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इनका उपशमश्रेणिमें अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध

१. आ० प्रतौ ज० ए० उ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२४. सामाइ०-छेदोव० धुविगाणं० ज० अज० णत्थि[1] अंतरं। सेसाणं मणपज्जवभंगो। परिहारे पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० णत्थि अंतरं। अज० ए०। अथवा ज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। देवगदिपसत्थपणवीसं ज० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं मणपज्जव०भंगो। सुहुमे सव्वाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। संजदासंजदे धुविगाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं परिहार०भंगो।

नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह सम्भव है कि सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध प्रारम्भमें और अन्तमें हो, मध्यमें न हो, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। हास्य और रतिका क्षपकश्रेणिमें जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। यह स्पष्ट ही है। देवायुका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध त्रिभागके प्रारम्भमें और अन्तिम अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर हो यह सम्भव है, अतः इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण कहा है। आहारकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटिके अन्तरसे सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। तथा इनका अजघन्य अनुभागबन्ध अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे ही होता है, क्योंकि सातवेंसे छठेमें आने पर पुनः सातवाँ गुणस्थान एक अन्तर्मुहूर्तके बाद प्राप्त होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। संयत जीवोंके अन्तर प्ररूपणामें इस प्ररूपणासे कोई विशेषता नहीं है, इसलिए उनके कथनको मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान कहा है।

६२४. सामायिकसंयत और छेदोपस्थानसंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अथवा जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। देवगति और प्रशस्त पच्चीस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—सामायिक और छेदोपस्थानासंयम नौवें गुणस्थानतक होते हैं। आगे संयम बदल जाता है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरके समान अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके पाँच

१. ता० आ० प्रत्योः अज० ज० णत्थि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२५. असंजदे पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०--भय--दु०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० ज० अज० णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० णत्थि[1]० अंतरं । अज० णिरयभंगो । सादादिदंडओ चदुआउ०-वेउव्वियछ०-मणुस०३ ज० अज० ओघं । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० ओघं । अज० [ज०] एग०, उ० तेंत्तीसं० दे० । इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग० ज० अज० ओघं । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० ओघं । अज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० ज० अज० ओघं । तित्थ० ज० णत्थि अंतरं ।

ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है। यह तो स्पष्ट है पर वे सर्वविशुद्ध परिणाम कब होते हैं, इस विषयमें विकल्प है। यदि जो अन्तर्मुहूर्तमें क्षपकश्रेणि पर आरोहण करनेवाला है उसके होते हैं, इस विकल्पको प्रधानता दी जाती है तो इस संयममें पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं प्राप्त होता और इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बनता है। और यदि ये सर्वविशुद्ध परिणाम क्षपकश्रेणिपर आरोहण न करनेवालेके भी होते हैं, इस विकल्पको प्रधानता दी जाती है तो इसके अनुसार इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहाँ दो प्रकारसे अन्तर प्ररूपणा की है। तथा इस संयममें देवगति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध असंयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। देशसंयतके अप्रशस्त ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख होनेपर तथा तीर्थङ्करके सिवा शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होनेपर और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध असंयमके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६२५. असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग नारकियोंके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डक, चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्ध का अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिकशरीर,

1. आ० प्रतौ ज० ज० णत्थि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० ज० उ० अंतो० ।

६२६. चक्खुदं० तस०पज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं । ओधिदं० ओधिणाणिभंगो ।

६२७. किण्णाए पंचणा०-छदंसणा०--बारसक०-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० ज० एग०, उ० तेंत्तीसं० दे० । अज० ज० ए०, उ० बेस० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० अज० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० देसू० । सादा०-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०--थिरादिछ० ज० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि०, एक्केण अंतोमुहुत्तेण सादिरेयं णिरयादो णिग्गदस्स । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । असादावेद०-

औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। स्त्यानगृद्धितीन आदिके जघन्य अनुभागका बन्ध संयमके सन्मुख होने पर होता है, इसलिए इनके भी जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। असंयतके नरकमें कुछ कम तेतीस सागर तक सम्यग्दर्शनके साथ रहते हुए तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण कहा है। स्त्रीवेद आदिके जघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालका स्पष्टीकरण ओघके समान यहाँ भी कर लेना चाहिए। तथा इनका सम्यग्दृष्टि नारकीके कुछ कम तेतीस सागर काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नारकी जीव नरकमें और वहाँ जानेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक और निकलनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक चार जाति आदिका बन्ध नहीं करता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। मिथ्यात्वके अभिमुख हुआ सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभाग बन्ध करता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है और ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वके साथ रहता हुआ उसका बन्ध नहीं करता, इसलिए इसके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६२६. चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। तथा अवधिदर्शनी जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

६२७. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति और स्थिर आदि छहके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकसे निकलनेवाले जीवके यह अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त अधिक है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथिर-असुभ-अजस० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं सादि०, दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयं। अज० सादभंगो। इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० ज० अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० देसू०। पंचणोक०-ओरालि०-ओरालि०अंगो० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं साग० देसू०[1]। अज० सादभंगो। दोआउ० मणजोगिभंगो। दोआउ० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० छम्मासं० देसू०। णिरय-देवगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव-थावरादि०४ ज० अज० [ज०] ए०, उ० अंतो०। तिरिक्ख०३ ज० ज० अंतो०, अज० ज० ए०, उ० दोण्णं पि तेत्तीसं० देसू०। मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० बावीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण णिग्गदस्स। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं देसू०। पंचिं०-पर-उस्सा०-तस४ ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं साग सादि०, पविसंतस्स मुहुत्तं[2]। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बावीसं० सा०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० पंचिंदियभंगो। अज० ज० ए०, उ० बेस०।

असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। पाँच नोकषाय, औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। दो आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। नरकगति, देवगति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका कुछ कम तेतीस सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निकलनेवाले जीवकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। यह प्रवेश करनेवाले जीवके एक अन्तर्मुहूर्त अधिक होता है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस सागर है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. ता० आ० प्रत्योः साग० सादि० देसू० इति पाठः। २. ता० आ प्रत्योः सादि० दे० पंचिंसंतस्स मुहुर्ध इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुसंठा०-पंचसंघ० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०, णिग्गदस्स सादि० । अज० णवुंसगभंगो । हुंड०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर--अणादें० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि मुहुत्ते० । अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० दे० । तित्थ० ज० अज० णत्थि अंतरं ।

अगुरुलघु और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर पञ्चेन्द्रियजातिके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । चार संस्थान और पाँच संहननके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। यह साधिक निकले हुए जीवके होता है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है। ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे हो सकते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका जघन्य बन्ध काल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल दो समय है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन का जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख नारकीके होता है। तथा इसके सम्यक्त्व का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मात्र जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर लाते समय मिथ्यात्वमें ले जाकर विवक्षित कालके भीतर पुनः सम्यक्त्वके सन्मुख ले जाकर यह अन्तर कहना चाहिए। सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध तीन गतिके जीवोंके परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे होता है। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी सम्भव हैं और जो कृष्णलेश्याके सद्भावमें सातवें नरकमें जाता है उसके नरकमें प्रवेश करने पर प्रारम्भमें सम्भव हैं और नरकसे निकलने पर अन्तर्मुहूर्तके बाद भी सम्भव हैं, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। असातावेदनीय आदिका भङ्ग इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र यहाँ दो अन्तर्मुहूर्त अधिक कहना चाहिए। एक प्रवेशके पूर्वका और एक निर्गमके बादका। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामोंसे और उद्योतका जघन्य अनुभागबन्ध संक्लिष्ट परिणामोंसे होता है। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी सम्भव हैं और नारकीके प्रारम्भमें होकर मध्यमें न हों और अन्तमें हों, यह भी सम्भव है। तथा सम्यग्दृष्टिके इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। पाँच नोकषायोंका सर्वविशुद्ध परिणामोंसे और औदारिकद्विकका सर्वसंक्लिष्ट परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है। नारकीके ये परिणाम कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे होते हैं, अतः यहाँ इनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। नरकायु और देवायुका बन्ध मनुष्य और तिर्यञ्चके होता है और इनके कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनके दो आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान कहा है। शेष दो आयुओंका जघन्य अनुभागबन्ध भी मनुष्य और तिर्यञ्चके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और नारकियोंमें उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है, यह स्पष्ट ही है। नरकगति आदिका बन्ध मनुष्य और तिर्यञ्चके ही होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख नारकीके होता है और ऐसा जीव सम्यक्त्वसे च्युत होकर पुनः सम्यक्त्वके सन्मुख अन्तर्मुहूर्तसे पहले नहीं हो सकता, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा मनुष्य और तिर्यञ्चके ये परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और नरकमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतने काल तक इनका बन्ध नहीं होता। इसके बाद मिथ्यात्वमें इनका अजघन्य अनुभागबन्ध या मिथ्यात्वसे पुनः सम्यक्त्वके सन्मुख होने पर जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। मनुष्यगति आदिका तीनों गतिके जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध करते हैं। ये परिणाम एक समयके अन्तरसे भी होते हैं और छठे नरकमें प्रवेश करनेके बाद होकर वहाँसे निकलने पर अन्तर्मुहूर्तमें हों, यह सम्भव है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागर कहा है। यद्यपि मनुष्यगति आदिका सातवें नरकमें भी बन्ध होता है, पर वहाँ यह सम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए वहाँ जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव न होने से यह छठे नरककी अपेक्षा कहा है। ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और जो सातवें नरकका नारकी प्रारम्भमें और अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके लिए सम्यग्दृष्टि होता है और मध्यमें कुछ कम तेतीस सागर काल तक मिथ्यादृष्टि रहता है, उसके इन प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सर्व संक्लिष्ट तीन गतिके जीव करते हैं। यह एक समयके अन्तरसे भी सम्भव है और नरकमें प्रवेश करनेके बाद होकर वहाँ से निकलने पर अन्तर्मुहूर्तके बाद भी सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर कहा है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। वैक्रियिकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा नरकमें जानेके पूर्व किसीने इनका बन्ध किया और छठे नरकसे सम्यक्त्वके साथ निकलकर इनका पुनः बन्ध करने लगा यह सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस सागर कहा है। यहाँ एक समय अन्तर परावर्तमान प्रकृति होनेसे प्राप्त करना चाहिए। तैजसशरीर आदिका जघन्य स्वामित्व पञ्चेन्द्रियजातिके समान है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर पञ्चेन्द्रिय जातिके समान कहा है। तथा इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२८. णील-काऊणं पंचणाणावरणादिधुविगाणं पसत्थापसत्थ०४-अगु०-णिमि०-उप०-पंचंत० ज० ज० ए०, [उक्क० देसू० सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि। अज० ज० ए०] उ० बेस०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४दंडओ णिरयभंगो। सादवंडओ किण्णभंगो। असाददंडओ किण्णभंगो। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा। इत्थि०-णवुंस०-उज्जो० ज० अज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू०। पंचणोक०-पंचिं०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०--तस०४ ज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० देसू०। अज० सादभंगो। चदुआउ०--दोगदि-चदुजादि--दोआणु०-आदाव-थावरादि०४ किण्णभंगो। तिरिक्खग०३ ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसारोवमाणि दे०। मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० ज० ज० ए०,

---

अन्तर दो समय कहा है। चार संस्थान और पाँच संहननका जघन्य अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करते हैं। ये एक समयके अन्तरसे भी सम्भव हैं और नरकमें प्रवेश करनेके बाद होकर वहाँसे निकलने पर भी सम्भव हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है तथा ये एक तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। दूसरे नरकमें सम्यग्दृष्टिके इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान प्राप्त होनेसे वह उसके समान कहा है। हुण्डसंस्थान आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर चार संस्थानोंके समान ही घटित करना चाहिए। मात्र यहाँ जघन्य अनुभागबन्धके उत्कृष्ट अन्तरमें दो अन्तर्मुहूर्त अधिक कहने चाहिए। एक प्रवेशके पूर्वका और एक निर्गमके बादका। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध मनुष्यके मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है।

६२८. नील और कापोत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर व कुछ कम सात सागर अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार दण्डकका भङ्ग नारकियोंके समान है। सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग कृष्ण-लेश्याके समान है। असातावेदनीय दण्डकका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। चार आयु, दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। तिर्यञ्चगति तीनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० सत्तारस-सत्तसाग० सादि० णिग्गदस्स मुहु० । अज० सादभंगो । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० ज० ज० ए०, उ० अंतो० । अज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० सादि० । चदुसंठा०-पंचसंघ० ज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० सादि० । अज० णवुंसकभंगो । हुंड०-अप्पसत्थ०--दूभग-दुस्सर--अणादे० ज० ज० ए०, उ० सत्तारस-सत्तसाग० सादि० । अज० इत्थिभंगो । णीलाए तित्थय० ज० ज० ए०, उ० अंतो० । अज० ज० ए'०, उ० बेसम० । काऊए तित्थ० णिरयभंगो ।

जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। यहाँ साधिकसे निकलनेवालेका एक अन्तर्मुहूर्त लिया है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। चार संस्थान और पाँच संहननके जघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर स्त्रीवेदके समान है। नीललेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—नील लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक सत्रह सागर है और कापोत लेश्याका साधिक सात सागर है। इस हिसाबसे यहाँ अन्तरकाल ले आना चाहिए। उसमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का जघन्य अनुभागबन्ध नारकी जीव करता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर कहा है। स्त्रीवेद आदि तीन प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी उक्त प्रमाण कहनेका यही कारण है। मात्र जघन्य अनुभागबन्धका यह अन्तर प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभागबन्ध कराके ले आना चाहिए और अजघन्य अनुभागबन्धका यह अन्तर मध्यमें उतने काल तक सम्यग्दृष्टि रख कर ले आना चाहिए। इसी प्रकार पाँच नोकषाय आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर ले आना चाहिए। तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध बादर अग्निकायिक और वायुकायिक जीव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा सम्यग्दृष्टि के इनका बन्ध नहीं होता और इन लेश्याओंमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर कहा है। कारणका निर्देश मूलमें ही किया है। वैक्रियिकद्विक, चार संस्थान आदि व हुण्डसस्थान आदिके अन्तरका खुलासा जिस प्रकार

१. आ० प्रतौ अज० ज० ज० ए० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२६. तेऊए पंचणाणावरणादिधुविगाणं अप्पसत्थ०४–उप०--पंचंत० ज० णत्थि अंतरं। अज० ए०। अथवा ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेस०। थीणगिद्धि०३–मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० अंतो०, उ० बेसाग० सादि०। सादासाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० दोहि मुहुत्ते०। अज० ज० ए०, उक्क० अंतो०। अट्ठक०-आहारदु० ज० अज० णत्थि अंतरं। इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०--अप्पसत्थवि०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०--णीचा० ज० अज० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०। पुरिस०-हस्स-रदि० ज० णत्थि अंतरं। अज० सादभंगो। अरदि-सोग० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। देवाउ० ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। दोआउ० देवभंगो। मणुस०-

कृष्णलेश्यामें कर आये हैं, उस प्रकार यहाँ कर लेना चाहिए। नील लेश्यामें तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य अनुभागबन्ध करता है, इसलिए इसमें इसके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय बन जाता है। तथा कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य स्वामित्व सामान्य नारकियोंके समान होनेसे उसके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नारकियोंके समान कहा है। शेष अन्तर कृष्णलेश्याके अन्तरको देखकर घटित कर लेना चाहिए।

६२६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है अथवा जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार के जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो मुहूर्त अधिक दो सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषाय और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। पुरुषवेद, हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अरति और शोकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवायुके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र

1. आ० प्रतौ ज० ए० अंतो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिं०-समचदु०-ओरालि०अंगो०--वज्जरि०-मणुसाणु०-पसत्थवि०--तस-सुभग-सुस्सर-आदेॅज्ज०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०। अज॰ सादभंगो। देवगदि०४ ज० ज० ए०, उ० अंतो०। अज० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०। अथवा ज० णत्थि० अंतरं यदि लेस्ससंकमणं कीरदि। अज० ज० पलि० सादि०, उ० बेसाग० सादि०। ओरालि०--तेजा०--क०--पसत्थ०४--अगु०३--बादर--पज्जत्त--पत्ते०--णिमि०-तित्थ० ज० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०। अज० ज० ए०, उ० बेस०। एवं पम्माए वि। णवरि पंचिं०-ओरालि०अंगो०-तस० तेजइगादीहि सह धुवं भाणिदव्वा।

संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अथवा जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है, यदि लेश्या संक्रमण कर लेता है तो। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और त्रस इन प्रकृतियोंको तैजसशरीर आदिके साथ ध्रुव कहना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ पीतलेश्यामें सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीव पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध करता है, ऐसा स्वामित्वमें कहा है। इसके दो विकल्प होते हैं—एक अन्तर्मुहूर्तके बाद क्षपकश्रेणि पर चढ़नेवाला और दूसरा स्वस्थान अप्रमत्त। प्रथम विकल्प ग्रहण करने पर इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता है और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा दूसरा विकल्प ग्रहण करने पर इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिका जघन्य अनुभागबन्ध संयमके अभिमुख हुआ मनुष्य करता है, किन्तु अन्तर्मुहूर्तमें लौटकर और मिथ्यात्वमें ठहरकर यदि पुनः संयमके अभिमुख होता है तो उसके लेश्या बदल जाती है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। तथा इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर मनुष्योंके और उत्कृष्ट अन्तर देवोंके घटित करना चाहिए। साता आदिका जघन्य अनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं, पर जब इसका उत्कृष्ट अन्तर लाना हो तब मनुष्यगतिमें अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें जघन्य अनुभागबन्ध करावे और साधिक दो सागर तक देव पर्यायमें रखकर पुनः मनुष्य होनेपर जघन्य अनुभागबन्ध करावे। इससे इन प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबन्धका जो दो अन्तर्मुहूर्त अधिक साधिक दो सागर उत्कृष्ट अन्तर कहा है, वह

---

१. ता० प्रतौ उ० सादि० अज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३०. सुक्काए पंचणाणावरणादिधुवियाणं पढमदंडओ ओघो। णवरि तित्थय०

आ जाता है। ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आठ कषाय और आहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वको देखते हुए यहाँ उनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता, अतः उसका निषेध किया है। स्त्रीवेद आदिके जघन्य अनुभागबन्धका जो स्वामित्व बतलाया है, उसके अनुसार इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। जो पीतलेश्याके अपने उत्कृष्ट कालके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभागबन्ध करानेसे उपलब्ध होता है। तथा मध्यमें इतने काल तक सम्यग्दृष्टि रखनेसे इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी साधिक दो सागर कहा है। पुरुषवेद, हास्य और रतिका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत करता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकाल का निषेध किया है। यहाँ जो पीतलेश्यावाला अप्रमत्तसंयत अन्तर्मुहूर्तके बाद लेश्या बदलकर क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला है, उसीकी अपेक्षा जघन्य अन्तरका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। अरति और शोक भी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका दोनों प्रकार का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहा है। देवायुका जघन्य अनुभागबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं और इनके पीतलेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इसके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगति आदिके स्वामित्वको देखते हुए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है; क्योंकि पीतलेश्याके उत्कृष्ट कालके प्रारम्भमें और अन्तमें यथायोग्य इनका जघन्य अनुभागबन्ध हो, यह सम्भव है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान कहा है। देवगति चतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वसंक्लिष्ट तिर्यञ्च और मनुष्य करता है। इनमें पीतलेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। और ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। तथा देव पर्यायमें इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। यहाँ पर यह मानकर कि पीतलेश्यामें जघन्य अनुभागबन्ध होनेके बाद यदि लेश्या बदल जाती है, तो इनके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर प्राप्त होता है; क्योंकि जब मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं बना तो अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर देवोंमें उत्पन्न करा कर लाना चाहिए, इस अभिप्रायको ध्यानमें रखकर यह अन्तर कहा है। देवगतिके समान औदारिकशरीर आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर जानना चाहिए। मात्र इनका जघन्य अनुभागबन्ध सौधर्म-ऐशान कल्पमें कराकर यह अन्तर लाना चाहिए। पद्मलेश्या में इसी प्रकार अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसका काल साधिक अठारह सागर होनेसे इसे ध्यानमें रखकर यह अन्तरकाल लाना चाहिए। तथा इस लेश्यामें पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रस इन प्रकृतियोंको ध्रुव मानकर अन्तरकाल लाना चाहिए; क्योंकि एक तो पद्मलेश्यामें एकेन्द्रियजाति और स्थावरका बन्ध न होनेसे ये दोनों प्रकृतियाँ ध्रुव हैं। दूसरे पद्मलेश्यामें औदारिक आङ्गोपाङ्गका बन्ध देवोंके ही होता है तथा इनके एकेन्द्रियजाति और स्थावरका बन्ध नहीं होता, इसलिए यह भी ध्रुव है।

६३०. शुक्ल लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका प्रथम दण्डक ओघके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्ज० । थीणगि०३—मिच्छ०—अणंताणु०४ ज० णत्थि अंतरं । अज० उवरिमगेवज्ज-भंगो । सादादिचदुयुग० ज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । अज० ओघं । इत्थि-णवुंसगदंडओ उवरिमगेवज्जभंगो । अट्ठक०-पंचणोक०-दोआउ० तेउभंगो । मणुसगदि०४ ज० ज० ए०, उ० अट्ठारस० सादि० । अज० ज० ए०, उ० बेस० । देवगदि०४ ज० [ज०] ए०, उ० अंतो० । अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० । पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३—तस०४—णिमि०-तित्थ० ज० ज० ए०, उ० अट्ठारस सा० सादि० । अज० ज० एग०, उ० बेस० । आहारदु० ज० णत्थि अंतरं । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० एक्कत्तीसं० देसू० । अज० सादभंगो[1] ।

६३१. भव्वसिद्धि० ओघं । अभव्वसिद्धि० धुवियाणं ज० ज० ए०, उ०

समान है । इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर कहना चाहिए । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर उपरिम ग्रैवेयकके समान है । सातावेदनीय आदि चार युगलके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दण्डकका भङ्ग उपरिम ग्रैवेयकके समान है । आठ कषाय, पाँच नोकषाय और दो आयुओंका भङ्ग पीतलेश्याके समान है । मनुष्यगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क, निर्माण और तीर्थङ्करके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । आहारकद्विकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अजघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदिका और स्त्रीवेद आदिका बन्ध उपरिम ग्रैवेयक तक ही होता है, इसलिए इनका विचार इसी दृष्टिसे किया है । मनुष्यगति आदि चारका और पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है । समचतुरस्रसंस्थान आदिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि करता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है । शेष कथन स्पष्ट है ।

६३१. भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । अभव्योंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य

---

1. ता० आ० प्रत्योः अज० ज० सादभंगो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० बेसम० । सादासाद०-समचदु०-पसत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० ओघं । छण्णोक० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । णवुंस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० तिण्णिपलि० देसू० । चदुआयु०-वेउव्वियछ०-मणुसग०३ ज० अज० ओघं । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० ज० ज० ए०, उ० अणंतका० । अज० ज० ए०, उ० ऍक्कत्तीसं० सादि० । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ ज० ओघं । अज० णवुंसगभंगो । पंचसंठा०--पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर--अणादें० ज० ओघं । अज० मदि०भंगो ।

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । नपुंसकवेद, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है । चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है । पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है । अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर मत्यज्ञानियोंके समान है ।

विशेषार्थ—अभव्यों पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध संज्ञी जीव करता है और इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है । सातावेदनीय आदि और पाँच संस्थान आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर जिस प्रकार ओघमें स्पष्ट करके कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए । छह नोकषायोंके जघन्य स्वामित्वको देखते हुए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है । इसी प्रकार नपुंसकवेद आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए । तथा नपुंसकवेद आदिका बन्ध उत्तम भोगभूमिमें कुछ कम तीन पल्य तक नहीं होता, अतः इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है । तिर्यञ्चगतित्रिकका जघन्य अनुभागबन्ध सातवें नरकका नारकी करता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है । तथा नौवें ग्रैवेयकमें इनका बन्ध नहीं होता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३२. सम्मादिट्ठी० ओधिभंगो[1] । खइगसम्मादिट्ठी० पंचणाणावरणादि-दंडओ ओघो तित्थयरं वज्ज । सादासाद०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादितिण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० ज० ए०, उ० तेँत्तीसं० सादि० । अज० ज० ए०, उ० अंतो० । अट्ठक० ज० ज० अंतो०, उ० तेँत्तीसं० सादि० । अज० ओघं । मणुसाउ० देवभंगो । देवाउ० [ज० अज० ज० ए०, उ० पुव्वकोडितिभागा देसूणा ।] मणुसगदिपंचग० ज० ज० ए०, उ० तेँत्तीसं० देसू० । अज० ज० ए०, उ० बेस० । देवगदि०४ ज० अज० ज० ए०, उ० तेँत्तीसं० सा० सादि० । आहारदुग० ज० अज० ज० अंतो०, उ० तेँत्तीसं० सादि० ।

इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर कहा है। यहाँ साधिकसे नौवें ग्रैवेयकमें जानेसे पूर्वका और आनेके बादका अन्तर्मुहूर्त काल लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६३२. सम्यग्दृष्टि जीवोंका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर कहना चाहिए। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। देवगतिचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। क्षायिकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय आदिका जघन्य अनुभागबन्ध इसके प्रारम्भमें और अन्तमें हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। तथा उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता और असातावेदनीय परावर्तमान प्रकृति है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आठ कषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध होनेके बाद पुनः जघन्य अनुभागबन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके पूर्व सम्भव नहीं है और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर कालके बाद सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य

१. आ० प्रतौ सम्मादिट्ठी० मदिभंगो० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३३. वेदगे धुविगाणं ज० णत्थि अंतरं। अज० एग०। सादादिचदुयुग०-अरदि-सोग० ज० ज० ए०, उ० छावट्ठि० देसू०। अज० ओघं। अट्ठक० ज० ज० अंतो०, उ० छावट्ठि० दे०। अज० [ओघं।] हस्स-रदि० ज० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। दोआउ० ज० ज० ए०, उ० छावट्ठि० दे०। अज० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि०। मणुसगदिपंचग० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० वासपुध०, उ० पुव्वकोडी०। देवगदि०४ ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० पलिदो० सादि०, उ० तेत्तीसं। पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४—सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० अज० णत्थि अंतरं।

अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। जो पूर्वकोटिकी आयुवाला त्रिभागके प्रारम्भमें देवायुका बन्ध करके पुनः अन्तमें अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर उसका बन्ध करता है, उसके देवायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण दिखाई देता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा मनुष्यगतिपञ्चकका जघन्य अनुभागबन्ध देव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवगतिचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध करके कोई मनुष्य सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ। पुनः वहाँसे आकर मनुष्य होने पर उसने इनका जघन्य अनुभागबन्ध किया, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध करके कोई प्रमत्तसंयत हो गया। पुनः उसके अप्रमत्तसंयत होकर आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध करनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, इसलिए तो इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। और यदि ऐसा जीव देवोंमें उत्पन्न हो जावे तो साधिक तेतीस सागर अन्तर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

६३३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सातावेदनीय आदि चार युगल, अरति और शोकके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। दो आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३४. उवसम० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु० [४-] पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। सादासाद०-अरदि-सोग०-तिण्णियुग०-तित्थ० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। मणुसगदिपंचग० ज० अज० णत्थि अंतरं। अट्ठक०-आहारदुगं० ज० अज० ज० उ० अंतो०। देवगदि०४ ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० उ० अंतो०।

विशेषार्थ—जो अप्रमत्तसंयत वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्तमें क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर क्षपकश्रेणि पर आरोहण करनेवाला है, वह सर्वविशुद्ध होकर पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध करता है। यह अवस्था पुनः प्राप्त होना सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरका निषेध किया है। और इनका जघन्य अनुभागबन्ध एक समय तक होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है। वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है, इसलिए यहाँ सातावेदनीय आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर कहा है। इसी प्रकार आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर घटित कर लेना चाहिये। हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरके निषेधका वही कारण है जो पाँच ज्ञानावरणादि के कह आये हैं। दो आयुओंके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर जो कुछ कम छियासठ सागर कहा है सो इसका कारण यह है कि जो देव या मनुष्य क्रमसे वेदकसम्यक्त्वके आरम्भ होनेपर मनुष्यायु और देवायुका जघन्य अनुभागबन्ध करता है। पुनः उसकी समाप्तिके पूर्व इनका जघन्य अनुभागबन्ध करता है, उसके इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण ही देखा जाता है। तथा इनके अजघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर जिस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानीके स्पष्ट कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। मनुष्यगति पञ्चक और देवगतिचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर भी आभिनिबोधिक ज्ञानियोंके समान यहाँ घटित कर लेना चाहिए। मात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि पर आरोहण नहीं करते, इसलिए इनके देवगतिचतुष्कके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त न होकर साधिक एक पल्य जानना चाहिए। और उत्कृष्ट अन्तर पूरा तेतीस सागर जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

६३४. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, तीन युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर नहीं है। आठ कषाय और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवगतिचतुष्कके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३५. सासणे[1] धुवियाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। पुरिस०-हस्स०-रदि-तिरिक्ख०३-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-उज्जो० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। तिण्णिआउ० मणजोगिभंगो। सेसाणं ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध उपशमश्रेणिमें अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा उपशमश्रेणिमें इनका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनका एक समयके अन्तरसे जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्यगति पञ्चकका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख देव और नारकी करते हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। आठ कषाय और आहारक-द्विकका जघन्य अनुभागबन्ध अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे ही सम्भव है तथा यथायोग्य गुणस्थान प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध नहीं होता, अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ उपशमसम्यक्त्वके कालमें यह अवस्था प्राप्त कर अन्तरकाल ले आना चाहिए। देवगतिचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है और उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद उतर कर उसी स्थानके प्राप्त होने तक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

६३५. सासादनसम्यक्त्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यञ्चगतित्रिक, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्त्वमें चारों गतिके सर्वविशुद्ध जीवके पाँच ज्ञानावरणादिका और चारों गतिके सर्वसंक्लिष्ट जीवके पञ्चेन्द्रियजाति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। पुरुषवेद आदिका जो जघन्य स्वामित्व बतलाया है, उसके अनुसार इनके जघन्य अनुभागबन्धका भी अन्तरकाल सम्भव नहीं है, इसलिए इसका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीन आयुओंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा शेष प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः अज० ज० उ० अंतो०। सासणे पंचणाणावरणादि० एवं सव्वाणं उक्कस्सभंगो० सासणे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३६. सम्मामिच्छ० धुवियाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। सादासाद०-अरदि-सोग-थिरादितिण्णियुग० ज० अज० ज० ए०, उ० अंतो०। हस्स-रदि० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो।

६३७. सण्णी० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णीसु धुवियाणं पसत्थापसत्थ-पगदीणं ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० बेसम०। सत्तणोक०-तिरिक्ख०-पंचिंदि०--ओरालि०-ओरालि०अंगो०-तिरिक्खाणु०-पर०--उस्सा०-आदा-उज्जो०-तस०४-णीचा० ज० ज० ए०, उ० अणंतका०। अज० ज० ए०, उ० अंतो०। चदुआउ०-वेउव्वियछ०-मणुस०३ तिरिक्खोघं। सेसाणं ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा। अज० ज० ए०, उ० अंतो०।

६३६. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, और स्थिर आदि तीन युगलके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यादृष्टि जीवों का भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—जिस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालके निषेधका कारण बतलाया है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए; क्योंकि इनमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख जीवके और प्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व मिथ्यात्वके अभिमुख जीवके होता है। सातावेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनका जघन्य अनुभागबन्ध एक समयके अन्तरसे हो सकता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। हास्य और रतिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। मिथ्यात्व मत्यज्ञानीके ही होता है और प्रायः इनका साहचर्य है, अतः मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा मत्यज्ञानी जीवोंके समान कही है।

६३७. संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क और नीचगोत्रके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वविशुद्ध पञ्चेन्द्रिय जीव और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३८. आहारएसु धुविगाणं तित्थयरस्स च ओघं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० ज० अंतो०, उ० अंगुल० असंखें०। अज० ओघं। सादासाद०-अरदि-सोग-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-जस०-अजस०-णिमि० ज० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखें०। अज० ओघं। अट्ठक० ज० मिच्छत्तभंगो। अज० ओघं। तिण्णि-आउ०-वेउव्वियछ०-मणुस०३ ज० अज० ज० ए०, उ० अंगुल० असंखें०। तिरिक्खायु० ज० सादभंगो। अज० ओघं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु० ज० मिच्छत्तभंगो। अज० ओघं। उज्जो० ज० सादभंगो। अज० ओघं। इत्थि० मिच्छत्तभंगो[1]। णवरि

प्रशस्त ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध सर्वसंक्लिष्ट पञ्चेन्द्रिय जीव करता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। इसी प्रकार सात नोकषाय आदिके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र ये अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं,इसलिए इनके अजघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। चार आयु आदिके जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्धका सामान्य तिर्यञ्चोंके जो अन्तर कहा है वह यहाँ अविकल बन जाता है, इसलिए यह उनके समान कहा है। शेष जो सातावेदनीय आदि प्रकृतियाँ हैं, उनका जघन्य अनुभागबन्ध बादर एकेन्द्रियों-के भी सम्भव है, अतः इनके जघन्य अनुभागबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

६३८. आहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तर ओघके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायो-गति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और निर्माणके जघन्य अनुभागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषायोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर मिथ्यात्वके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। तीन आयु, वैक्रियिक छह, और मनुष्यगतित्रिकके जघन्य और अजघन्य अनुभाग-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभाग-बन्धका अन्तर ओघके समान है। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर मिथ्यात्वके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। उद्योतके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। स्त्रीवेदका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके जघन्य अनु-

---

1. ता० आ० प्रत्योः अज० ओघं। णवरि तिरिक्खगदिदुगं ज० ज० अंतो०। इत्थि० मिच्छत्त-भंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० ज० ए० । णवुंसगदंडओ ज० सादभंगो । अज० ओघं । सेसाणं ज० सादभंगो । अज० ओघं अप्पप्पणो । अणाहार० कम्मइगभंगो । एवं जहण्णयं समत्तं ।

एवं अंतरं समत्तं ।

भागबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। नपुंसकवेददण्डकके जघन्य अनुभागबन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अजघन्य अनुभागबन्धका अन्तर अपने-अपने ओघके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—आहारक मार्गणामें सर्वप्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व ओघके समान है और इसका उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इन दो विशेषताओंको ध्यानमें लेकर यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल समाप्त हुआ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org